सामवेद,

अथर्ववेद

ऋग्वेद,

यजुर्वेद

ओ३म्

सुरभि तरंग

(हमारी सांस्कृतिक मान्यताएँ)

अर्चना विद्यालंकार

सुरभि तरंग

(हमारी सांस्कृतिक मान्यताएँ)

भारतीय संस्कृति गंगा की पवित्र धारा की भाँति वेदों के काल से ब्राह्मण ग्रन्थ, उपनिषद्, दर्शन शास्त्र एवं रामायण, महाभारत इत्यादि कालों में समृद्ध होती हुई निरन्तर बहती चली आयी है। इस प्रवाह में शुद्ध, निर्मल और पावन ज्योति विद्यमान हैं व मोती-माणिक्य भरे पड़े हैं।

जिसने इस पवित्र-निर्मल गंगा में गोते लगा लिए, उसे मिलेंगे ऐसे असंख्य मोती-माणिक्य जो उसकी जीवनधारा ही बदल दें।

इस पुस्तक द्वारा लेखिका का यही प्रयास है कि कुछ ऐसे प्रश्न आपके समक्ष रक्खे जाएँ जो आपको सोचने को मजबूर करें कि यह जीवनधारा किस ओर अग्रसर है, हमें मानव-शरीर क्यों मिला है तथा जीवन को नई दिशा मिले। जहाँ इस पुस्तक में नारी-सम्मान, जीवन-मृत्यु का रहस्य, प्रेम का स्वरूप, प्रभु-भक्ति, धर्म का मर्म, दृढ़ सङ्कल्प से प्रभुदर्शन, मन का प्रभाव, श्रद्धा से सिद्धि, आत्मा की खोज, मनुष्य-जन्म का उद्देश्य आदि पर प्रकाश डाला गया है, वहीं होली, दीपावली, शिवरात्रि का महत्त्व, गायत्री की महिमा, उपनिषदों का सन्देश व स्वाध्याय के लाभों को बताया है। लेखिका ने बड़ी अनूठी शैली में लोभ, अवगुण तथा वासना त्यागने को प्रेरित किया है व सुखमय जीवन के रहस्यों को सुलझाया है।

सर्वप्रथम महर्षि दयानन्द ने ही वेदों के गूढ़ रहस्यों को जन-साधारण तक पहुँचाया है। उन्हें और बोधगम्य बनाने का प्रयास है यह।

11.3

आचार्या मेधा देवी जी
पाणिनि कन्या महाविद्यालय
तुलसीपुर - वाराणसी १०
[उत्तर-प्रदेश]
पिन-२२१०१०

सुरभि तरंग

(रेडियो एवं दूरदर्शन के माध्यम से प्रसारित हमारी धार्मिक एवं सांस्कृतिक मान्यताओं पर विचारों का संग्रह)

अर्चना विद्यालंकार

विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द

प्रकाशक : विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द
4408, नई सड़क, दिल्ली - 110006
भारत, दूरभाष : 2914945

संस्करण : 1997

मूल्य : 125.00 रुपये

मुद्रक : स्पीडोग्राफिक्स, पटपड़गंज, दिल्ली

SURBHI TARANG (Collection of Religious and Cultural Thoughts Presented on Radio & Television) by Archana Vidyalankar

समर्पण

पूज्य माता और पिता
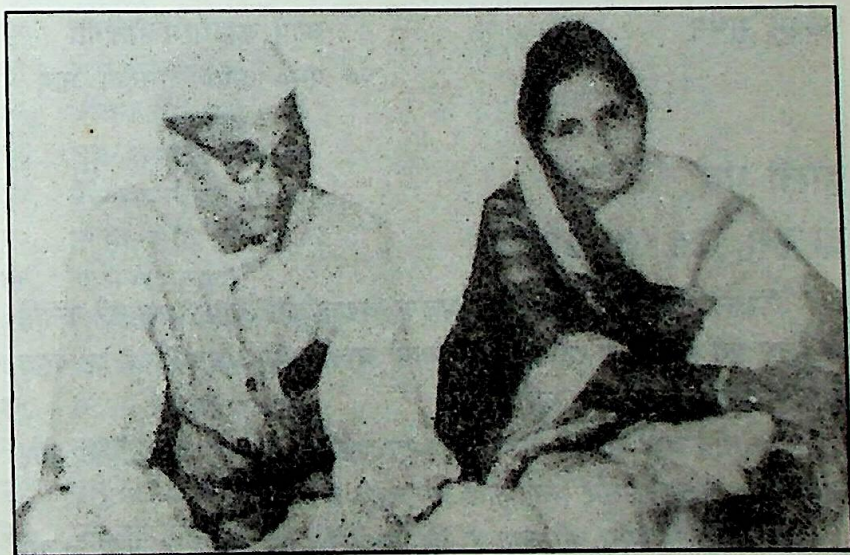
श्रीमती एवं श्री गन्धर्वसेन खोसला की स्मृति में सादर श्रद्धा–सुमनाञ्जलि समर्पित।

ओ३म्

सेवा में,

प्रिय श्रेष्ठ सज्जनो ! सादर सप्रेम नमस्ते। दो चार पंक्तियों में श्री विद्यालंकार "देवी अर्चना जी का परिचय दिया जाता है।" देवी अर्चना जी लगभग सात वर्षों से होलेण्ड देश में पधार कर जन-समाज की सेवा में संलग्न रहती हैं। रेडियो से धार्मिक, सांस्कृतिक एवम् बच्चों, युवक, युवतियों को शिक्षा प्रदान करती रहती हैं। संस्थाओं में या हर एक परिवारों के जन्म, जयन्ती या किन्हीं धार्मिक उत्सवों पर यज्ञ सम्पन्न कराती रहती हैं, ईश्वर इन्हें पुनः हमारे यूरोप देश में, स्वास्थ्य पूर्वक पधारने की श्रद्धा भक्ति प्रदान करे॥

हिन्दी लिखो, हिन्दी पढ़ो, हिन्दी बोलो शुद्ध जबान।
जाति जीवित रखने की, हिन्दी भाषा दवा महान॥

ओ३म् शुभम्

आप का परम हितैषी
पं० एम० आर० रामरूप आर्य
हालैण्ड

होली पर्व
दी हेग, 24·3·1997

पिछले आठ वर्षों से पण्डिता अर्चना विद्यालंकार आर्यसमाज की उन्नति के लिए एवं विदेश में रह रहे हिन्दुस्तानी बच्चों और औरतों के लिए बहुत ही सराहनीय कार्य कर रही हैं।

गत तीन वर्षों से वह रेडियो एवं दूरदर्शन के माध्यम से धार्मिक और सांस्कृतिक प्रचार-प्रसार का कार्य कर रही हैं।

यह बड़े सौभाग्य की बात है कि नीदरलैंड की हिन्दू व आर्य जनता की मांग पर उनके द्वारा बोले जाने वाले प्रवचनों को एक पुस्तक का रूप दिया जा रहा है।

मैं इस कार्य में उनकी सफलता की कामना करता हूं। होली पर्व की शुभ कामनाओं सहित।

शूरवीर
हालैण्ड

अनुक्रमणिका

क्रम	विषय	पृष्ठ
१.	नारी सम्मान	७
२.	महर्षि द्वारा नारी उद्धार के प्रयत्न	१०
३.	उपनिषदों का सन्देश	१६
४.	स्नेहमयी माँ	२०
५.	आत्मविश्वास, प्रभुविश्वास	२२
६.	संसार-चक्र	२६
७.	आत्मा की खोज	३१
८.	सत्यनारायण व्रत-कथा का महत्त्व	३८
९.	धर्म का मर्म	४६
१०.	होली की सीख	४९
११.	नारी की महिमा	५४
१२.	जीवन और मृत्यु	५८
१३.	गुण-अवगुण और तप	६३
१४.	प्रेम का स्वरूप	६८
१५.	मानव-शरीर क्यों ?	७४
१६.	लोभ को त्यागो	८०
१७.	सुखमय जीवन की ओर	८८
१८.	धर्म की शिक्षा	९२
१९.	सत्यम् शिवम् सुन्दरम्	९६
२०.	दृढ़ संकल्प से प्रभु-दर्शन	१००
२१.	प्रभु-दर्शन के उपाय	१०५
२२.	मन का प्रभाव	१०९
२३.	प्रभु-भक्ति	१२१
२४.	श्रद्धा से सिद्धि	१२९
२५.	दीपावली का महत्त्व	१३५
२६.	वासना का दमन	१४१
२७.	प्रभु-कृपा किसको ?	१४७
२८.	प्रेम की महिमा	१५२
२९.	मन की अवस्थाएँ	१५७
३०.	यजुर्वेद का महामृत्युञ्जय मन्त्र	१६४

३१. वैदिक साहित्य में नारी का स्थान १६७
३२. होलिका (होली) १६९
३३. ब्राह्मण और साधु १७५
३४. नारी की प्रगतिशीलता १७९
३५. देव, साधक और ऋषि १८२
३६. साधक और अष्टांग योग १८६
३७. गायत्री की महिमा १८९
३८. प्रभु-दर्शन १९४
३९. श्रद्धाञ्जलि १९८
४०. सम्भवामि युगे-युगे २०२
४१. रावण वृत्ति और प्रभुभक्ति २०८
४२. देवी-पूजा २१२
४३. विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा २१८
४४. आर्यसमाज का स्थापना-दिवस २२१
४५. महर्षि दयानन्द की देन २२७
४६. मनुष्य जन्म का उद्देश्य २३२
४७. वेदों में नारी का स्थान २३७
४८. प्रभु-भक्ति का नशा २४१
४९. तप और स्वाध्याय २४६
५०. प्रभु और धर्म २४९
५१. प्रभु-दर्शन के मार्ग २५३
५२. भगवान् राम, कृष्ण, शंकर २५८
५३. अकाल मृत्यु २६२
५४. प्रभु, धर्म एक उपासना व मत अनेक २६६
५५. स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान-दिवस २७१
५६. समय का महत्त्व २७७

काव्य-सुमन

यम और काव्य २८१
अनीतिशास्त्र २८४
रचना २८५
हत्या वसन्त की २८५
झलक २८७
मुग्धा नायिका २८८
चिरनिद्रा २८८
चार चोर

१. नारी सम्मान

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमभीप्सुभिः॥
यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥

यह श्लोक अभी जो मैंने पढ़े वे मनुस्मृति में से लिये गये हैं। और इन श्लोकों का अर्थ आर्यसमाज के प्रवर्त्तक स्वामी दयानन्द जी ने अपनी पुस्तक सत्यार्थप्रकाश के चौथे समुल्लास में इस प्रकार किया है— कि पिता, भाई, पति और देवर को चाहिए कि अपनी कन्या, बहिन, स्त्री और भौजाई आदि स्त्रियों की सदा पूजा करें, अर्थात् यथायोग्य मधुर भाषण, भोजन वस्त्र आदि से प्रसन्न रखें। जिनको कल्याण की इच्छा हो वे स्त्रियों को क्लेश और दुःख कभी न देवें क्योंकि जिस कुल में नारियों की पूजा, सत्कार एवम् सम्मान होता है उस कुल में दिव्य देवता निवास करते हैं अर्थात् सुन्दर गुण, सुन्दर भोग और उत्तम सन्तान होती हैं और जिस कुल में स्त्रियों की पूजा नहीं होती वहां सब कुछ नष्ट एवं निष्फल हो जाता है। मनुस्मृति में फिर लिखा है— तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः।
भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च॥

स्वामी दयानन्द जी ने इसका अर्थ किया है कि— ऐश्वर्य एवम् सुख की इच्छा करने वाले पुरुषों को चाहिये कि अपने घर की नारियों को मंगलकारी अवसर और उत्सवों पर भूषण, वस्त्र और खान-पान आदि से सदा सत्कार युक्त व प्रसन्न रखें। मनुस्मृति के अगले श्लोक में कहा है— स्त्रियां तु रोचमानायां सर्वं तद् रोचते कुलम्।
तस्यां त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते॥

स्वामी दयानन्द जी ने इसका अर्थ इस प्रकार किया है—

जो पुरुष स्त्री को प्रसन्न नहीं करता, और घर में उस स्त्री के

अप्रसन्न एवं दुःखी रहने से सारे घर में शोक छाया रहता है। और यदि पुरुष से स्त्री प्रसन्न रहती है, तो सम्पूर्ण घर स्वर्ग समान आनन्द रूप दिखता है। मेरी प्यारी बहनो एवम् श्रोतागणो, जैसा कि मैंने पिछली बार आपको बताया था कि भारत में एक ऐसी अशुभ घड़ी आई थी जब कि भारत स्वतन्त्र न होकर एक परतन्त्र देश था। अंग्रेज जाति का गुलाम था और उस समय भारत में अनेक प्रकार की कुरीतियां, अन्धविश्वास और मिथ्याचरणों का प्रचलन था। विशेषतः उस समय स्त्रियों की स्थिति बड़ी अशोभनीय थी। स्त्री-शिक्षा का प्रसार नाम मात्र को भी नहीं था, स्त्रियों को शिक्षित करना सर्वथा अनावश्यक समझा जाता था। घरों में उनका सम्मान भी नहीं होता था। अपितु कहा जाता था कि— **ढोल गंवार शूद्र पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी।**

नारी को वेद पढ़ने के अधिकार से भी वंचित रखा गया था, कहा जाता था— "स्त्रीशूद्रौ नाधीयाताम्" अर्थात् स्त्री और शूद्र इन दोनों को पढ़ने का अधिकार नहीं था। बाल विवाह प्रचलित थे, जिसके परिणामस्वरूप अनेक स्त्रियां बाल-विधवा हो जाती थीं। विधवाओं का मांगलिक उत्सवों में भाग लेना अच्छा नहीं समझा जाता था, इतना ही नहीं मंगल त्यौहारों में उनका दर्शन तक अशुभ माना जाता था। विधवाएं या तो मृत पति के साथ सती हो जाती थीं, या जीवन-भर कष्ट भोगती रहती थीं और समाज में अपमानित होती रहती थीं। नारी को पर्दे के पीछे रहना पड़ता था। ऐसी संकट की अशुभ घड़ी में नारी के विदुषी एवम् अध्यापिका बनने की बात कोई स्वप्न में भी नहीं सोच सकता था। किन्तु ऐसे अन्धकार के समय में भारत में स्वामी दयानन्द रूपी सूर्य का उदय हुआ। उनके प्रचण्ड व्यक्तित्व में इतना तेज, इतना साहस था कि उन्होंने स्त्री जाति को इस दयनीय स्थिति से उबारकर समाज में उचित एवम् ऊंचा स्थान दिलाने का भरसक प्रयत्न किया। स्वामी दयानन्द जी ने नारी को उसका उचित स्थान एवम् सम्मान दिलाने को लिए 'वेद ग्रन्थों' को अपना आधार बनाया। स्वामी दयानन्द ने नारी जाति के लिए जो कुछ किया वह मैं आपको आगामी मंगलवार को

सविस्तार बताऊंगी। किन्तु आज का सभ्य और सुशिक्षित समाज जो कि वेद को आज भलीभांति पढ़ने और समझने लगा है। वे शायद ऋग्वेद का यह मन्त्र (४।१४।३) भी जानते होंगे कि—

आवहन्त्यरुणीर् ज्योतिषागान् मही चित्रा रश्मिभिश्चेकिताना।
प्रबोधयन्ती सुविताय देवी ऊषा ईयते सुयुजा रथेन॥

इसका अर्थ है कि देखो, प्राची के क्षितिज में ऊषा की लाली झलक रही है। अरुण कान्तियों को बिखेरती हुई महिमा-मण्डित, वैचित्र्य चारु, ज्योतिष्मती ऊषादेवी रथासीन रानी के समान गगन के सिंहासन पर पदार्पण, करती हुई अपनी उज्ज्वल रश्मियों से जागृति और प्रबोध प्रदान करने के लिए उदित हो रही है। स्वामी जी लड़के व लड़कियों सब की शिक्षा को अनिवार्य बताते थे और कहते थे कि जो बच्चों को शिक्षा से वंचित रखें उन्हें राजदण्ड मिलना चाहिये। सत्यार्थप्रकाश के तीसरे समुल्लास में कहते हैं कि राजा ऐसा यत्न करे कि सब बालक और कन्याएं ब्रह्मचर्य से विद्यायुक्त होकर समृद्धि को प्राप्त हों और सत्य, न्याय और धर्म का सेवन करें। राजा को प्रयत्न पूर्वक अपने राज्य में स्त्रियों को विदुषी बनाना चाहिए। स्वामी जी ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में लिखते हैं कि विद्वानों की यही योग्यता है कि सब कुमार और कुमारियों को पण्डित एवम् पण्डिता बनावें जिससे सब विद्या को प्राप्त करके सुमति को प्राप्त करें। अन्त में नारियों को वीरता के लिए यजुर्वेद का सन्देश—

अवसृष्टा परापत शरव्ये ब्रह्मशंसिते।
गच्छामित्रान् प्रपद्यस्व मामीषां कञ्चनोच्छिषः॥

विद्वानों द्वारा शिक्षा से तीक्ष्णीकृत एवं प्रशंसित तथा बाण आदि शस्त्र चलाने में कुशल हे नारी, सेनापति आदि से प्रेरित की गई तू शत्रुओं पर टूट पड़। जा, शत्रुओं के पास पहुंचकर उन्हें पकड़ ले। इन में से किसी को भी छोड़ मत। शत्रु को कैद करके कारागार में डाल दे।

२. महर्षि द्वारा नारी उद्धार के प्रयत्न

महीमूषु मातरम् सुव्रतानाम् ऋतस्य पत्नीम् अवसे हुवेम।
तुविक्षत्राम् अजरन्तीम् उरूचीम् सुशर्माणम् अदितिं सुप्रणीतिम्।।

हे नारी, तू महाशक्तिमती है। तू सुव्रती पुत्रों की माता है। तू सत्यशील पति की पत्नी है। तू भरपूर क्षात्रबल से युक्त है। तू शत्रु के आक्रमण से जीर्ण न होने वाली है। तू अतिशय कर्मण्य है। तू शुभ कल्याण करने वाली है। तू शुभ-प्रकृष्ट नीति का अनुसरण करने वाली है। हम तुम्हें सर्व रक्षार्थ पुकारते हैं। प्रिय बहनो जैसा कि गत मंगलवार को मैंने कहा था कि इस बार मैं आपको यह बताना चाहूंगी कि महर्षि दयानन्द जी ने किस प्रकार नारी जाति की गिरती हुई स्थिति में सुधार लाने का प्रयत्न किया। आप सभी जानते हैं कि वेद संसार के प्राचीनतम ग्रन्थ हैं। और आर्यसमाज के तृतीय नियम में कहा है कि "वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेदों का पढ़ना-पढ़ाना एवम् सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।" स्वामी दयानन्द जी ने भी नारी जाति के उत्थान के लिए वेदों का ही सहारा लिया। वेद-मन्त्रों का सही अर्थ बताकर समाज में यह विचार जागृत किया कि नारी की वास्तविक स्थिति क्या होनी चाहिए। उसके क्या-क्या अधिकार और कर्तव्य हैं। नारी को स्वयम् किस कसौटी पर परखना चाहिए? नारी में क्या-क्या गुण छिपे हैं और वह क्या-क्या करने का सामर्थ्य रखती है।

स्वामी दयानन्द जी इस बात के प्रबल पक्षपाती थे कि नारियों को सर्वप्रथम घर में, फिर समाज में और फिर राष्ट्र में अत्यन्त सम्मान की दृष्टि से देखा जाना चाहिए। महर्षि दयानन्द जी ने जब देखा कि छोटी-छोटी मासूम और अबोध कन्याओं के विवाह हो जाते हैं और विवाह योग्य आयु में वे कन्याएं विधवा हो जाती हैं। ना ही कन्या को इस बात का अहसास हो पाता था कि उन बेचारी बाल मासूम कन्याओं का कब विवाह हो जाता था और कब बेचारी वे विधवा हो जाती हैं? बालिकाओं की यह स्थिति देखकर स्वामी खून के आंसू

रो उठे। उनका हृदय द्रवित हो गया और समाज में वेदों के अर्थ का अनर्थ करने वालों को उन्होंने बताया और सत्यार्थप्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में कई वेद-मन्त्रों से प्रमाणित किया कि बाल-विवाह का निषेध होना चाहिए। स्वामी जी ने लिखा। ऋग्वेद में कहा है—

युवा सुवासाः परिवीत आगात् स उश्रेयान् भवति जायमानः॥

अर्थात् यज्ञोपवीतधारी उत्तम शिक्षा और विद्या से युक्त सुन्दर वस्त्र धारण किये हुए जो ब्रह्मचारी युवा पुरुष गृहस्थाश्रम में आता है, वह आचार्य से विद्या जन्म प्राप्त करके श्रेष्ठ बनता है। इस प्रकार यजुर्वेद में भी कहा है कि हे कुमारियो, तुम ब्रह्मचर्य के साथ समस्त विद्याओं को प्राप्त करके, युवति होकर अपने अभीष्ट, स्वयं परीक्षित वरने योग्य पतियों को स्वयं वरो। इस प्रकार महर्षि दयानन्द जी के इस प्रयास से बाल-विवाह पर रोक लगा दी गई थी और आज भारत में बाल-विवाह को रोकने के लिए सरकार ने कानून पास भी कर दिया है।

नारी जाति की उन्नति के क्षेत्र में स्वामी ने अपना दूसरा चरण स्त्री-शिक्षा की ओर बढ़ाया। स्वामी जी के उपदेश संकलन 'उपदेश मंजरी' नामक पुस्तक के तृतीय प्रवचन में स्वामी जी कहते हैं। सब स्त्री और पुरुष अर्थात् मनुष्य मात्र को पढ़ने का अधिकार है। तुम कुएं में पड़ो और तुम्हारा यह कहना कि 'स्त्रीशूद्रौ नाधीयाताम्' कोरी कल्पना और मिथ्या है किसी प्रामाणिक ग्रन्थ की नहीं। पुनः स्त्री शिक्षा के विरोधियों को फटकारते हुए स्वामी जी कहते हैं — "तुम सब अन्धविश्वासी, मूर्ख, ढोंगी जो स्त्रियों के पढ़ने का निषेध करते हो यह तुम्हारी मूर्खता, स्वार्थता और निर्बुद्धिता का प्रभाव है।" स्वामी जी ने कहा कि देखो श्रौतसूत्रादि में लिखा है कि "इमम् मन्त्रं पत्नी पठेत्।" अर्थात् स्त्री यानी कि पत्नी यज्ञ में इस मन्त्र को पढ़े। यदि पत्नी वेदादि शास्त्रों को ना पढ़ी होती तो यज्ञ में स्वर सहित मन्त्रों का उच्चारण और संस्कृत भाषण कैसे कर सकती? स्वामी जी ने कहा जो पुरुष विद्वान् और स्त्री अनपढ़ हो नित्य प्रति घर में देवासुर संग्राम ही मचा रहे फिर सुख कहां?

बहनो, समय की मूल्यता को दृष्टि में रखते हुए यह प्रवचन आज यहां आधे में समाप्त कर देना चाहती हूं और आगामी मंगलवार को यहीं से विषय को और आगे बढ़ाऊंगी।

प्रवचन के अन्त में बच्चों के लिए एक छोटा-सा सन्देश है। प्यारे बच्चो आप जानते हैं मीठा बोलना कितनी अच्छी बात होती है। संस्कृत का श्लोक है —

केयूरा न विभूषयन्ति पुरुषं हारा न चन्द्रोज्ज्वला,
न स्नानं न विलेपनं न कुसुमम् नालङ्कृता मूर्धजा।
वाण्येका समलङ्करोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते,
क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम्।

मीठी वाणी

जब अपना मुंह खोलो तुम, मीठी वाणी बोलो तुम।
जग में आदर पाओगे, बहुत नेक कहलाओगे।
कोयल मीठा गाती है, सब का दिल बहलाती है।
तोता सब को भाता है, मीठा-मीठा गाता है।
मैना खुश क्यों करती है? बोली से मन हरती है।
कौआ जब चिल्लाता है, इसको कोई न चाहता है।
सच्चा यह गुर जानो तुम, बात कीमती मानो तुम।
जब अपना मुंह खोलो तुम, मीठी वाणी बोलो तुम।

अहम् केतुरहं मूर्धा अहम् उग्रा विवाचनी।
ममेदनु क्रतुं पतिः सेहानाया उपाचरेत्॥
— ऋग्वेद १०।१५९।२.

मन्त्र में कहा है—

मैं नारी राष्ट्र की ध्वजा हूँ, मैं नारी समाज का सिर हूँ। मैं नारी उग्र(तीक्ष्ण) हूँ। मेरी वाणी में बल है, शक्ति है। शत्रु सेना को पराजित करने वाली मैं युद्ध में वीर कर्म दिखाने के पश्चात् ही पति का प्रेम पाने की अधिकारिणी हूं। इस ऋग्वेद के मन्त्र में नारी को वीरांगना

की उपाधि दी गई है। किन्तु वैदिक काल के बाद एक ऐसी अशुभ घड़ी भी आई जब नारी को अबला समझा जाने लगा और समाज ने उसे अबला प्रमाणित भी कर दिया। हिन्दी कवियों ने तो यहां तक कह डाला कि—

अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।
आंचल में है दूध और आंखों में है पानी।।

पर हे नारी, औरत, स्त्री याद रख कि वेद के अनुसार तू अबला नहीं सबला है, वीरांगना है। हे नारी, हे बहनो, आज के युग में इस नवरात्र के दिनों में मैं आप सब बहनों को यह याद करवाना चाहती हूं , नारी तुम में जो शक्ति है वह किसी और में नहीं। हे नारी तू स्वयं को पहचान।

यजुर्वेद ५।१२। के एक मन्त्र में कहा है—

सिँह्यसि स्वाहा सिँह्यस्यादित्यवनिः स्वाहा,
सिँह्यसि ब्रह्मवनिः क्षत्रवनिः स्वाहा,
सिँह्यसि सुप्रजावनी रायस्पोषवनिः स्वाहा,
सिँह्यस्यावह देवान् यजमानाय स्वाहा भूतेभ्यस्त्वा॥

इस मन्त्र का अर्थ है कि हे नारी, तू सिंहनी अर्थात् शेरनी है। तू शत्रुओं को नष्ट करने वाली है इसलिए देवताओं के हित के लिए अपने अन्दर सामर्थ्य उत्पन्न कर। हे नारी, तू अविद्या के अन्धकार को हर और विद्या का प्रकाश फैला। हे नारी, तू वो शेरनी है जो आदित्य ब्रह्मचारियों की जन्मदात्री है। हम तेरी पूजा करते हैं, हे नारी, ब्राह्मणों और क्षत्रियों की जन्मदात्री है, हम तेरा यशोगान करते हैं। हे नारी, तू श्रेष्ठ सन्तानों को देने वाली और धन की पुष्टि को देने वाली है। हम तेरा जय-जयकार करते हैं। हे नारी, समाज के प्राणियों के हित के लिए हम तुझे नियुक्त करते हैं।

यजुर्वेद के 13वें अध्याय का १६वां मन्त्र है—

ओ३म् ध्रुवासि धरुणास्तृता विश्वकर्मणा।
मा त्वा समुद्र उद्वधीन्मा सुपर्णो अव्यथमाना पृथिवीं दृँ ह॥

हे नारी, तू ध्रुव तारे की तरह अटल है, अविचल निश्चयवाली है, सुदृढ़ है, अन्यों को धारण करने वाली है। विश्वकर्मा अर्थात् परमेश्वर ने तुझे विद्या, धीरता आदि गुणों से अलंकृत किया है। ध्यान रख, समुद्र के समान उमड़ने वाला शत्रु-दल तुझे कभी हानि न पहुंचा सके। गरुड़ के समान आक्रमणकारी शत्रु तेरा नाश ना कर सके। किसी से भी पीड़ित दुःखी ना होती हुई नारी राष्ट्रभूमि की, समाज की रक्षा कर, उसे आगे बढ़ा।

1. स्त्रीशूद्रौ नाधीयाताम्
2. इमं मन्त्र पत्नी पठेत्।
3. उपाध्यायाद् दशाचार्यः आचार्याणां शतं पिता। पितुर्दशशतं माता, गौरवेणातिरिच्यते॥ वसिष्ठ धर्म-सूत्र। अध्यापक से दस गुना आचार्य, आचार्य से सौ गुणा पिता, पिता से हजार गुणा माता का गौरव है।
4. मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् भव।
5. यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः। मनु०
6. अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।
   आंचल में है दूध आखों में है पानी॥
7. ढोल गंवार शूद्र पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी—
8. अहम् केतुरहं मूर्धा, अहम् उग्रा विवाचनी,
   मैं राष्ट्र की ध्वजा समाज का सिर हूं, मैं उग्र हूं, मेरी वाणी में बल है।
9. अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वती।
   अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि।।

उच्च कोटि का अध्यापन करने वाली, अव्यक्त रहस्यमय विद्याओं की कुशल उपदेशिका, सद्विद्या से प्रदीप्त करने वाली विदुषी मां, हमारे जीवन अप्रशस्त, दिशाहीन हो गए हैं तू अपने सदुपदेश से हमें प्रशस्ति प्रदान कर।

इसलिए वेद में कहा है कि हे नारी! तुम राष्ट्र गगन में प्रकाशवती होकर चमको। तुम ईश्वर भक्ति के प्रकाश से, विद्या के प्रकाश से, विवेक के प्रकाश से, सदाचार के प्रकाश से, सौजन्य के प्रकाश से प्रेम के प्रकाश से, माधुर्य के प्रकाश से, सत्कर्म के प्रकाश से, सन्मति के प्रकाश से, सौन्दर्य के प्रकाश से, सौमनस्य के प्रकाश से, धर्म के प्रकाश से, सत्य के प्रकाश से, अहिंसा के प्रकाश से, ब्रह्मचर्य के प्रकाश से, पवित्रता के प्रकाश से, सन्तोष के प्रकाश से, तपस्या के प्रकाश से, सेवा के प्रकाश से, स्वाध्याय के प्रकाश से सारे विश्व में ज़गमगाओ।

हे राष्ट्र की पूजा योग्य नारी! तुम परिवार और राष्ट्र में सत्यं शिवं सुन्दरम् की अरुण कान्तियों को छिटकाती आओ और अपने विस्मयकारी सद्गुण-गणों के द्वारा अविद्याग्रस्त मानवों को प्रबोध एवम् बुद्धि प्रदान कर। जन-जन को सुख देने के लिए अपनी जगमगाती हुई शक्ति का आह्वान करें।

३. उपनिषदों का सन्देश

ओ३म् त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ।
अधा ते सुम्नमीमहे।

आज मैं आप सब के लिए नया विषय लेकर आई हूं। और वह है— 'उपनिषदों का सन्देश'।

आज के कलियुग में मानव के सामने कई एक समस्याएं हैं। कई उलझनों में उलझं गया है आज का मनुष्य। वैसे तो मनुष्य स्वयम् एक समस्या है। और यह संसार केवल समस्या ही नहीं अपितु एक रहस्य भी है। अभी भूख की उलझन ही नहीं सुलझ पाई थी कि कई और समस्याएँ आगे आकर खड़ी हो गईं। जैसे कि राष्ट्रों के संघर्ष की समस्या, विभिन्न दलों की समस्या, तूफानों और विनाशकारी बाढ़ों की समस्या, रोग और मृत्यु की समस्या। अभी तक कोई भी समस्या नहीं हल हो सकी है।

आज तक यह पता नहीं चल सका कि मृत्यु के पश्चात् क्या होता है? केवल शरीर ही मरता है, या कि आत्मा भी समाप्त हो जाता है? यदि आत्मा जीवित रहता है तो कहां चला जाता है? जो भी इस दुनिया से जाता है, न पत्र लिखता है, न तार भेजता है, और न ही फोन करता है। परन्तु जिन्दगी के रंगमंच का परदा ऐसा गिरता है कि जाने वाले मनुष्यरूपी अभिनेता का कुछ भी पता नहीं चलता। सब कहते हैं कि विज्ञान ने कितने ही आश्चर्यजनक आविष्कार कर डाले हैं किन्तु विज्ञान माया में इतना उलझकर रह गया है कि आज तक मनुष्य के जीवन-मरण की एक भी समस्या नहीं सुलझा पाया। और विज्ञान केवल जड़ के कीचड़ में ही फंसा पड़ा है। किन्तु मनुष्य केवल जड़ नहीं, इसमें तो दो-दो आत्माओं का वास है। एक समस्त संसार को चलाने वाला परमात्मा और दूसरा इस शरीर का अधिष्ठाता जीवात्मा। ये दोनों ही आत्मा चेतन हैं। इसीलिए जब तक माया और आत्मा दोनों की सम्मिलित खोज ना होगी तब तक विज्ञान अधूरा और असफल रहेगा।

केवल प्रकृति या माया का जाल उलझनें बढ़ा तो देगा किन्तु सुलझा एक भी नहीं सकेगा। कहीं इतनी वर्षा होती है कि विनाश जाग उठता है, कहीं मानव बूंद-बूंद पानी को तरस जाता है अर्थात् इन सब बातों पर भी विज्ञान का कोई अधिकार या वश नहीं है। आज विज्ञान के सुन्दर आविष्कारों के झूले में झूलता हुआ मानव दुःखी है, एक क्षण के लिए भी सुखी नहीं। परन्तु क्यों? कहीं भय है, कहीं घृणा, कहीं युद्ध की तैय्यारी है तो कहीं भयंकर हथियारों के आविष्कार। इन सब बातों पर विचार क़रें तो ऐसा लगता है कि जिस विज्ञान को मनुष्य ने अपनी रक्षा के लिए अपना सहायक बनाया था, वही उसे सर्वनाश की ओर ले जा रहा है। प्रश्न उठता है कि क्यों नहीं सुलझती समस्या? क्यों मनुष्य को सुख-शान्ति नहीं मिलती? उत्तर यह है कि क्योंकि यह विज्ञान अधूरा है। इस प्रकृति के पीछे छिपी वास्तविक शक्ति को तो उसने समझा ही नहीं। फिर ये सारी उलझनें ये सारे भेद कैसे खुलेंगे? वह तभी सम्भव है जब प्रकृति और आत्मा दोनों को साथ रखकर खोज होगी। इसी को अध्यात्मवाद या आत्मज्ञान कहते हैं।

मेरी धारणा यह है कि अध्यात्मवाद में निश्चित रूप से लौकिक और पारलौकिक सभी प्रकार की उलझनों के समाधान की पूर्ण शक्ति विद्यमान है। चोरी को, भ्रष्टाचार को, अनाचार को, अत्याचार और व्यभिचार को केवल आध्यात्मवाद ही दूर कर सकता है। उपनिषत् काल में आध्यात्मवाद का प्रचार था, तब लोगों के चरित्र भी बहुत ऊंचे थे। यही बताने के लिए आज मैं आपको उदाहरण के रूप में एक कथा सुनाती हूं—

जब नीतिकार विदुर संसार भर में घूमकर महाराज धृतराष्ट्र के पास पहुंचे तो महाराज ने पूछा कि विदुर जी, आप सारा संसार घूमकर आए हैं, कहिए कि कहां पर क्या-क्या देखा आपने? विदुर जी ने उत्तर दिया— हे राजन्! कितने आश्चर्य की बात देखी है मैंने। सारा संसार लोभ की शृंखलाओं में फंस गया है। लोभ, क्रोध, भय के कारण

उसे कुछ भी दिखाई नहीं देता, पागल हो गया है। आत्मा को तो वो जानता तक नहीं। तब विदुर जी ने एक कथा उन्हें सुनाई जो आज मैं यहाँ आपको सुनाने जा रही हूं।

एक बहुत भयानक जंगल था। उस जंगल में एक भूला भटका व्यक्ति जा पहुंचा। उस व्यक्ति ने देखा कि उस जंगल में शेर, चीते, रीछ और हाथी आदि कितने ही हिंसक पशु दहाड़ रहे हैं। भय से उस व्यक्ति के हाथ-पांव कांपने लगे। बिना देखे वह भागने लगा और अन्धा-धुन्ध भागता ही रहा। भागता ही रहा। जब एक स्थान पर सांस लेने के लिए रुका तो देखा कि पांच-पांच विषधर सांप फन उठाए फुंकार रहे हैं। उसके पास ही एक वृद्ध स्त्री खड़ी टकटकी लगाए उसे देख रही है। यह सर्प जैसे ही उस व्यक्ति की ओर लपके फिर वो भागा और भागता-भागता अन्त में एक गढ़े में जा गिरा जो घास और पौधों से ढंका हुआ था। सौभाग्य से एक बड़े वृक्ष की शाखा उसके हाथ में आ गई। उसको पकड़कर वह लटकने लगा।

लेकिन जैसे ही उसकी दृष्टि नीचे की ओर गई तो उसने देखा नीचे एक कुआं है और कुएं में एक बहुत बड़ा सर्प अजगर मुंह खोले बैठा है। उसे देखकर तो वह और भी भयभीत हो गया, और पेड़ की शाखा को और दृढ़ता से पकड़ लिया। किन्तु जब उसने ऊपर की और देखा तो उससे भी भयानक दृश्य था कि एक छः मुखवाला हाथी वृक्ष को झंझोड़ रहा है और जिस शाखा को वह पकड़े था उसे सफेद और काले रंग के दो चूहे काट रहे हैं। भय से बेचारे का रंग पीला पड़ गया, माथे पर स्वेद-विन्दु छलक आए, नयनों में नीर भर आया। परन्तु तभी एक शहद की बूंद उसके होठों पर आ गिरी। उसने देखा कि वृक्ष के ऊपर वाले भाग में मधुमक्खियों का छत्ता लगा था जिसमें से धीरे-धीरे शहद की बूंदें गिरती थीं। बस सारे दृश्य भूलकर वह मधु बूंदों का स्वाद लेने लगा। महाराज धृतराष्ट्र ने जब यह कथा सुनी तो पूछा— विदुर जी! ये कौन से जंगल की बात आप कह रहे हैं? और कौन है वो अभागा व्यक्ति जो इस भयानक वन में पहुंचकर संकट

में फंस गया? विदुर जी ने उत्तर दिया— हे राजन्! यह संसार ही वह वन है, और मनुष्य ही वह अभागा व्यक्ति है। इस संसाररूपी जंगल में पहुंचते ही रोग, कष्ट और चिन्तारूपी पशु दहाड़ रहे हैं। यहीं काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार के ही पांच विषधर सांप फन फैलाए फुंकार रहे हैं। और वह वृद्ध स्त्री जिसे वृद्धावस्था कहते हैं। जो रूप तथा यौवन को समाप्त कर देती है। इन सब से डरकर जब वह भागा जो पेड़ की शाखा उसके हाथ में आई वो जीने की इच्छारूपी शाखा थी। जहां नीचे मृत्यु का महासर्प मुख खोले बैठा है। वह काल-सर्प है, जिससे आज तक कोई नहीं बच सका। ना राम, ना रावण, ना कोई राजा ना महाराजा, न कोई धनवान्, न कोई निर्धन न मजदूर न पूंजीपति। और वह छः मुख वाला हाथी वर्षा है छः ऋतुएं ही उसका मुख है। और वह काले और सफेद रंग के चूहे जो इस जीने की शाखा को तीव्रता से कुरेदते हैं, वह हैं रात और दिन। ये रात-दिन प्रतिदिन समय की याद दिलाते हैं। हम सोचते हैं कि हम बड़े हो गए हैं किन्तु हम बड़े नहीं प्रतिदिन घटते चले जाते हैं—

ज़ेरे गई उम्र अपनी दिन ब-दिन कटती गई।
जिस कदर बढ़ते गए जिन्दगी घटती गई।।

और वह जो शहद की बूंदें टपक रही थीं, वे हैं— आशा, तृष्णा और जीने की इच्छा। जीता रहूं और पीता रहूं यह आशा है। इस अवस्था में लटक रहा है मनुष्य? कभी काल सर्प को देखकर—

हरदम है तबियत की उलझन। इक यास का आलम तारी है।
यह सांस नहीं इक कांटा है, यह जीवन नहीं बीमारी है।

४. स्नेहमयी माँ

आप सभी श्रोतागण जानते हैं कि इस सप्ताह में हिन्दू धर्म का सर्वप्रिय, पवित्र, उज्ज्वल एवम् प्रकाशमय त्यौहार दीपावली आ रहा है। अतः आज मैं आप सब को बताऊंगी कि इसके शुभ आगमन पर बधाई हो एवम् आगामी नव-वर्ष आप सब के लिए सुख, समृद्धि व शान्ति लाए।

प्रिय बहिनो, आज के प्रवचन का मेरा विषय है— स्नेहमयी मां।

आस्तां तावदियं प्रसूतिसमये दुर्वारशूलव्यथा।
नैरुच्ये तनुशोषणं मलमयी शय्या च सांवत्सरा॥
एकस्यापि न गर्भभारभरणक्लेशस्य यस्याः क्षमो,
दातुं निष्कृतिमुन्नतोऽपि तनयस्तस्यै जनन्यै नमः॥

आदरणीय मां को प्रसव के समय असह्य शूल वेदना होती है। खान-पान में रुचि ना रहने के कारण शरीर सूख जाता है और सौर प्रसव के बाद सौर में मलमूत्र वाली शय्या पर सोना पड़ता है, इन कष्टों को जाने भी दें तो भी गर्भभार को वहन करने में जो महान् क्लेश होता है अकेले उसी एक का बदला चुकाने में भी पुत्र असमर्थ है। चाहे पुत्र कितना ही बड़ा क्यों न हो गया हो। उस माता को मेरा शत शत प्रणाम है।

यह श्लोक अभी मैंने अर्थ सहित पढ़ा। यह श्लोक आदि शंकराचार्य द्वारा लिखा गया है। यह श्लोक उन्होंने अपने जीवन के अनुभव के आधार पर लिखा है।

हमारे धार्मिक ग्रन्थों में स्नेहमयी मां के विषय में कहा है— हे मां! तुम रसमयी हो, स्नेहमयी हो, हम सन्तानों के हित में अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देने वाली हो। हे मां! तुम त्यागमयी हो, दयामयी हो, क्षमामयी हो, सत्यमयी हो, ज्ञानमयी हो, कर्ममयी हो, धर्ममयी हो। वेद ने तुम्हें आपः, सरस्वती, ऊषा, अदिति, असुनीति, पृथिवी, विद्युत्

अम्बा, देवी आदि शब्दों से स्मरण किया है। तुम स्नेह एवम् शोधक जलों के समान वात्सल्य रस से परिपूर्ण तथा शोधक होने के कारण आपः हो। तुम निर्मलमयी नदी के समान ज्ञान-सलिल से परिपूर्ण होने के कारण 'सरस्वती' हो। तुम प्रकाशमयी ऊषा के समान बौद्धिक स्फुरण से देदीप्यमान होने के कारण 'ऊषा' हो। तुम आन्तरिक तथा बाह्य शत्रुओं से अखण्डित एवम् अदीन होने के कारण अदिति हो। तुम अपने तथा अपनी सन्तानों के शरीर में प्रशस्त प्राणों का नयन करने के कारण 'असुनीति' हो। तुम विस्तीर्ण भूमि के समान विशाल हृदय वाली होने के कारण पृथिवी हो। तुम बिजली के समान तेजोमयी होने के कारण विद्युत् हो। तुम समयानुसार सदुपदेश करने के कारण अम्बा हो। तुम दिव्य गुणों से जगमगाने के कारण देवी हो। हे मां! हमें तुम पर गर्व है तुम जैसा बनने के लिए हम प्रयत्नशील हों और तुम्हारी शिक्षाओं से हम प्रभावित हों। अर्थववेद में कहा है—

माता भूमिः पुत्रोऽहम् पृथिव्याः।

हे पृथ्वी! तू मेरी माता है और मैं तेरा पुत्र हूँ। संस्कृत-साहित्य में कहा है कि —

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।

अर्थात् जिस मां रूप पृथ्वी पर यानि कि भूमि पर मैंने जन्म लिया वह मातृस्थल स्वर्ग से भी श्रेष्ठ है।

५. आत्मविश्वास, प्रभुविश्वास

प्यारे श्रोतागणो! इस नव-वर्ष का मेरा यह पहला प्रवचन S.B.C. यानी कि Surinam Broadcasting Corporation के माध्यम से आप तक पहुंचाया जा रहा है। इसलिए इस नये वर्ष की S.B.C को हार्दिक बधाई हो और भगवान् से मैं यह प्रार्थना करती हूँ कि S.B.C पर प्रभु के आशीर्वाद की छाया बनी रहे, उस प्रभु की कृपा के फूल इस रेडियो स्टेशन पर सदा ही बरसते रहें ताकि यह S.B.C आपकी सेवा सदा ही शुभ कर्मों से करता रहे। एक बार फिर से S.B.C को इस नये स्थान की हार्दिक बधाई देती हूं।

प्यारे श्रोतागणो! यदि हम अपने जीवन की अमूल्य घड़ियां ठीक प्रकार से बिताना चाहते हैं तो सब से पहले हमें अपने स्वयम् के अन्दर एक आत्मविश्वास पैदा करना चाहिए। यह आत्मविश्वास हमारे जीवन में प्रभु पर विश्वास करने से ही उत्पन्न हो सकता है। जब हम अपनी सारी इच्छाओं को प्रभु के भरोसे छोड़कर केवल अपने से शुभ कर्म करते जाएं तो यह आत्मविश्वास हमारे भीतर स्वयम् ही पैदा होता चला जाएगा। आप ज़रा सोचिये कि यदि हमारे जीवन में से विश्वास ही समाप्त हो जाए तो हमारे पास क्या रह जाता है? बस एक, शून्यता, शुष्कता, कटुता, तनाव और कभी न भरने वाला एक खालीपन। क्योंकि जीवन में विश्वास की शक्ति बहुत गहरी है और यह आत्मविश्वास हमारा जीवन चलाने का एक महान् अस्त्र भी है। महात्मा गांधी जी के शब्दों में यह विश्वास हमें तूफानी सागर में से खेकर किनारे तक ले जाता है। यह विश्वास बड़े से बड़े अटूट, ना झुकने वाले पर्वतों को हिला देता है। और यही विश्वास महासागर के तूफानों में शान्ति स्थापित कर देता है। और जिस विश्वास की महिमा मैं आज आपको बता रही हूं वह विश्वास और कुछ नहीं बस अपनी अन्तरात्मा में प्रभु भगवान् की उपस्थिति से जीवित और जागृत होता है। किन्तु यह विश्वास हमारे जीवन में अवश्य ही आता है पर धीरे-धीरे गहरे ध्यान से और

प्रभु की सच्ची प्रार्थना से। प्यारे श्रोतागणों! विश्वास के विषय में महात्मा टाल्स्टाय ने एक कहानी लिखी है जो आज मैं आपको सुना रही हूं—

एक बार एक पहाड़ी पर तीन लोग भगवान् से इन शब्दों में प्रार्थना कर रहे थे कि हम एक हैं तुम तीन हो। इतने में उधर से एक साधु-महात्मा आ रहे थे, वह इस प्रार्थना को सुनकर वहां खड़े हो गए और उन तीनों से कहने लगे कि मनुष्यो, तुम यह क्या बोल रहे हो कि तुम तीन हो हम एक हैं। ऐसा कहो कि हम तीन हैं तुम एक हो। यह कहकर साधु-महात्मा अपने मार्ग पर दोबारा चलने लगे। और वह तीनों लोग भी साधु महात्मा के बताए हुए शब्दों से प्रार्थना करने लगे। पर कुछ देर बाद वह महात्मा जी के शब्दों को भूल गए और तीनों साधु-महात्मा की खोज में दौड़ने लगे। वह तीनों व्यक्ति भागते हुए पहाड़ी के नीचे नदी के किनारे पहुंचे तो उन्होंने देखा कि महात्मा जी नाव पर सवार होकर नदी में जाने लगे। और वह तीनों व्यक्ति पानी पर ही भागते हुए चिल्लाकर कह रहे थे कि महात्मा जी हमें आपके बताए हुए शब्द भूल गए हैं, कृपया फिर से बतलाते जाइये। महात्मा जी उन तीनों को तो पानी पर भागते देख कर आश्चर्यचकित हो गए और नाव पर से ही बोले— लौट जाओ मेरे बच्चो, मेरे बताए शब्दों को भूल जाओ, अपने ही शब्दों में अपने ही आत्मविश्वास के साथ प्रार्थना करो।

श्रोतागणो, ऐसा होता है, विश्वास का जादू जो व्यक्ति को पानी पर चला देता है। आत्मविश्वास की एक दूसरी घटना आज मैं आपको सुनाती हूं कि एक बार एक गांव में भयंकर अकाल पड़ गया। बारिश ना होने से सारी गांवों की खेतियां सूख गईं। गांव के लोग, नारी, बच्चे पानी के बिना प्यासे तड़पने-तरसने लगे। जल के अभाव से सारे गांव में त्राहि-त्राहि मचने लगी। इस स्थिति को देखकर उस गांव के कुछ धार्मिक लोगों ने विचार किया और सोचा कि वर्षा के लिए हमें इन्द्र देवता को प्रसन्न करने के लिए उनकी पूजा करनी चाहिए। सभी गांव वाले कुछ दूरी पर बने एक देव मन्दिर में पूजा के लिए जाने लगे।

उन गांववासियों में एक छोटा-सा नन्हा-सा 6 वर्ष का बालक भी था। बालक भी तैयार होकर अपने साथ में छतरी लेकर पूजा करने चला। उसे छाता लिये देखकर सब हंसने लगे और बोले— हम तो बारिश के लिए प्रार्थना करने जा रहे हैं और तुम यह छाता किसलिए लेकर आए हो। बालक ने पूरे आत्म-विश्वास से कहा कि क्यों हम सब तो वर्षा होने के लिए भगवान् इन्द्र की प्रार्थना करने जा रहे हैं। और जब इन्द्र देवता ने हमारी प्रार्थना सुन ली और वर्षा होने लगेगी। तब मैं भीग नहीं जाऊंगा। इसीलिए मैं यह छाता अपने साथ लेकर आया हूं। तो श्रोतागणो, यह था उस बालक का आत्मविश्वास। उस दिन सचमुच उस बालक के प्रभु के विश्वास से बारिश हुई और सब प्रसन्न हो गए। इसलिए जब हम जीवन में भय करते हैं, डरते हैं, चिन्ता करते हैं, संदेह करते हैं तो हम भगवान् के प्रति अविश्वास प्रकट करते हैं। यदि हमें अपने पर दृढ़ अटल विश्वास हो तो हमारे सारे अवगुण क्षण भर भी नहीं टिक पाते। आज अन्त में एक सच्ची घटना आपको सुनाती हूं—

एक छोटे से बालक को अकेले स्कूल जाते हुए एक दुष्ट व्यक्ति बहुत डराया-सताया करता था। इसलिए बेचारा बालक जब भी उस दुष्ट व्यक्ति को देखता तो डरकर तेजी से भागने लगता। एक दिन की बात है कि वह बालक अपने पिता का हाथ थामे उस रास्ते से जा रहा था, किन्तु उस दिन उस दुष्ट व्यक्ति को देखकर डरने की बजाय वह निर्भीक होकर उससे बोला कि आज मैं तुम से नहीं डरता, क्योंकि आज मेरे पिता मेरे साथ हैं, उन्होंने मेरा हाथ थामा हुआ है। तो श्रोतागणो, यदि इसी प्रकार का विश्वास हमारे हृदय में बैठ जाए कि हमारा परम पिता प्रभु सदैव हमारे साथ रहता है और हमारा हाथ थामे रखता है तो हमारे जीवन में, भय, चिन्ता और डर का कोई स्थान नहीं रह जाता।

अतः श्रोतागणो, अन्त में मेरा यही सन्देश है कि उस ज्ञानरूपी परमेश्वर पर श्रद्धा रखो। क्योंकि—

कहां छिपा है ईश्वर मेरा, लोग पूछते प्रश्न?

कुछ कहते हैं 'है ही नहीं' व्यर्थ ना करो भजन।
किन्तु पता उनको नहीं, प्रभु तेरा सबल स्वरूप ।
सुविधाजीवी लोग वे चलते नहीं तेरे अनुकूल।
स्वार्थों से समृद्धि का जो छूते आकाश।
पल में तू भूकम्प बन, करता उनका नाश।
आत्मज्ञान से मनुष्य तू बढ़ा बुद्धि का क्षेत्र।
श्रद्धा से खुल जायेंगे स्वयं तेरे नेत्र।
तब तुझ को हो जाएंगे, ईश्वर के दर्शन।
कहां है वह, है या नहीं, ये उठेंगे प्रश्न॥

६. संसार चक्र

ऋग्वेद के सातवें मण्डल के छियालीसवें सूक्त में एक मन्त्र आता है—

उत स्वया तन्वा सं वदे तत्कदान्वन्तर्वरुणे भुवानि।
किं मे हव्यमहृणानो जुषेत कदा मृळीकं सुमना अभिख्यम्।।

हे स्वामिन्! हे सुन्दरतम परमात्मन्! विवाह के पश्चात् जैसे कन्या के लिए वर होता है उसी प्रकार हे मेरे वरुणदेव! कब आएगी वह घड़ी जब मैं अपने आत्मा से तुम्हारे साथ बातें कर सकूंगा, जब तेरे हृदय का प्यार पाकर, तुझ से मिलकर एक हो सकूंगा? कब आएगी वह घड़ी जब तू प्यार और आदर के साथ मेरे गीतों को स्वीकार करेगा और मैं अच्छे मन से तेरे दर्शन पा सकूंगा।

इस मन्त्र में मनुष्य की जो पुकार है आज उसे संसार में सर्वत्र सुना जाता है। प्रत्येक के हृदय से उठती हुई चीख-पुकार सुनकर ऐसा लगता है, गुरु नानक महाराज ने ठीक ही कहा था— "नानक दुखिया सब संसार।" सत्य ही कहा था। क्योंकि आज भौतिक आविष्कारों को देखकर संसार का मानव अपने आपको इस प्रकार भूल गया है, जैसे छोटे-छोटे बच्चे सरकस देखकर अपनी सुध-बुध भूल जाते हैं। आज का मानव चकित है कि इसके चारों ओर संसार में क्या हुआ जाता है? कभी समय था कि जब लोग सोचते थे कि मैं क्या हूँ? मुझे यह जीवन क्यों मिला? उसका उद्देश्य क्या है? यह परिवार, समाज, राष्ट्र और संसार क्या है। वह समय था जब आत्मदर्शी महात्माओं को संसार में सब से मुख्य समझा जाता था। उसके बाद बड़े-बड़े योद्धाओं को महान् समझा जाने लगा, वह समय भी चला गया। उसके बाद धनवानों का समय आया, लोग उनकी पूजा करने लगे। वह समय भी चला गया। उसके बाद राजनैतिक नेताओं का समय आया और भोली जनता उनको ही भगवान् समझने लगी। वह समय भी चला गया। किन्तु

अब तो एक विचित्र-सा समय आ गया है। आप सब लोग फिल्म अभिनेता और फिल्म अभिनेत्रियों को ही भगवान् समझ उनका दर्शन पाना चाहते हैं। आज यह पता चल जाए कि अमुक स्थान पर कोई अभिनेता या अभिनेत्री आई है तो वहां दर्शक जनता की भीड़ इस प्रकार लग जाएगी कि जैसे स्वर्ग की मुक्ति का द्वार तो वहीं पर खुला है।

ऐसे समय में मैं आपसे हर मंगलवार को आत्मदर्शन, भक्त और भगवान् की बात करती हूँ। कभी-कभी यह महसूस होता है कि भौतिक पूजा के समय में यह असमय का राग कैसा? परन्तु सोचकर देखिये कि यह असमय का राग बिल्कुल नहीं। यह वो बात है जिसके बिना मनुष्य के जीवन में कभी शान्ति नहीं आती। उसके बिना उसका जीवन दुःखी और अधूरा रहता है। और आज का प्रत्येक व्यक्ति सुख की खोज में संलग्न है और सुख ३ प्रकार का होता है — शारीरिक सुख, मानसिक शान्ति एवम् आत्मिक आनन्द। आज जिन भौतिक-वैज्ञानिक आविष्कारों को देखकर मानव जो चकित भ्रमित हुआ है उससे मानसिक शान्ति एवम् आत्मिक आनन्द का तो प्रश्न ही नहीं उठता। हां, शारीरिक क्षणिक सुख मिला अवश्य किन्तु उस पर भी वह आत्मा और मृत्यु पर विजय नहीं पा सका। इसका कारण यह है कि सच्चा सुख, शान्ति और आनन्द इस माया में है ही नहीं। माया खेल दिखा सकती है अवश्य, परन्तु सुख, शान्ति और आनन्द केवल उस समय मिलते हैं जब आत्मा और ईश्वर का मिलाप होता है। जब दोनों बातें करते हैं, दोनों एक दूसरे के प्यार को अपने हृदय में धारण करके एक दूसरे के हो जाते हैं।

इस संसार में एक ओर प्रकृति है और दूसरी ओर ईश्वर। दोनों के मध्य आत्मा खड़ा है। मनुष्य को स्वयं यह निर्णय करना है कि वह किसको चुनेगा। हमारे शास्त्र इसे श्रेय और प्रेय मार्ग कहते हैं। प्रेय मार्ग ही प्रकृति है। और प्रकृति मनमोहिनी, मन लुभावनी माया है। कितने ही रूप हैं उसके? प्रत्येक पग पर प्रतिक्षण अपने रंग-ढंग बदलती है। वह अपने रूप द्वारा मोहित कर देती है मनुष्य को। परन्तु अन्त में वहां विनाश के अतिरिक्त कुछ भी नहीं। उसका अन्त इतना

विनाशकारी है और यह मनमोहिनी प्रकृति अन्त में आत्मा को इस प्रकार

पटकती है कि फिर यह आत्मा युगों-युगों तक जन्म-जन्म तक नहीं संभल पाता। इस प्रकृति के विनाश की कथा आज मैं आपको सुनाती हूं—

एक दिन भगवान् कृष्ण के पास नारद जी आए। बोले—भगवान्! मैं ब्रह्मज्ञान की बात पूछने आया हूं कि क्या है यह ब्रह्मज्ञान? क्यों हम ब्रह्म का दर्शन नहीं कर पाते हैं। श्रीकृष्ण ने कहा, अभी आए हो थोड़ी देर बैठो, प्रश्न का उत्तर मिल जाएगा। नारद जी बैठे। तनिक विश्राम किया और बोले— अब दो मेरे प्रश्न का उत्तर। श्रीकृष्ण ने कहा— इतनी भी शीघ्रता क्या है? चलो जंगल में घूमने चलते हैं वहीं बातें करेंगे। घूमते-घूमते नारद जी काफी थक गए थे, प्यास भी सताने लगी थी। श्रीकृष्ण ने मुस्कुराते हुए कहा— आपको शायद प्यास लगी है, और मुझे भी लगी है। मैं यहां बैठता हूं आप कहीं से देखकर थोड़ा पानी ले आइये।

नारद जी बोले— आप बैठिये भगवन् मैं पानी लेकर अभी आता हूं। नारद जी पानी लेने गए तो उन्हें आगे एक कुआँ मिला जहां सुन्दर पनिहारिनें पानी भर रही थीं। नारद जी ने एक युवती से पानी मांगा तो युवती ने एक घड़े से पानी पिला दिया। नारद जी पानी पी रहे थे और युवती की ओर टकटकी लगाए देख रहे थे। बस फिर क्या था, देखते-देखते मन में मोह जाग उठा। जब वह लड़की अपने घर को चली तो नारद जी भी उसके पीछे-पीछे चल पड़े। उसके घर पहुंचे तो लड़की के पिता ने उन्हें पहचानकर कहा— नारद जी आप? बड़े भाग्य हैं मेरे जो आपके दर्शन हुए। अब तो मैं आपको खाना खाए बिना नहीं जाने दूंगा। नारद जी तो यही चाहते थे। बोले— भूख तो लगी है। भोजन कर चुके तो बोले— हम कुछ दिन तुम्हारे घर में रहें तो क्या हो? लड़की के पिता ने कहा— यह तो मेरा सौभाग्य है? नारद जी सब कुछ भूलकर वहीं टिक गए। उस लड़की के रूप के मोह ने उन्हें पागल कर दिया। वहीं टिक गए। मन में जो गिरावट

आई थी वह और भी नीचे की ओर लिये जाती थी। फिर मौका बनाकर एक दिन नारद जी कन्या के पिता से बोले मैं— चाहता हूं कि आपकी कन्या का विवाह मेरे साथ हो जाए। लड़की के पिता ने कहा— महाराज, कन्या तो पराया धन है, मुझे उसका विवाह तो करना ही है। आपसे अच्छा वर उसे कहां मिलेगा, किन्तु मेरी एक शर्त है कि विवाह के पश्चात् आप मेरे ही घर पर घरजमाई बनकर रहें। नारद जी को और क्या चाहिए था। रमते राम का कोई घर घाट तो था नहीं। चिन्ता थी कि पत्नी को लेकर कहां जाएंगे। अब वह भी सुलझ गई, बना बनाया घर मिल गया। शर्त स्वीकार हो गई। विवाह सम्पन्न हो गया। नारद जी सब कुछ भूलकर ससुराल में रहने लगे।

अब गृहस्थी नारद के तीन बच्चे भी हो गए। तभी एक दिन मूसला-धार वर्षा होने लगी। सब ओर जल थल एक हो गया। बाढ़ आ गई। नारद अपनी पत्नी और बच्चों को लेकर मकान की दूसरी मंजिल पर चले गए। पानी वहां पर भी आ पहुंचा तो नारद जी परिवार सहित मकान की छत पर चले गए। पानी छत पर भी पहुंचा। नारद जी ने सोचा अब तो मकान नहीं बचेगा तो पत्नी और बच्चों सहित पानी में कूद पड़े। पानी इतना तेज था कि नारद जी के पत्नी और बच्चे सब एक-एक करके डूब गए। नारद जी पानी से बचने के लिए हाथ-पांव मारते-मारते बड़ी कठिनाई से एक ऊँचे स्थान पर पहुंचे। थक गए थे, तैरने का तो प्रश्न नहीं उठता था। पानी छाती तक था। तभी पानी ऊपर बढ़ कंधों तक पहुंच गया। फिर गर्दन तक। लेकिन जैसे पानी होठों के पास पहुंचा तो नारद जी जोर से चिल्ला उठे कि "हे भगवान् , मुझे बचाओ!" तभी याद आया कि वे तो भगवान् कृष्ण के लिए पानी लेने आए थे। रोकर बोले— "क्षमा करो भगवन् क्षमा करो। और तब कहानी है कि आंख खुल गई। नारद जी ने देखा वहाँ कुछ नहीं है। वे जंगल में पड़े हैं और सामने श्रीकृष्ण खड़े मुस्कुरा रहे हैं। मुस्कुराते हुए उन्होंने पूछा—

नारद जी, आपके प्रश्न का उत्तर मिल गया या नहीं? प्रकृति

की वास्तविकता को समझकर इससे छुटकारा पा लेना ही ब्रह्मज्ञान है। इससे मुक्ति पाए बिना ब्रह्म के दर्शन नहीं होते। परन्तु यह प्रकृति माया इतनी लुभाने वाली है कि इसके जाल में फंसा व्यक्ति तभी समझता है जब पानी नाक तक आ जाता है। बहुत सुन्दर है यह माया, बहुत आकर्षक परन्तु इसका अन्त है घोर दुःख। बहुत ठगनी है यह प्रकृति माया। प्रत्येक बार ऐसा प्रतीत होता है इससे सुख मिलेगा परन्तु सुख कभी नहीं मिलता। सुख उसे मिलता है जो इस ठगनी को ठग ले।

माया तो ठगनी भई, ठगत फिरत संसार।
जिस ठग यह ठगनी ठगी, उस ठग को नमस्कार॥

ओ इस ठगनी माया के जाल में फंसे मानव मायावाद के पुजारी। सुन, सुन, सुन। यदि तू केवल मायावाद में पड़ा रहा तो ऐसा नाश होने वाला है कि जिसका तूने स्वप्न में भी विचार ना किया होगा। इस विनाश से बचना कठिन नहीं। बचना चाहते हो तो सोचो कि मानव जीवन का वास्तविक उद्देश्य क्या है? और इस संसार में करने क्या आए थे और कर क्या रहे हैं। सोचो!

प्यारे श्रोतागणो, समय के सामने तो सब को अपना सर झुकाना पड़ता है। आज भी समय हो रहा है। अगले मंगलवार को इसी विषय का अगला भाग आप सुन सकेंगे।

धन्यवाद!

७. आत्मा की खोज

गत मंगलवार को अस्वस्थता के कारण मैं आपकी सेवा में उपस्थित न हो सकी उसके लिए हृदय से क्षमाप्रार्थी हूं। किन्तु जैसी प्रभु की इच्छा प्यारे श्रोतागणो! महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज का नाम तो आप सब ने सुना ही होगा। स्वामी जी ने आज तक जो पुस्तकें व साहित्य लिखा उन सब में अमृत एवम् भक्ति रस भरा हुआ है। मनुष्य को ऊँचा उठाने, सच्चे सुख, सच्ची शान्ति और आध्यात्मिकता की ओर ले जाने वाली अद्भुत शक्ति थी उनमें। जीवन के अन्तिम वर्षों में मनुष्य को आध्यात्मिक उन्नति और शान्ति की ओर ले जाना ही उनके जीवन का लक्ष्य बन गया था।

एक बार महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज उपदेश के लिए भारत से लन्दन जा रहे थे। हवाई जहाज आसमान में उड़ा जाता था। स्वामी जी के पास जो यात्री बैठे थे, स्वाभाविक रूप से स्वामी जी से बात करने लगे, बातों ही बातों में यात्री ने स्वामी जी से पूछा कि स्वामी जी आप भी लन्दन जा रहे हैं। स्वामी जी ने उत्तर दिया— जी हां मैं लन्दन ही जा रहा हूं। यात्री ने पूछा क्या आप व्यापार के लिए England जा रहे हैं। स्वामी जी ने कहा— नहीं। यात्री ने फिर प्रश्न किया अच्छा तो आप सैर के लिए जा रहे होंगे? स्वामी जी ने कहा नहीं। तब यात्री बोला तब क्या आप वहां नौकरी करते हैं? स्वामी जी ने कहा नहीं। तब यात्री बड़ा आश्चर्य चकित हुआ और मन ही मन सोचने लगा बड़ी विचित्र बात है। और स्वामी जी को बोला जब आप कुछ ही नहीं करते तो फिर आप England जा क्यों रहे हैं?

स्वामी जी ने मुस्कुराते हुए कहा कि यूरोप वालों की एक चीज़ खो गई है उसके बिना उनका धन-धान्य, उनका विज्ञान, उनकी उन्नति, उनके उद्योग, उनका व्यापार, उनका राजपाट, उनका तकनीकी ज्ञान, उनके आविष्कार, उनकी मान प्रतिष्ठा सब व्यर्थ ही होती जाती है। उसी खोई हुई चीज़ का पता उन्हें बताने जा रहा हूं। अब तो उस यात्री

का दिमाग चकरा गया और भी आश्चर्य चकित होते हुए वह यात्री बोला वह कौन सी वस्तु है? स्वामी जी ने कहा देखिये, धन-धान्य, ज्ञान-विज्ञान, उद्योग-व्यापार सब ज़रूरी हैं। इनके बिना मनुष्य का काम नहीं चलता। किन्तु इन सब के ऊपर एक और भी वस्तु है जो मनुष्य के पास न हो तो सब कुछ होने पर भी उसका काम नहीं चलता। उस वस्तु के बिना मनुष्य की दशा उस घुड़सवार जैसी हो जाती है जो एक स्वस्थ, सुन्दर और हृष्ट-पुष्ट घोड़े पर बैठा हो, उस घोड़े पर सोने की जीन कसी हो। और उस जीन में लगाने को हीरे मोती, जवाहरात आदि पड़े हों और घुड़सवार ने भी बहुमूल्य वस्त्र और आभूषण पहन रखे हों, किन्तु उसे यह पता न हो कि उसे जाना कहां है? अपने लक्ष्य की ओर जाने की बजाय वह घुड़सवार भयानक जंगल, दुर्गम पहाड़ियों और जनशून्य घाटियों में भटकता फिर रहा हो और समझ न पाता हो कि उसे कहाँ जाना है और कैसे जाना है?

वह यात्री मि० स्वामी आप ठीक कहते हैं। आज यूरोप में धन-धान्य की अधिकता होने पर भी एक विचित्र प्रकार की अशान्ति है। ऐसा मालूम होता है कि यह संसार एक अथाह सागर है। हम संसार रूपी जहाज में सवार हैं किन्तु यह नहीं मालूम की जहाज को पहुंचना कहाँ है। किन्तु वह कौन सी ऐसी अमूल्य वस्तु है जो हम भूल गए हैं। तब स्वामी जी ने उस यात्री को एक कहानी सुनाई जो आज मैं आपको यहां सुनाने जा रही हूं।

एक गांव में एक चौधरी था उसके पास उन्नीस ऊंट थे। जब वह चौधरी मरने लगा तो गांव के मुखिया को बुलाकर अपने इन ऊंटों की वसीयत लिखवाई कि उन्नीस ऊंटों में से आधे ऊँट मेरे बेटे को दे दिये जाएँ। और बाकी ऊँटों का चौथा भाग मेरे नौकर को दे दिया जाए और पांचवां भाग मेरी नौकरानी को। इधर वसीयत लिखी गई उधर चौधरी ने अपनी आंखें सदा के लिए मूंद लीं। चौधरी के मरने के कुछ दिन बाद गांव के मुखिया व पंच इकट्ठे हुए कि अब इन ऊँटों का बंटवारा कर दिया जाये। किन्तु बंटवारा कैसे हो यह किसी

की समझ में नहीं आ रहा था। श्रोतागण आप भी एक कागज कलम ले लीजिये शायद मैं कुछ गलती करूँ तो आप उसे ठीक कर दें। ऊँट थे उन्नीस। उन्नीस ऊँटों का आधा भाग होता है साढ़े नौ। इसका अर्थ हुआ कि नौ ऊँट और एक ऊँट को दो भागों में बांट दिया जाए तब साढ़े नौ होंगे। किन्तु जब ऊँट को आधा काट दिया जाएगा तो वह बेचारा मर जाएगा ऊँट रहेगा कहाँ? अच्छा यदि एक ऊँट को इस प्रकार समाप्त कर भी दिया जाए तो बाकी बचते हैं अठारह ऊँट। अठारह ऊँट का चौथा भाग होता है साढ़े चार। इसका अर्थ है कि एक ऊँट को फिर काटना। चलो एक को और भी समाप्त कर दिया जाए तो फिर उन्नीस ऊँटों का पांचवां भाग क्या होगा। नौकरानी को पांचवें भाग में क्या मिलेगा। पंचों ने बहुत सोचा किन्तु किसी निर्णय पर नहीं पहुंच सके। तब उन्होंने निश्चय किया कि पास के गांव में एक विद्वान् रहता है उसे बुलाया जाए।

जब उस विद्वान् को सम्पत्ति के निर्णय के लिए आमन्त्रित किया तो वह विद्वान् बड़ी शान से अपने ऊँट पर सवार हो गांव के पंचों के दरबार में पहुँचा। और पूछा कि ऐसी क्या समस्या आ गई है आप सब के सामने? गांव के पंचों ने कहा कि हमारे गांव के चौधरी जी का देहान्त हो गया है। उन्होंने मरते समय वसीयत कि थी कि मेरे 19 ऊँटों में से आधे मेरे बेटे को दिये जाएँ। ऊँटों का चौथा भाग मेरे नौकर को, शेष पांचवां भाग मेरी नौकरानी को। हम सारे पंच दिमाग लड़ाकर थक गए हैं किन्तु किसी निर्णय पर नहीं पहुंच सके। इस निर्णय में हमें आपकी सहायता चाहिए। वह समझदार आदमी थोड़ी देर सोचता रहा फिर अपने ऊँट से नीचे उतर कर बोला यह तो बहुत आसान बात है।

चौधरी के ऊँटों में ये मेरा ऊँट भी मिला दो। अब मेरा ऊँट मिलाने से उन्नीस के बदले बीस ऊँट हो जायेंगे। अब वसीयत के अनुसार बांट दो। अब बंटवारा शुरू हुआ। बीस ऊँटों के आधे अर्थात् दस बेटे को दे दिये गए। क्यों श्रोतागणो ध्यान से सुनना आपके नीदरलैण्ड में

बीस का आधा दस ही होता है ना। अब बीस में से दस ऊँट बेटे को मिल गए। फिर बीस का चौथा भाग अर्थात् पाँच ऊँट नौकर को मिल गए। अब लगाइये अपने अपने कागज पर हिसाब कि कुल कितने ऊँट हुए। दस ऊँट बेटे को मिल गए और पांच नौकर को दस जमा पाँच पन्द्रह हो गए और चार ऊँट नौकरानी को वसीयत के अनुसार उसका हिस्सा मिल गया। अब जो एक ऊँट बाकी रह गया था वह तो उस बुद्धिमान् आदमी का था और वह विद्वान् बंटवारा करके अपने ऊँट पर बैठकर वापस अपने गांव चला गया।

अब श्रोतागणो ठीक यही हाल आजकल हमारा भी है। हमारे पास भी उन्नीस ऊँट हैं। पांच कर्मेन्द्रियां, पाँच ज्ञानेन्द्रियां पांच प्राण सब मिलाकर पन्द्रह हुए। तब मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार यह चार मिला देने से उन्नीस ऊँट होते है। ये उन्नीस ऊँट हमारे पास हैं। किन्तु जब तक इन उन्नीस इन्द्रियों के ऊँटों में आत्मा के बीसवें ऊँट को यदि हम न मिलायें तब तक समस्या सुलझती ही नहीं है। तब तक मनुष्य के जीवन में दुविधा, बेचैनी और अशान्ति बनी रहती है। किन्तु यदि हम इस कहानी का सच्चा अर्थ समझें तो प्रश्न यह उठता है कि यह बीसवां आत्मारूपी ऊँट मिलता कैसे है? क्या धन से, क्या विज्ञान से या भौतिक सुख सुविधा से? नहीं। यह आत्मा मिलता है सत्संग से, स्वाध्याय से, संयम से, सेवा से, साधना से तपस्या से।

अब हवाई जहाज में बैठे उस यात्री को स्वामी जी की कुछ बातें समझ में आने लगीं। और वह यात्री धीरे से स्वामी जी के कान में बोला— यह तो आप सत्य कहते हैं Mr. Swami यूरोप वालों का मन तो सचमुच बीमार है। इस मन की बीमारी का भयानक से भयानक रूप भी देखने को मिलता है क्यों? नौजवान युवक युवतियाँ कई ठगों का पहनावा पहने, मैले कुचैले कपड़े, अस्तव्यस्त बाल, चिन्ताकुल चेहरे जिन्हें आज की भाषा में हिप्पी कह कर पुकारा जाता है। क्या हो गया है इन्हें। इनके देश में धन धान्य की नदियां बहती हैं। और यही यूरोप खरबों रुपये प्रतिवर्ष सहायता के रूप में दूसरों को देता है। क्या नहीं

है इनके पास। धन, ज्ञान-विज्ञान, पक्की चौड़ी सड़कें, मीलों लम्बी सुरंगें, सौ-सौ मंजिला इमारतें, अजेय सैन्य शक्ति, एटम बम, हाइड्रोजन बम। राकेट में बैठे हुए अन्तरिक्ष यात्री, पन्द्रह-पन्द्रह हजार मील प्रति घण्टा की गति से पृथ्वी के चारों ओर आकाश में चक्कर लगाते हैं, चांद की भूमि पर उतर गए हैं। सितारों से मुलाकात कर ली है, इतना ही नहीं इससे भी आगे जाने का सपना आंखों में संजोए हुए हैं।

इनके एक संकेत मात्र से सर्वनाश जाग सकता है। एक ही संकेत से लाखों की गरीबी दूर हो सकती है। धरती की दूरियां इन्होंने इतनी कम कर दी हैं कि आज शायरों और कवियों ने अपनी शायरी में चांद सितारों के ख्वाबों के सपनों की दुनिया समाप्त कर दी है। आज कोई भी महबूब अपनी महबूबा से नहीं कहता है कि मैं तुम्हारे लिए आसमान के तारे तोड़ सकता हूं। आकाश के चांद को धरती पर ला सकता हूं। इतना कुछ होने पर भी क्यों हम फकीरों की सी तस्वीरें बनाये हुए दर-दर की ठोकरें खाते फिरते हैं? क्यों? इसीलिए कि असली वस्तु, जिसके लिए मानव मात्र के भीतर बैठा आत्मा बेचैन होता है वह हमारे पास नहीं है। वह है शान्ति। यह अकथनीय आनन्द जो आत्म-दर्शन से ही मिलता है। किन्तु जिनका मन बीमार है वह इस शान्ति रूपी अमृत को प्राप्त करना चाहते ही नहीं हैं। उसके लिए हमारे मन में चाह ही पैदा नहीं होती, तुलसीदास जी ने सम्भवतः इसीलिए लिखा है—

ईश्वर नाम अमोल है, दाम बिना बिकाये।
तुलसी अचरज देखिए, कोई गाहक न आए॥

किन्तु इसमें किसी का कोई दोष नहीं। जब तक जन्म-जन्म के पापों की मैल हमारे अन्तःकरण पर जमी रहेगी तब तक हम में स्वाध्याय के लिए रुचि पैदा ही नहीं होगी। वेद भगवान् ने भी विज्ञान की और भौतिक उन्नति की प्रेरणा मानव को दी है किन्तु साथ में यह भी कहा है कि जिस प्रकार एक पंछी अपने एक पंख से ऊपर नहीं उड़ सकता,

उसी प्रकार मनुष्य को भी ऊपर उठने के लिए भौतिक और आध्यात्मिक दोनों पांव लगाकर ही ऊपर उठना होगा।

महाकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अपनी कविता में लिखा है कि नदी का यह किनारा कहता है कि सब सुख दूसरे किनारे पर है और दूसरा किनारा लम्बी सांस लेकर यह कहता है कि सब सुख तो उस पार है, मेरे पास तो सिर्फ दुःख ही दुःख है। अतः मानव भी आगे बढ़ना चाहे तो आवश्यक है कि भौतिकवाद और आध्यात्मिकवाद दोनों को साथ लेकर चले। विज्ञान से भी काम ले और आत्मज्ञान से भी। विज्ञान से आज पूछिये कि यह दुनिया कैसी है तो वह बहुत ही विस्तार से सुन्दर शब्दों में इसका उत्तर दे सकता है। किन्तु यदि यह पूछिये कि यह दुनिया क्यों बनी तो वह मौन रह जाएगा क्योंकि इसका उत्तर उसके पास है ही नहीं।

पं० भगवद्दत्त जी ने एक बहुत सुन्दर पुस्तक लिखी है— "Story of Creation" अर्थात् सृष्टि की कहानी। उसमें उन्होंने इन दोनों ही प्रश्नों का उत्तर दिया है। वेदों के आधार पर दिया है क्योंकि वेद ही एक ऐसा ग्रन्थ है जो इन प्रश्नों का उत्तर साथ-साथ दे सकता है। पश्चिम के विद्वान् जैकॉलियेट भी यही लिखते हैं कि यह आश्चर्य की बात है कि दुनिया भर के आध्यात्मिक ग्रन्थों में भारत का वेद ही एक ग्रन्थ है जिसके आधार पर आज का विज्ञान आधारित है। वेदों में सृष्टि का विकास, उसका धीरे-धीरे अस्तित्व में आने का वर्णन इतने विस्तृत रूप में विद्यमान है कि आज का वैज्ञानिक उसे देखकर चकित है। विज्ञान की वर्तमान उन्नति के युग में सैकड़ों वर्षों की खोज के बाद जो बातें वैज्ञानिकों ने परीक्षण के आधार पर मालूम की हैं, वे सब की सब वेदों में विद्यमान हैं।

वेद यह नहीं कहता कि दुनिया एकदम स्वयमेव बन गई। वेद कहता है कि ईश्वर की शक्ति से पहले "ऋत" पैदा हुआ। यह नियम पैदा हुआ जो कभी बदलता नहीं। तब सत्य की उत्पत्ति हुई। तब प्रलय की बात पैदा हुई अर्थात् यह सृष्टि समाप्त हो गई। और फिर परमाणुओं का समुद्र जाग उठा। कहने का मतलब है कि यह

सृष्टि एक बार ही नहीं बनी। बनती है सत्य पैदा होता है। समाप्त

होता है प्रलय की रात आती है सब कुछ समाप्त हो जाता है। फिर परमाणुओं का समुद्र जाग उठता है। यह बात ऋग्वेद १० ।१९० में लिखी है। यही बात आगे कही गई है—

'सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।' अर्थात् सूर्य और चन्द्रमा वैसे ही बनाए गए जैसे पहले बनाए जाते रहे थे। यह कोई नया खेल नहीं है। श्रोतागण आज का प्रवचन यहीं समाप्त करती हूं। अगले मंगलवार को यह बताऊंगी कि यह सूर्य-मण्डल क्या है?

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

८. सत्यनारायण व्रत-कथा का महत्त्व

आप से जैसे कि गत मंगलवार को मैंने कहा था कि आज के प्रवचन का विषय है व्रत किसे कहते हैं और सत्यनारायण कौन है और क्या है? हम इसका व्रत क्यों लेते हैं?

व्रत का सीधा स्पष्ट अर्थ है कि किसी भी नियम को धारण करके उस पर कटिबद्ध हो जाने का नाम व्रत लेना है। किसी एक विशेष बात के लिए उपवास करना भी व्रत कहलाता है, परन्तु व्रत का यह अर्थ व्रत जैसे महान् शब्द को बहुत छोटा कर देना है। जब बालक गुरु के समीप जाकर गुरु से दीक्षा लेता है तो वह ब्रह्मचारी तथा विद्यार्थी बनने का व्रत लेता है और इस व्रत का दिलोजान से पालन करता है। जब ब्रह्मचारी गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने के लिए आता है तो गृहस्थ बनने का व्रत लेता है और इसी प्रकार जब एक साधक अपने गुरु के आदेश से कोई योग-अनुष्ठान, मन्त्र जप इत्यादि करता है तो वह गुरु व्रती कहलाता है। जब राज्याधिकारी प्रधानमन्त्री, राष्ट्रपति, जज इत्यादि बनते हैं तब वे कर्त्तव्य निभाने का व्रत लेते हैं। वैसे ही जब सत्यनारायण के समीप रहने, पग-पग पर उसी की छाया में बैठने, उसी प्रभु का दर्शन पाने के लिए यत्नशील रहने और उसी के लिए जीने मरने का व्रत लेते हैं उसे ही सत्यनारायण व्रत की संज्ञा दी जाती है।

व्रत धारण करने के कुछ विशेष नियम होते हैं। सत्य साधक साधिकार यह व्रत ले कि मैं आज से तपस्या का जीवन व्यतीत करूंगा या करूँगी। स्व-इन्द्रियों की तृप्ति के लिए कोई कुकर्म नहीं करूंगा। सदा शुद्ध-पवित्र रहने का स्वभाव बना लूंगा। मेरा आहार, विचार, आचार, व्यवहार सदा शुद्ध-पवित्र और सात्त्विक रहेंगे। अब मेरी वाणी मीठा और शुद्ध ही बोलेगी, मेरा मन सत्य से भरपूर रहेगा। मैं यथाशक्ति मन, वचन, कर्म से सब का कल्याण करने का प्रयत्न करूंगा। चलते फिरते, सोते-जागते, केवल भगवान् सत्यनारायण के पवित्र नाम "ओ३म्" ही का

जाप करता रहूंगा। जीवन-निर्वाह के लिए सावधानी से धन उपार्जन करूंगा। और घर में ही रहकर अपनी इन्द्रियों रूपी मानस तीर्थों में स्नान कर व्रत को निभाने और पालन करने की तपस्या कीजिए अर्थात् शारीरिक तथा मानसिक साधन कीजिए। जो व्रत आपने ले लिया है उस पर कटिबद्ध हो जाइए। फिर चाहे गर्मी हो चाहे सर्दी, दुःख हो या सुख, कांटों पर चलना हो या मखमल के बिछौने पर सोना हो। अपने व्रत को पूरा कीजिए।

अब प्रश्न यह उठता है कि वह सत्यनारायण कौन है, क्या है? जिसका हम व्रत लेते हैं। सत् शब्द "अस् भुवि" इस धातु से सिद्ध होता है— **"यदस्ति त्रिषु कालेषु न बाध्यते तत्सद् ब्रह्म।"** जो सदा वर्तमान अर्थात् भूत, भविष्य और वर्तमान कालों में जिसका बाध न हो उस परमेश्वर को 'सत्' कहते हैं। इस संसार में सत् तो केवल तीन पदार्थ हैं— ईश्वर, जीव और प्रकृति। फिर भी केवल ईश्वर को ही सत् क्यों कहा है? वह इसीलिए कि केवल प्रभु परमात्मा ही ऐसा सत् पदार्थ है जो कभी किसी बन्धन में नहीं बंधता। प्रकृति तो प्रभु की आज्ञा से विकृत होकर नाना रूपों में बंध जाती है और जीव इन रूपों में कर्मानुसार बंध भी जाता है और छूट भी जाता है। केवल परमात्मा ही एक ऐसा सत् है जो सदा एक रस रहता है, कभी किसी अवस्था के बन्धन में आता ही नहीं। वह काल से ऊपर, उठकर सब के अन्दर बाहर रहता है। प्रलय हो या सृष्टि, रात हो या दिन, गर्मी हो या शीत, न वह कभी मरता है न जन्मता है। विश्व कल्याण के लिए विष्णु बन कर सब पर दृष्टि रखता है। उसी सत् ब्रह्म को वेद ने भी कहा है—

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति अग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः। अर्थात् एक ही सत् स्वरूप को वेदों के ऋषि अनेक प्रकार के नामों से पुकारते हैं। जैसे यम, अग्नि, मातरिश्वा, इन्द्र, मित्र, वरुण, दिव्य, सुपर्ण, गरुत्मान् इत्यादि। सत् के बाद नारायण शब्द का अर्थ मनुस्मृति में इस प्रकार दिया गया है—

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।

ता तदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः॥

अर्थात् नारायण शब्द में जो प्रथम दो शब्द हैं— "नारा" वह जल और जीवों का नाम है और "अयन" का अर्थ है निवास स्थान। अर्थात् जो सब जल जीवों में व्यापक परमात्मा है उसे नारायण कहते हैं।

यह सारा संसार प्राणमय है। और यह नारायण सर्वत्र प्राणधारियों में जलों में विराजमान है। अज्ञानी कहता है वह कहीं नहीं है और ज्ञानी कहता है कि वह कहां नहीं है? उर्दू के कवियों ने नारायण का वर्णन इस प्रकार किया है—

दीदारे-शश जहां[1] है कोई दीदावर[2] तो हो।
जलवा[3] कहां नहीं कोई अहले नज़र[4] तो हो॥

तो उसी सत्यनारायण में पूर्ण विश्वास अटूट श्रद्धा और अनन्य भक्ति करने का व्रत लेने का आदेश ही सत्यनारायणं का व्रत कहा जाता है।

प्रयोजन यह है कि परमात्मा की सारी आज्ञाओं का पालन करते हुए, प्रभु की पवित्र वाणी वेद का नित्य स्वाध्याय एवम् तदनुकूल आचरण करते हुए सन्तुष्ट रहना चाहिए कि परमात्मा ही हमारी माता है और वह ही हमारे कल्याण हेतु सृष्टि रचती है। वह मां अपने बच्चे, बच्चियों पर कभी "भीषणं भीषणानाम्" भीषण से भीषण रूप में कृपा करती है। पूर्ण विश्वासी का यह कर्त्तव्य है कि वह भयंकर से भयंकर परिस्थिति में भी अपने विश्वास को डांवाडोल न होने दे, निर्बल न होने दे, संशय में न पड़ने दे क्योंकि संशय आया तो समझो मन में नाश लाया। काम करते समय तो मानव भविष्य का ध्यान ही नहीं करता, आंखें मूंद लेता है और तात्कालिक लाभ, क्षणिक इन्द्रिय सुख को प्राप्त करने

---

१. जहां— अखिल विश्व के दर्शन।
२. दीदावर— कोई देखने वाला आशिक या सत्य।
३. जलवा-प्रकाश।
४. अहले नज़र-दृष्टि रखने वाला।

के लिए कुकर्म कर बैठता है। और अपने को धोखा देने के लिए कह देता है कि—

अगली दुनिया अब तो आराम से गुज़रती है।
प्रलय आकबत की खबर ख़ुदा जाने॥

परन्तु जब परिणाम सामने आता है तो प्रभु को बुरा भला कहने लगता है। परन्तु पूर्ण विश्वासी ऐसा नहीं करता, वह पूरी प्रसन्नता से भोगता है और कहता है कि वह परमात्मा हमारी मां परम वैद्य भी है उससे बड़ा चिकित्सक यानी कि डाक्टर कोई नहीं। अपने आपको उसी को अर्पण कर दो। सच्चे पवित्र विश्वास की नाव पर सवार मीरा ने भी यही कहा था कि—

औषध खाऊँ ना बूटी खाऊँ ना कोई वैद्य बुलाऊँ।
पूर्ण वैद्य मिले अविनाशी ताही को नब्ज़ दिखाऊँ॥

भगवान् पर पूर्ण विश्वास का अर्थ यही है कि जो जीवन में परिणाम सामने आए उसका प्रसन्नता से स्वागत किया जाए क्योंकि कोई नहीं जानता कि किस बुराई में कौन-सी अच्छाई छिपी हुई है।

एक राजा अपने मन्त्री के साथ शिकार पर गया। चलते-चलते राजा का वस्त्र कांटों में उलझ गया। राजा ने वस्त्र छुड़ाने के लिए हाथ बढ़ाया तो हाथों पर कांटों से घाव आ गया, रक्त बहने लगा। मन्त्री ने राजा को सान्त्वना दी कि कोई बात नहीं जो प्रभु करते हैं अच्छा ही करते हैं। यह बात सुनकर राजा को क्रोध आ गया और बोले— एक तो मेरी अंगुली कट गई इतना रक्त बह रहा है और यह कैसा अनोखा मूर्ख मन्त्री है। जो कह रहा है, जो प्रभु करते हैं अच्छा करते हैं। मैं तो ऐसे मन्त्री के बिना ही अच्छा और उन्होंने मन्त्री को डांटकर वापस भेज दिया। अब अकेले चलते-चलते राजा दूसरे राजा के राज्य में पहुंचा। वहां उस दिन देवों पर मनुष्यों की बलि चढ़ाई जाने वाली थी। सिपाही किसी अच्छे पुरुष की तलाश में थे। खोजते-खोजते सिपाही की दृष्टि राजा के सुन्दर शरीर पर पड़ी। उन्होंने सोचा इसकी बलि से देवी बहुत प्रसन्न होगी, राजा को सिपाही देवी के मन्दिर में ले

गए। बलि चढ़ाने से पूर्व जब राजा को सजाया जा रहा था तो पुजारी की नज़र राजा की कटी हुई अंगुली पर गई और वह पुकार उठा इसकी बलि नहीं चढ़ाई जा सकती यह तो अपंग है। राजा को छोड़ दिया।

अपनी नगरी में आते-आते राजा सोच रहा था कि मन्त्री तो ठीक ही कहता था कि प्रभु जो करते हैं अच्छा ही करते हैं। नगरी में पहुंचकर जब वह अपने मन्त्री से मिला तो कहा मन्त्रीवर आपने तो मेरी अंगुली कटने पर पते की बात कही थी, मैं अल्पबुद्धि ही नहीं समझ पाया। इसी घाव के कारण मौत के मुंह से निकल आया हूं। किन्तु यह तो बताओ मेरा तो इससे भला हुआ परन्तु आप जैसे का मैंने अपमान करके आपको निकाल दिया। प्रभु ने इसमें कौन सी भलाई देखी। मन्त्री ने मन्द-मन्द मुस्कुराते हुए कहा यह तो और भी अच्छा हुआ। यदि आप मुझे दुत्कार कर वापस न भेजते और मैं आपके साथ ही रहता तो सिपाही मुझे ही पकड़ कर ले जाते। आप तो अंग-भंग के कारण छूट गए। तब वे मेरी बलि चढ़ा देते। मेरे ऊपर तो प्रभु की विशेष कृपा थी मुझे ज़ख्मी भी नहीं किया और मृत्यु के मुख से भी बचा लिया। इसीलिए राजन् हमारी दृष्टि छोटी है प्रभु की आंखें तो बहुत दूर तक देखती हैं। प्रभु कि महाशक्ति का पता कैसे लग सकता है— यह माना कि हुस्न का जलवा ज़मीं से आसमां तक है, मगर देखना है मैंने कि मेरी नज़र कहां तक है।

ओ३म् भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥

यजु० 25।21

हे पूजनीय देवो हम दोनों कानों से शुभ मंगलमय सुनें। दोनों आंखों से शुभ वस्तु देखें। दृढ़, पुष्ट अंगों से, स्तुति करते हुए, स्तुतिकर्ता अपने शरीरों से देवों द्वारा निर्धारित जो आयु है उसे प्राप्त करें।

प्रत्येक मनुष्य की यह कामना रहती है कि उसका जीवन पूर्ण सुखी हो, वह पूर्णतया नीरोग हो और शतायु हो। परन्तु इस इच्छा की पूर्ति के लिए कुछ नियमों का पालन करना अनिवार्य है। यह नियम

सरल और कठोर दोनों हैं। यदि आपके विचार सुलझे हुए हैं, मन वश में है, इन्द्रियों पर अधिकार है और सात्त्विक भाव जागृत हैं तो आपको ये नियम सरल लगेंगे। यदि आपकी चित्तवृत्तियां विशृंखल हैं तो यह नियम कठोर लगेंगे। परन्तु इस कठोर अनुशासन का पालन किए बिना सच्चे सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती। इस मन्त्र में इन्हीं नियमों का उल्लेख है। 1. कानों से अच्छी बातें सुनें। जब अच्छी बातें सुनेंगे तो मन प्रसन्न रहेगा। यदि मन प्रसन्न रहेगा तो राग-द्वेष का हृदय में स्थान नहीं होगा और जीवन में पवित्रता रहेगी। 2. आंखों से अच्छी वस्तुएँ देखें। जब हमारी दृष्टि में कुवासना, दूषित मनोवृत्ति नहीं होगी तो हमें सब मित्र सहयोगी और प्रिय दिखाई देंगे। इससे घृणा और कटुता को अवसर नहीं मिलेगा। इन दोनों नियमों के पालन से संयम की पुष्टि होगी। शरीर स्वस्थ रहेगा और मन प्रसन्न रहेगा। जब शरीर स्वस्थ रहेगा और मन भी प्रसन्न रहेगा तो दीर्घायु तो स्वयम् ही प्राप्त होगी।

वह कौन पाषाण हृदय मानव है, जो दुःखी मानव को देखकर दुःखी न हो उठे? और आज संसार में दुःखी कौन नहीं ? किसी को निर्धनता का दुःख है तो किसी को अति धन का दुःख, कोई भूख से दुःखी है तो कोई अधिक भोजन से, कोई बहुसन्तान से दुःखी है तो कोई निःसन्तान होने से, कोई बेकारी से दुःखी है तो कोई कार्य की अधिकता से, कहीं अधिक वर्षा है तो कहीं जल की एक बूंद भी नहीं। इस प्रकार अनेक द्वन्द्वों ने मानव को दुःखी कर रखा है। इन सब प्रकारों के दुःखों के नाश का एक ही महासाधन है कि मानव धीरे-धीरे प्रकृति, माया तथा भोग्य पदार्थों से हटकर आत्मा की ओर बढ़ता चला जाए। माया का भोग करे किन्तु उसमें लिप्त न हो जाए। माया की नैय्या पर बैठकर भव-सागर के पार उतर जाए, माया की नैय्या पर ही न बैठा रहे।

इस माया रूपी पर्दे के पीछे उस अनन्त असीम सौन्दर्य की झांकी को देखे, जिसके हल्के से इशारे से जड़ भी सुन्दर बन जाता है। हमारे पूर्वजों ने त्याग और दान को अपनी संस्कृति में सर्वोच्च स्थान इसलिए

दिया है ताकि गृहस्थ लोग माया को परे हटाने और अपनी कमाई का

त्याग करने का अभ्यास करते-करते माया से सर्वथा अलग हो जाएँ। और जैसे-जैसे मानव माया से अलग हुआ तो आत्मा का सहारा तो स्वयमेव ही उसे मिल जाएगा।

यह जो 'वैतरणी नदी' का नाम सुना जाता है। यह क्या है? कौन सी नदी है? वास्तव में वैतरणी शब्द में ही त्याग और दान का अर्थ छिपा है। 'वितरण' शब्द का अर्थ है दान, बांटना। और तब यह नदी कौन सी हुई? यह दान की त्याग की नदी है। इसे पार करने में ही मानव का कल्याण छिपा है। यजुर्वेद में पूछा गया है कि "कस्य मात्रा न विद्यते।"? कौन सा पदार्थ है। जिसके समान श्रेष्ठ कोई नहीं। तब अगले मन्त्र में उत्तर दिया गया है कि "गोस्तु मात्रा न विद्यते।" गाय के समान कोई भी श्रेष्ठ पदार्थ नहीं है। गाय वैदिक संस्कृति की, भारतीय संस्कृति और मानव संस्कृति की, सब से प्यारी, सब से कीमती, सब से उत्तम वस्तु है। इसी श्रेष्ठ गौ धन को दान में देकर वैतरणी नदी के पार होने की बात कही जाती है।

अब प्रश्न यह उठता है कि हम कितने उपदेश, कितने पाठ, कितने धार्मिक प्रवचन, कितनी सत्यनारायण की कथा सुनते हैं, तब भी दुःख हमारा पीछा नहीं छोड़ते। आखिर क्यों?

कारण केवल यह है कि हम कथाएँ तो सुनते हैं किन्तु व्रत नहीं लेते, दृढ़ संकल्प नहीं करते। कथा सुनते हैं तो उस पर विचार नहीं करते हैं। यदि मनन कर भी लेते हैं तो निदिध्यासन तक पहुंचते ही नहीं। आज मैं आपको सत्यनारायण व्रत कथा क्या है? यह बताने का प्रयत्न करूंगी। यह कथा जो मैं आपको सुनाने जा रही हूं। इस कथा का वर्णन स्कन्दपुराण के रेवा खण्ड के अन्तिम पांच अध्यायों में है।

इस सन्दर्भ में "नैमिषारण्य तीर्थ" कौन सा है जहां योगी नारद पहुंचे? सत्यनारायण किसे कहते हैं? व्रत क्या है? कैसे लिया जाता है और यह कथा कौन सी है? इन सब बातों को मैं अपनी अल्प बुद्धि द्वारा आपको शब्दों में सुनाने का प्रयत्न कर रही हूं।

मेरा अटल विश्वास है कि नारद जैसा योगी जब ध्यानावस्थित हुआ और यह संकल्प लेकर ध्यान अवस्था में गया कि प्रभु से दुनिया के दुःखों के नाश का साधन जानूंगा तो उस योगारूढ़ अवस्था में नारद जी को भगवान् की ओर से आदेश मिला कि निस्सन्देह संसारी लोगों के दुःखों का अन्त हो सकता है। प्रभु ने उसके लिए आदेश दिया है कि हमें व्रती और महाव्रतः महान् व्रती बनना होगा। कोई भी धार्मिक कथा, उपदेश, प्रवचन महान् व्रती बनकर सुनो। कोई विद्वान् कोई अनुभवी कोई ब्रह्मनिष्ठ कोई वेदों का ज्ञाता सुनाए तो अवश्य सुनो क्योंकि उसकी कथा वेद तो सुनाते ही हैं। बह रही नदियों के नाद में, झर रहे झरने की झंकारों में, वायु के मधुर झकोलों में, आकाश के मुस्कुराते चांद तारों में, रेगिस्तान के तपते रेत कणों में हर स्थान में उसी प्रभु की आवाज सुनो। किन्तु यह आवाज यह गाथा यह महिमा सुनने के लिए सब से पहले रस पीयो। श्रद्धा का सोम पीयो। ओ आज के दुःखी मानव एक बार प्रभु के प्यार का व्रत लेकर उसको सुन और सुखी हो जा। आज मानव शान्ति का स्रोत बहाने के लिए प्रयत्नशील है। चारों ओर विश्व में **त्राहि माम्-त्राहि माम्** की पुकार सुनी जा रही है किन्तु क्या कभी शान्ति स्थापित हो सकेगी? कदापि नहीं। जब तक मानव का हृदय नहीं बदलता, माया के स्थान पर आत्मा का महत्त्व नहीं अनुभव करता दूसरों के दुःख को समझने का प्रयत्न नहीं करता तब तक न शान्ति, न सुख, न चैन कुछ भी मानव को प्राप्त होने वाला नहीं है। क्योंकि प्रभु-प्रेमी तो अपनी चिन्ता करते ही नहीं।

अपनी फिक्र न कुछ करें प्रभु-प्रेम के दास।
सुई नंगी खुद रहे और सब का सिये लिबास॥

९. धर्म का मर्म

प्यारे श्रोतागणो मानव मात्र के लिए सुख शान्ति पूर्वक 'जीने की कला' का नाम है 'धर्म'। धर्म एक सर्वव्यापक संविधान है। धर्म वह है जिसको धारण करके एवम् स्व आचरण में लाकर के मनुष्य व्यावहारिक जीवन में स्व-कर्त्तव्य का पालन करते हुए स्वयं भी सुखी बन सकता है और सम्पूर्ण समाज को भी सुख शान्तिमय बनने की प्रेरणा दे सकता है। और सदैव धर्मानुसार आचरण करने वाला मानव अन्त में कल्याण के मार्ग को भी प्राप्त कर लेता है।

भगवान् वेदव्यास ने धर्म का सार सर्वस्व बताया है—

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥

अर्थात् धर्म का सार सर्वस्व सुनो और सुनने के बाद धर्म को अपने जीवन में धारण करो। जो व्यवहार तुम दूसरों से अपने लिए नहीं चाहते वैसा व्यवहार तुम दूसरों के लिए भी मत करो। प्रतिदिन प्रायः हम देखते हैं कि जो मन में आया वही कर लिया, जो मन में आया वही खा लिया और जो मन में और मुंह में आया वही बोल दिया। यदि यही सब हम भविष्य में भी करते रहें तो हम मनुष्यों में बुद्धिमान् होने की पहचान ही क्या रही? उच्छृंखलता, भोग, संग्रह, वासनाएँ आदि व्यक्ति तथा समाज को जर्जर व बर्बर बना देती हैं। हमारे शरीर में रोग, समाज में संघर्ष, वैमनस्य, पराधीनता व युद्ध आदि की सृष्टि इन्हीं कारणों से होती है। इसीलिए कब, कहां, किसको, किससे, किसलिए, कितना अर्थ-काम का संग्रह व उपभोग करना चाहिए इसका एकमात्र उपाय धर्म ही है। शासन, पंचायत, कानून, पुलिस आदि थोड़े समय के लिए बाहर-बाहर ही शासन कर सकते हैं।

शासन और कानून की सुव्यवस्था के लिए भी धर्म की आवश्यकता पड़ती है। कोई भी व्यक्ति, जाति, सम्प्रदाय, प्रान्त, देश का संविधान

धर्म के बिना प्रगति व उन्नति कर ही नहीं सकता। धर्म अर्थ, काम की वासना पर अंकुश लगाकर उन्हें मर्यादित व नियन्त्रित करके मनुष्य की वैयक्तिक, सामाजिक, राष्ट्रीय एवम् सर्वप्रकार के अनर्थों से रक्षा करता है। इसीलिए धर्म से अभ्युदय एवं निःश्रेयस की प्राप्ति होती है। इसीलिए जीवन में अर्थ और काम के साथ 'धर्म' की नितान्त आवश्यकता है। किन्तु इसके विपरीत यदि अर्थ या कार्य के वश में धर्म होगा तो निश्चय ही अनर्थ होगा। जैसा कि आजकल पूरे संसार में हो रहा है। बड़ी तीव्रता के साथ सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक मूल्य-ह्रास में परिवर्तन हो रहा है। परिवार में, राष्ट्र में, विश्व में— कलह, अशान्ति इन मूल्य-ह्रास के दुष्परिणाम हैं। आज संसार में मानवीय सद्गुणों का अभाव होता जा रहा है। ऐसे भयंकर समय में धर्म को ही अपने जीवन का लक्ष्य बनाकर दुःखों की निवृत्ति कर कल्याण के मार्ग की ओर बढ़ना चाहिए।

धर्म का दर्शन-बिन्दु सत्य, शिव और सुन्दर है। और सत्य, शिव और सुन्दर ये तीनों बातें क्या हैं? प्रभु के प्रति प्रेम। प्रभु के प्रति प्रेम सत्य है। "एको अहम् बहु स्याम्" एक से अनेक होने की इच्छा में प्रेम सृष्टि में सर्वत्र व्याप्त है। और सृष्टि की ज्योति ही प्रेम की ज्योति है। जीवन और मृत्यु के इस पार और उस पार प्रेम से अलग कुछ भी नहीं है। रूपासक्ति हो या सर्वस्व समर्पण, जगत् के प्रति चिर तृष्णा हो या चित्तरंजन के प्रति आत्म-निवेदन शृंगार, कारुण्य, निष्ठा यह सभी प्रेम की विविध अर्चनाएँ हैं। प्रेम प्रभु के सत्य का सार है, परम आराध्य भगवत् तत्त्व है। प्रेम सृष्टि का आभ्यन्तर अदृश्य सत्य है और सृष्टि ईश्वरीय प्रेम की बाध्य व दृश्यमान अभिव्यक्ति है। प्रेम की सृष्टि में प्रभु के प्रति प्रेम, प्रेमी व प्रेमिका एक ही हैं। तब प्रेम ही साध्य है प्रेम ही साधन व प्रेम ही साधक।

प्रभु के प्रति प्रेम ही शिव है। कल्याण के अधिष्ठाता प्रेम की पावन दीप-शिखा प्रज्वलित होते ही अकल्याण का अंधेरा मिट जाता है, जो मानव को देवत्व की ओर ले जाता है। प्रेम वह प्रज्वलित अग्नि

है जो प्रेमाराध्य की कल्याण इच्छा के सिवाय हृदय की समस्त वासनाओं को जलाकर राख कर देती है। प्रेम पथ हृदय ही तो प्रतिमाओं का मन्दिर है। काशी की तीर्थयात्रा है एवम् अर्चना का मूर्तिमान् देवालय है। प्रेम दृष्टि में ही आत्म-भाव का सृजन है। जो अन्ततः आदि आनन्द का स्रोत बन शिव रूप हो जाता है। प्रेम ही सौन्दर्य है। यह संसार परमेश्वर की प्रेमाभिव्यक्ति है। सम्पूर्ण सृष्टि को मुग्ध करने वाला वह एक ही तो सौन्दर्य है जो पूर्णता को प्रकाशित करने के लिए हजारों दर्पणों में प्रतिभासित है। सौन्दर्य वह है जो प्रेम को जन्म देता है और पूर्ण सौन्दर्य परमेश्वर में है और वह परमेश्वर ही प्रेम का अधिष्ठान है।

अतः सत्यम् शिवम् सुन्दरम् ही प्रभु के प्रेम की सुन्दरतम त्रिमूर्ति है।

26 जनवरी

"भारत का गणतन्त्र दिवस"

१०. होली की सीख

प्यारे श्रोतागणो

आज 4 मार्च को होलिका दहन दुःशासनी पूर्णिमा एवम् होली पूर्णिमा है। आप सब को मेरी तरफ से होली की हार्दिक बधाई हो। हर साल तो मैं आपको होली और फगवा के विषय में बता चुकी हूं कि हम होली क्यों मनाते हैं? होलक किसे कहते हैं? होली के त्यौहार पर वसन्त ऋतु का आगमन होता है जिसे आप नीदरलैण्ड में Lente कहते हैं। आप सब जानते हैं कि वसन्त के मौसम में बागों में रंग-बिरंगे फूल खिलते हैं। गुलाब अपने पूरे यौवन के साथ मुस्कुराता है। खेतों में हरे रंगों के साथ धरती की चुनरी पर हरियाली ही हरियाली छा जाती है। समुद्र का पानी भी साफ नीले आसमान की नीली परछांहों से नीला-नीला लगने लगता है। गेंदे का फूल भी हल्दी का पीला रंग लेकर अभिमान से अपना सिर उठाकर मुस्कुराता है। लाल रंग तो सब लाल, फूलों, फलों के अन्दर प्रवेश कर नये खून बनाने की योजनाएँ बनाता रहता है। जामुनी, बैंगनी रंग भी कई प्रकार के फूलों और सब्जियों के रूप में सजधज कर आ जाता है। हरा और नारंगी रंग तो सारे संसार में ही हरी और नारंगी चुनरी इस धरती मां को उढ़ाकर एक बार फिर से यह साबित कर देता है कि हे धरती मां तुम सदा सुहागन रहो और इन्द्रधनुष की सतरंगी ओढ़नी की छाया में सदा सुहाग का आशीर्वाद बरसाती रहो। यही तो हैं वे सारे रंग जिससे आज आप होली खेलेंगे। जैसे कि मैंने अभी-अभी आपको बताया कि होली रंगों का त्यौहार है। वैसे ही जब हम अपने-अपने घरों में हवन करते हैं। तो हवन की अग्नि से भी यह रंग हमारी रक्षा करते हैं। यजुर्वेद १७।५८ में मन्त्र आता है—

सूर्यरश्मिर्हरिकेशः पुरस्तात्सविता ज्योतिरुदयाँ अजस्रम्।
तस्य पूषा प्रसवे याति विद्वान्त्सम्पश्यन् विश्वा भुवनानि गोपाः॥

इस मन्त्र का अर्थ है कि जो यह सूर्य लोक है उसके प्रकाश में सफेद और हरी रंग-बिरंगी अनेक किरणें हैं जो सब लोगों की रक्षा करती हैं। हवन की आग से उठने वाली अग्नि का हमारे हृदयों पर भी बहुत प्रभाव पड़ता है। लाल रंग हमें स्फूर्ति देता है। पीला रंग हमें घबराहट से बचाता है। धुएँ का काला रंग हमारी सांसों को शुद्ध करता है। यहां का अग्नि का लाल रंग हमारे क्रोध को जलाकर राख कर देता है। हरा रंग हमारे लोभ को मिटाता है। पीला रंग हमारे मोह को समाप्त करता है और नीला रंग अहंकार को दूर भगाता है। किन्तु इस धार्मिक कथा के साथ-साथ छोटे-छोटे बच्चों को भी पता होना चाहिए कि हमारे यहां कितने और कैसे प्यारे-प्यारे रंग हैं फूलों की क्यारी फुलवारी में —

हरा- घास हरी है, पेड़ हरे हैं, खेत भी देखो हरे भरे हैं।
हरी सब्जियां, हरे साग हैं, हरी क्यारी, हरे बाग हैं॥
टिड्डे का भी रंग हरा है, तोते का भी रंग हरा है।
हरा रंग आंखों को भाए, हरि दर्शन की याद कराए॥

नीला- आसमान की छतरी नीली, सागर का जल नीला-नीला।
नीलकंठ शिव की गर्दन नीली, मोर पंख भी नीला-नीला॥

पीला- पीला जितना चमकदार है चमके और चमकाए।
जगमग-जगमग जुगनू नाचे, अन्धकार को दूर भगाए॥
सूरज पीला-चांद भी पीला, पीले गगन के तारे।
तितली पीली, फूल भी पीले लगते कितने प्यारे॥

गुलाबी- बाग का राजा फूल गुलाब, पहने रंग गुलाबी ताज।
सुबह की चुनरी रंग गुलाब, शाम को चांद रंग गुलाब॥
वाह गुलाबी गुलाल रंग होली में ये भरे उमंग॥

लाल- लाल टमाटर, चेरी, सेब, अभी ख़रीदो खोलो ज़ेब।
गुस्से में सब होते लाल, और शरम के मारे गाल लाल॥
लाल रंग है ताकतवर, देख के रुकती हर मोटर।
लाल है सब से बढ़िया रंग, लाल बिना होली बेरंग॥

जामुनी- चिड़ियों के है पंख जामुनी, और शंख का रंग जामुनी।
कितने सारे फूल गिन लो चमन में जामुनी जामुनी॥
जामुन भी तो जामुनी है और भाटा भी है जामुनी।
फिर फालसे की तो बात ही क्या है वह भी है जामुनी॥
होली भी न मन सकती है, जो न हो रंग जामुनी-जामुनी॥

लाल, गुलाबी, हरा, बैंगनी, नीला, पीला और नांरगी। बच्चो ये सारे रंग कितने प्यारे-प्यारे लगते हैं लेकिन ये रंगों की दुनिया बहुत ही धोखेबाज़ और जादुगरी की दुनिया होती है। इन सारे रंगों में यदि हम सफेद मिला दें ये रंग हल्के हो जाते हैं, और काला रंग मिला दें तो गाढ़े हो जाते हैं। लाल रंग में पीला मिला दो तो नांरगी रंग बन जाता है। नीले में पीला मिला दो तो हरा बन जाता है। बहुत सारे रंग आपस में मिल जायें तो इन्द्रधनुष बन जाता है। किन्तु इन सारे रंगों का महत्त्व होली में बहुत बढ़ जाता है क्योंकि ये सारे रंग धान हरियाली और वसन्त ऋतु के साथ-साथ बागों में बहार बनकर झूमते हैं। ऐसा लगता है कि हमारी आंखों ने ही रंगीन चश्मा लगा लिया हो।

आज होलिका दहन किसलिए होगा मैं आपको छोटे रूप में बताती हूं। राजा हिरण्यकश्यप जो बहुत अत्याचारी और दैत्य राजा था उस राजा ने अपने भगवान् प्रेमी भक्त पुत्र प्रह्लाद को अपनी मायाविनी बहिन के साथ अग्नि की चिता पर उसे जीते जी जला दिया था। किन्तु जाको राखे साईयां मार सके न कोय। उसी चिता में दैत्यराज की बहिन जलकर राख हो गई थी और भक्त प्रह्लाद उसमें ऐसी मुस्कुराहट से जीवित रहा जैसे कि अग्नि जंगल से कोई नील कमल तोड़ लाया हो। इसलिए उस राक्षसी होलिका के जलने की खुशी में और भक्त प्रह्लाद के बच जाने के उपलक्ष्य में हर साल होलिका दहन किया जाता है।

यह होलिका दहन हमेशा हमें इस बात की याद दिलाता रहता है कि परम पिता परमेश्वर भक्त पर संकट के समय हमेशा उसे अपनी बाहों में थाम कर उसकी रक्षा करते हैं। दूसरे शब्दों में अधर्म का नाश और धर्म की विजय होती है। इस होलिका दहन की कहानी से हमें

सीखना चाहिए कि चाहे संकटों का सागर उमड़े, चाहे आपत्तियों की आंधी चले, चाहे लोक-निन्दा की नदियां बहें, चाहे स्तुति-प्रशंसा का पहाड़ खड़ा हो परन्तु धर्म-प्रेमियों का यह कर्त्तव्य है कि वह सत्य के पीछे अड़े रहें और अपने निश्चित पथ से कभी विचलित न हों। सत्य की पताका को कभी झुकने न दें। सत्यता के द्वारा जनता में नई उमंगें, अपूर्व आशा, असीम आह्लाद का प्रचार हो। इसलिए होली उमंग भरा, अनूठे रंगों भरा विनोद हास्य रस की लहरों से भरा, मनमोहक, मनलुभावने भावों से भरा, रसीला, सरस, परस्पर पवित्र प्यार भरा, एकता के सन्देशों से भरा समता और ममता के भावों से भरा, उत्सव प्रेमी धाराओं से भरा पवित्र त्यौहार है। विशेषतः यह त्यौहार उन तपस्विनियों को कविता रचने की प्रेरणा भी देता है। इस होली के अवसर पर तपस्विनी के भाव इस प्रकार उमड़ पड़ते हैं। जैसे—

सैंया तुम फगवा के रंग और मैं यज्ञ की अग्नि।
तुम रंगों की तरह बिखरते मैं अग्नि की तरह जलती॥
तुम रंगों पर हो छिटकते, मैं धर्मयोग में बैठी रहती।
तुम रंगों का छिड़काव करते, मैं धर्म यज्ञ की अगवानी॥
सैंय्या तुम फगवा के रंग और मैं यज्ञ की अग्नि।
तुम जादुई रंगों पर उड़ते, मैं पृष्ठों की अग्नि पर जलती॥
तुम रसिक संग से रंग खेलते, मैं धर्म यज्ञ की पिचकारी भरती।
तुम इह लोक को लोक समझते, मैं धर्म अलौकिक युग में रहती॥
तुम आवागमन की मस्ती में रहते, मैं केवल करती गमन की अगवानी।
सैंया तुम फगवा के रंग और मैं यज्ञ की अग्नि॥

किन्तु श्रोतागणो जहां हम होली हिन्दुओं का रंगविरंगा त्यौहार है, दूसरी ओर मुझे कहना पड़ रहा है कि सारे संसार में बढ़ती अशान्ति के साथ ही इस त्यौहार की भावना में भी बदलाव आने लगा है। आप लाल गुलाब को जहां अधर्मी लोग एक दूसरे के खून से होली खेलने को तैयार रहते हैं। होली पर परस्पर गले मिलने के बहाने एक दूसरे की पीठ पर छुरा घोंपने को तैयार रहते हैं। सुगन्धित इत्र और गुलाब

जल के स्थान पर एक दूसरे पर ज़हर भरा रंग फेंका जा रहा है जो आदमी को रंगने से पहले ही उसे जलाकर राख कर देता है। ऐसी घातक भावना रखने वालों के लिए सीधे चेतावनी है—

बदतमीजी कर रहे हैं आज फिर भौंरे चमन में।
साथियो आंधी जलाने का ज़माना आ गया है।
लग रहा है आसुओं पर टैक्स पीड़ा कुर्क होती।
गरम ताज़ा खून खेतों में बुवाया जा रहा है॥

मुस्कुराने के लिए दो चार लम्हे मांगने पर,
हर महकते फूल को बागी बताया जा रहा है।
मत मिलाते ही रहो तुम तार वीणा के पुराने,
मौत से आंखें मिलाने का ज़माना आ गया है॥

जल रहा है वृन्दावन मां यशोदा है सिसकती,
कन्हैया कर्ज में डूबा कि राधा शीश है धुनती।
आज होली के बहाने खून बनकर बहता पानी,
मत तीर तरकश में संभालो राम तुम अपना॥

उठो कृष्ण! सुदर्शन चक्र चलाने का ज़माना आ गया है।

सीता के जीवन व चरित्र

नारी जाति को विधाता ने ललित, दिव्य, मृदु और मधुर गुणों की राशि बनाया है। इन सब गुणों का विकास जैसा नारी में होता है वैसा अन्यत्र कहीं नहीं दिखाई देता। नारी, दया का अवतार है, प्रेम की परम धारा है, सौन्दर्य की प्रतिमा है और मधुरिमा की मूर्ति है। नारी संसार का मूल है और गृहस्थाश्रम की जीवन-शक्ति है। इसीलिए देव-वाणी साहित्य में नारी को देवी शब्द से पुकारा गया है। संस्कृत-साहित्य में दया और कृपा आदि जितने मन के ऊँचे भाव हैं वे सारे शब्द स्त्रीलिंग से ही निर्देश किये गए हैं। संसारियों का संसार, गृहस्थियों की गृहस्थता सुकर्मियों के सुकर्म और धर्मात्माओं के सब धर्मों का स्रोत नारी है। अतः नारी को नर की खान कहा जाता है।

जिस नारी जाति की इतनी ऊँची महिमा है, सभ्य-समाज में जिसका इतना समादर है। उसमें आदि सृष्टि से समस्त संसार में सर्वोत्कृष्ट और आदर्श रूप में, किस देवी ने इस वसुन्धरा को अपने जन्म से पवित्र किया था। यह प्रश्न मानव-समाज की शिक्षा और मानव-इतिहास के लिए अति आवश्यक एवम् महत्त्वपूर्ण है। इस प्रश्न के उत्तर के लिए समस्त संसार के प्राचीन और अर्वाचीन स्त्री-रत्नों के चारु चरित्रों पर दृष्टि डाली जाए तो सर्व-सम्मति में एक ही नाम सब के हृदयों और जिह्वा पर आता है और वह है तत्त्वज्ञानी-शिरोमणि, मिथिलाधिपति राजर्षि विदेह जनक की आत्मा और सूर्यकुल कमलदिवाकर मर्यादा पुरुषोत्तम महाराजा रामचन्द्र जी की धर्मपत्नी सती शिरोमणि, प्रातः स्मरणीया श्री सीता जी का पवित्र नाम अविस्मरणीय है। भूतकाल में तो श्री सीता माता की समता करने वाली कोई नारी दिखाई ही नहीं देती, किन्तु भविष्य में भी उनकी समकक्ष हो सकेगी, इसमें भी सन्देह है।

बड़े-बड़े क्रान्तिदर्शी, महाकवि, उपन्यासकार, साहित्यकार खोज करते-करते थक गए हैं किन्तु उनको श्री सीता जी की उपमा नहीं

मिल सकी। इसीलिए आदिकवि वाल्मीकि ने श्री सीता जी को अनुपमा कहा है अर्थात् जिसकी कोई उपमा न हो। क्या सरलता में, क्या सुशीलता में, क्या सरसता में, क्या सच्चरित्रता में, क्या पतिपरायणता में, सभी विषयों में सीता देवी अद्वितीय थीं। कहते हैं कि "होनहार बिरवान के होत चीकने पात।" यदि इस लोकोक्ति के अनुसार हम सोचें तो श्री सीता जी बाल्यावस्था से ही होनहार थीं। यह उनके जन्मजन्मान्तरों के सुकृत्यों का फल और सौभाग्य था कि उनका जन्म महाराजा जनक जैसे आध्यात्म तत्त्ववेत्ता तथा धर्मात्मा पिता के यहां हुआ था। महाराजा जनक अपने समय में आध्यात्म विद्या में ऐसे निष्णात माने जाते थे कि ब्रह्म-जिज्ञासु, ऋषि-मुनियों की मण्डली ज्ञान-चर्चा के लिए उनको सदैव घेरे रहती थी। और महाराजा जनक भी निष्काम भाव से राज्य-व्यवहार चलाते हुए भी जल में उत्पन्न कमल पत्र के समान संसार से पृथक् रहते थे। ऐसे सर्वगुणसम्पन्न राजर्षि जनक की आत्मजा श्री सीता जी सर्वगुणों की खान क्यों न होतीं?

यद्यपि श्री वाल्मीकि रामायण और पुराणों में श्री सीता जी को जानकी, वैदेही, जनकात्मजा और जनक सुता पदों से जनक की पुत्री बतलाते हुए भी उनको अयोनिजा कहा गया है और उनके सीता नाम को लेकर उनकी उत्पत्ति के विषय में एक अलौकिक कथा का वर्णन किया गया है कि वे सीता यज्ञ में हल चलाते हुए महाराजा जनक को पृथिवी में सीता यानि कि हल के खूड़ में मिली थीं इसलिए उनका नाम सीता पड़ा था। परन्तु इस कथा का ऐतिहासिक और मानवीय दृष्टि से तत्त्वानुसन्धान किया जाए तो उसमें इतना तथ्यांश प्रतीत होता है कि महाराजा जनक के सीता-यज्ञ के अवसर पर ही उनका जन्म होने के कारण उनका नाम सीता रखा गया था।

बाल्यकाल की सीमा को अतिक्रमण करके जब श्री सीता जी ने कैशोर अवस्था में पदार्पण किया तो उनके सद्गुणों का सौरभ दसों दिशाओं में फैलने लगा। किन्तु राजर्षि जनक जहां अपनी सुपुत्री की कीर्ति सुनकर बहुत प्रसन्न होते तो उनके मन में इस चिन्ता का आविर्भाव

भी होने लगता कि सीता अपनी शारीरिक और मानसिक सम्पत्ति अर्थात् अपने सौन्दर्य, बल, विद्या और बुद्धि के अनुरूप ही किसी योग्य पुरुष-श्रेष्ठ की सहधर्मिणी तथा धर्मपत्नी बन सके। सौभाग्य से सीता जी को भगवान् राम जैसा नर रत्न पति के रूप में मिला। और विवाह पश्चात् श्री सीता जी अपने पति के साथ अयोध्या जाकर आनन्द पूर्वक रहने लगीं।

श्रोतागण आप सब को रामायण की इस कथा का अंश मालूम है कि वृद्ध होने पर महाराजा दशरथ ने अपने ज्येष्ठ सर्वश्रेष्ठ पुत्र श्री रामचन्द्र जी को युवराज पद पर अभिषिक्त करना चाहा, किन्तु कुटिल दासी मन्थरा के बहकाने से उनकी छोटी रानी कैकेयी के दुराग्रहवश उनको श्री रामचन्द्र जी को राज्य न देकर चौदह वर्षों का बनवास देना पड़ा। श्री रामचन्द्र पिता की आज्ञा को शिराधार्य करके अपने अनुज लक्ष्मण सहित जब वन को पधारने लगे तो पति-परायणा सती-शिरोमणि श्री सीता जी ने भी प्राणप्रिय पति के पदों का अनुसरण किया और राजप्रासादों के सुख ऐश्वर्य भोग त्याग कर पति की सेवा में वनस्थलों की कठोर भूमि को शयन और भोजन के रूप में कन्द, मूल, फल आदि को अधिक आनन्दप्रद माना। जंगलों में श्री सीता जी अनुसूया आदि ऋषि पत्नियों के सत्संग में प्राकृतिक शोभा का निरीक्षण करते हुए पति की सेवा में रत रहती थीं।

राक्षसराज रावण श्री सीता जी की सुन्दरता से आकृष्ट होकर संन्यासी के रूप में श्री राम और लक्ष्मण की अनुपस्थिति में पंचवटी से श्री सीता जी को बलात् हर कर ले गया और अपनी अशोक वाटिका में उन्हें बन्दी बनाकर रखा। श्री रामचन्द्र जी अपने भ्राता लक्ष्मण सहित श्री सीता जी को वन-वन खोजते फिरे और उन्होंने पम्पाधिपति वानर-वंशी सुग्रीव से मित्रता करके उसके सेनापति अतुल बलधारी ब्रह्मचारी हनुमान् जी के द्वारा श्री सीता जी का लंका में पता लगवाया। और फिर सुग्रीव की वानर सेना के साथ लंका पर आक्रमण किया और अपनी रण-पटुता और शस्त्र-विद्या-कौशल से वानरों की सुशिक्षित सेना

के साथ रावण की युद्धाभ्यासी राक्षससेना को पराजित किया और अन्त में मायावी रावण का उसके कुटिल कुटुम्ब सहित वध करके अपनी प्राणप्रिया धर्मपत्नी को उसके बन्धन से छुड़ाया। किन्तु यहां श्री सीता जी की योग्यता देखिए कि राक्षस रावण जैसे दुष्ट के पंजे में फंसकर भी श्री सीता जी ने अपने धर्म की रक्षा जिस आत्मिक बल से की वह अद्वितीय तथा सराहनीय है। राक्षसराज रावण ने उन्हें अनेक प्रलोभन देकर फुसलाना चाहा। नाना प्रकार की यातनाएँ देकर डराया, धमकाया किन्तु वह अपने धर्म से लेशमात्र भी विचलित नहीं हुईं। संस्कृत साहित्य की इस उक्ति के अनुसार की "धर्मो रक्षति रक्षितः।" अर्थात् जो धर्म की रक्षा करता है तो अन्त में धर्म उसकी रक्षा करता है, सीता जी भी पद्मपत्रमिवाम्भसा के समान पाप-पन्थ के स्पर्श से विशुद्ध रहीं।

भगवती सीतादेवी जी का यह पावन जीवन-चरित्र प्रत्येक कुल की नारी के लिए आदर्श स्वरूप है। श्री सीता जी का चरित्र यदि हम अध्ययन करें तो आज की वासनालोलुपता और अधिकारप्रियता के प्रगाढ़ अन्धकार के युग में भी एक अलौकिक प्रकाश हृदय में जगाता है। वैदिक धर्म में पति और माया का सम्बन्ध केवल शारीरिक नहीं है। दैहिक सुख उपभोग भी इसका उद्देश्य नहीं है किन्तु यह सम्बन्ध दो आत्माओं के मिलन का शाश्वत सम्बन्ध है जो जन्म जन्मान्तरों तक बना रहता है। आर्यशास्त्रों में विवाह का प्रयोजन धर्म-पालन के लिए भी किया जाता है इसके अनुसार ही पत्नी को धर्मपत्नी कहते हैं। शब्दशास्त्र के नियम—"अश्वघासादिवत् तादर्थ्य समास" का भी यही अर्थ है। सती शिरोमणि सीता जी का यह आदर्श इसका ज्वलन्त उदाहरण है। इसीलिए जनकसुता, सुन्दरी, शुभा, साध्वी, सुकुमारी, सती, सुशीला, सदाचारिणी, विदुषी, रामप्रिया, पति-भक्ति भूषिता आदर्श नारी सीता जी आज भी हिन्दू जन मानस के कण-कण में व्याप्त है।

१२. जीवन और मृत्यु

गत मंगलवार को मैं आपकी सेवा में उपस्थित न हो सकी उसके लिए क्षमा-प्रार्थी हूं। मेरे प्यारे श्रोतागणो आज का प्रवचन उन सज्जन एवम् भद्र महिलाओं के विशेष आग्रह पर है जिन्होंने मुझ से फोन पर यह जानना चाहा कि यह जीवन क्या है और मृत्यु क्या है। वैसे मैं इन विषयों को अपने कई प्रवचनों द्वारा आपकी सेवा में प्रस्तुत कर चुकी हूं किन्तु आज दूसरी तरह से आपके सामने कहने का प्रयत्न करूंगी।

यह जीवन और मृत्यु जन्म व मरण के आवागमन के दो दरवाजे हैं। वैसे तो प्रतिदिन यह आत्मा आपके शरीर से अलग अवश्य होता है। कैसे जब हम बहुत थक कर बहुत गहरी नींद में सो जाते हैं तो सारा शरीर सो जाता है, मन भी सो जाता है। कोई स्वप्न भी दिखाई नहीं देते, उस समय यह आत्मा शरीर में रहता हुआ भी इससे अलग हो जाता है। और यही है परमात्मा का परम आनन्द। उस परम आनन्द को अनुभव करने के बाद जब मनुष्य जागता है तो कहता है कि अहा आज तो बहुत अच्छी नींद आई, बहुत आनन्द आया। किन्तु प्रश्न यह है कि जब यह शरीर सो रहा था तो आनन्द किसको आया? शरीर को तो आया नहीं। शरीर तो संज्ञाहीन पड़ा था, फिर कौन इस आनन्द को लेता रहा? वो ही आत्मा जो इस शरीर से अलग हो गया था? और यह आनन्द उसको किस समय मिला? उस समय जब वह शरीर से पृथक् हो गया था। परमात्मा से मिल गया था। जितनी देर यह आत्मा परमात्मा से मिलता रहा उतनी देर आनन्द का अनुभव भी करता रहा। इसका मतलब है कि यह आत्मा जितनी देर प्रकृति में फंसा रहता है उतनी देर दुःख भोगता है। और जब यह आत्मा प्रकृति और शरीर से अलग होकर ईश्वर से मिलता है उतनी देर आनन्द का अनुभव करता है। महात्मा नारद जी इसका वर्णन इस प्रकार करते हैं—

एक राजा था। उसका नाम पुरंजन था। एक बार राजा पुरंजन की इच्छा हुई कि मैं किसी नगरी में जाकर रहूं। तब राजा पुरंजन ने कई नगर देखे कोई पसन्द ना आया। तब राजा ने हिमालय के दक्षिण में एक नौ द्वारों वाली नगरी देखी। उस नगरी में एक सुन्दर स्त्री रहती थी। उस सुन्दर स्त्री की दस सेवक सदा सेवा करते थे। और एक पांच फन वाला सांप सदा उसकी रक्षा करता था। उस सुन्दर नारी को जब राजा ने देखा तो उस पर मोहित हो गया। और उसके बाद पुरंजन राजा उस सुन्दर स्त्री से विवाह कर उसी नगरी में रहने लगा। रहते-रहते वर्षों बीत गए। अब राजा बूढ़ा होने लगा, बीमार रहने लगा। तब एक दिन राजा पुरंजन ने दुःखी होकर यह नगरी छोड़ दी। वास्तव में नारद मुनि की यह कथा आत्मा की कहानी है। क्योंकि पुरंजन नाम का कोई राजा नहीं यह आत्मा है और नौ द्वारों वाली जिस नगरी में आकर उसने निवास किया वह नौ द्वारों और आठ चक्रोंवाली नगरी यह मानव शरीर है। इस नगरी का वर्णन भक्त कबीर ने इस प्रकार किया है—

मन, मथुरा, दिल द्वारिका, काया काशी जान।
दसवां द्वारा देहरा ता में ज्योति पहचान॥

और वेद भगवान् ने इस नगरी का वर्णन करते हुए कहा है—

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।
तस्यां हिरण्ययः कोषः स्वर्गो ज्योतिषावृतः॥

अर्थात् आठ चक्रों और नौ द्वारों वाली यह नगरी है जिसकी कोई जीत नहीं सकता। इस में एक चमकते हुए प्रकाश में परमात्मा के प्रकाश से आवृत वह आत्मा बैठा रहता है जो अपने आप में सुख रूप है।

अब प्रश्न यह है कि यह सुन्दर नगरी है कहां? क्या यूरोप में, अमेरिका में, अफ्रीका में, चीन में या भारत में कहाँ है? तब क्या यह चक्रों व द्वारों वाली नगरी क्या हालैंड है? नहीं जिस नगरी का वेद भगवान् ने वर्णन किया है वह मनुष्य का शरीर है। इसके नौ द्वार हैं और यह नौ द्वारों वाली अयोध्या नगरी है यह शरीर। इसमें आठ

चक्र हैं— मूलाधार चक्र, स्वाधिष्ठान चक्र, मणिपूरक चक्र, अनाहत चक्र, हृदय चक्र, विशुद्ध चक्र, आज्ञा चक्र और आठवां है ब्रह्म चक्र। इस नगरी में जो सुन्दर स्त्री रहती है वह है बुद्धि। दस इन्द्रियाँ ही उस सुन्दर स्त्री के सेवक हैं। और पांच प्राण अर्थात् पांच फनों वाला सर्प इस नगरी की रक्षा करता है। इसी नगरी में रहने आया था वह पुरंजन राजा-जीवात्मा और आगे की कहानी है—

एक बार पुरंजन नामक राजा यह जीवात्मा इस नगरी को छोड़कर निकला। दूसरी जगह विदर्भ राजा के नगर जाकर एक सुन्दर कन्या के रूप में उत्पन्न हो गया। विदर्भ के राजा ने उस सुन्दर कन्या का नाम रखा "अपूर्व कन्या"। वह अपूर्व कन्या बड़ी हुई तो मलय ध्वज नामक एक राजा के साथ उसका विवाह हो गया। दोनों सुख से रहने लगे। परन्तु एक दिन राजा मलयध्वज जब शीशे में अपना मुख देख रहे थे तो अचानक उनको अपने सिर में एक सफेद बाल दिखाई दिया। सफेद बाल को देखकर राजा अपनी पत्नी अपूर्व कन्या से बोले कि— रानी अब तो मैं जंगलों में जाकर भगवान् का भजन करूंगा। तुम चाहो तो राज्य चलाओ। रानी ने कहा मैं आपके बिना कैसे रहूंगी, जहाँ आप वहाँ मैं तो दोनों राजा रानी राज पाट महलों का सुख छोड़कर जंगल पहुँचे। वहां एक कुटिया बनाकर रहने लगे।

किन्तु श्रोतागणो समय का चक्र तो चलता रहता है ना। जंगल में उनका समय बीतने लगा। अन्त में वह समय भी आया जब मलय-ध्वज का देहान्त हो गया। मलय-ध्वज के मरने पर रानी अपूर्व कन्या ने रो-रो कर अपना बुरा हाल कर लिया। किन्तु रोते पीटते वहीं जंगल में लकड़ियों की चिता बनाई और मलयध्वज के शरीर को उस पर रख दिया। और अपने हाथों उस चिता को आग लगा दी और स्वयं भी उस पर बैठ गई। अग्नि प्रज्वलित हुई चारों ओर लपटें फैलने लगीं। रानी अपूर्व कन्या अब भी दहाड़ें मार-मार कर रो रही थी। उसके क्रन्दन से सारा जंगल गूंज रहा था। किन्तु तभी उस अग्नि की लपटों में से आवाज़ आई। पुरंजन! ओ पुरंजन! रानी ने रोना बन्द कर आश्चर्य से इधर उधर देखा उसे कोई दिखाई नहीं दिया। परन्तु फिर से आवाज आई। पुरंजन रोना बन्द करो। तुम स्त्री नहीं हो, तुम अपूर्व कन्या नहीं हो। रानी ने आश्चर्य से पूछा। "तुम कौन हो जो आवाज़ दे रहे हो?

ध्वनि ने कहा पहले तुम यह समझो कि तुम अपूर्व कन्या नहीं हो। तुम पुरंजन हो। कभी तुम पुरुष थे अब स्त्री हो। किन्तु वास्तव में तुम स्त्री-पुरुष कुछ भी नहीं। रानी ने पूछा— और तुम कौन हो? ध्वनि ने उत्तर दिया— मैं तुम्हारा अज्ञात नाम वाला मित्र हूं। और मैं तुम्हारा मित्र हूं दूसरा कोई नहीं, कोई सम्बन्धी नहीं, कोई पति या पत्नी नहीं, कोई पुत्र या पुत्री नहीं, यह रिश्ते नाते तब तक हैं जब तक यह शरीर है। तब पुरंजन ने अपने इस मित्र को पहचाना। तब उसने समझा अग्नि उसे जला नहीं सकती। उसके लिए कोई मृत्यु नहीं और वही सब का मित्र है जिसे लोग कहते हैं— परमात्मा वेद ने इसे कहा— "एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति।" प्रभु, ईश्वर, परमेश्वर, परम ब्रह्म, भगवान् शिव, शंकर, विष्णु, नारायण ना जाने कितने अनेक नामों से पुकारते हैं। यही है जन्म मृत्यु रूप जीवात्मा की सारी कहानी। यह आत्मा शरीर के साथ मिलकर कभी अपने आपको अपूर्व कन्या कहता है, कभी पुरंजन, कभी मलयध्वज, कभी विदर्भ राजा, कभी अर्चना कभी पद्मा आदि-आदि। कई प्रकार के सहस्त्रों, लाखों और करोड़ों नाम अपनाता है, करोड़ों रूप धरता है। महर्षि दयानन्द जी ने "**ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका**" में निरुक्त के एक मन्त्र में लिखा है जिसमें आत्मा अपने आपको समझता हुआ कहता है कि मुझे पता नहीं कि कितनी माँ की छातियों का मैंने दूध पिया है। कितनी माताओं की गोद में मैं खेला हूं। कितनी ही बार पिता बना हूं, बेटा बना हूँ, पति-पत्नी और बहिन बना हूं।

इसीलिए, मृत्यु का दुःख उससे पूछो जब वह अपने नन्हे पुत्र की लाश हाथों में उठाकर रोता है किन्तु इस रोने के साथ ही उस शरीर को पानी में बहा देता है। पत्नी पति की चिता पर रोती बिलखती है किन्तु साथ ही यह कहती है कि जितनी जल्दी हो सके ले जाओ और इस शरीर को आग लगा दो। क्योंकि जब तक इसमें आत्मा थी इस शरीर की सत्ता थी। इसे भूख प्यास लगती है, सर्दी गर्मी का अनुभव होता है। तब तक समाज, देश और संसार में इसकी सत्ता रहती है। जब तक यह शरीर है तब तक वह जज है, मन्त्री है प्रधानमन्त्री है, सेठ है, साहूकार है, व्यापारी है, अधिकारी है। तब तक लोग इस शरीर की रक्षा करते हैं, मान करते हैं, इसे प्यार करते हैं। उसके सामने अपना

सर झुकाते हैं। किन्तु जब यह जीवात्मा शरीर छोड़ देता है तब इस शरीर का एक कौड़ी का मूल्य नहीं रह जाता है, तब चाहे, इसे काटो, दबा दो, जला दो, गंगा में बहा दो, कोई फर्क नहीं पड़ता। क्योंकि जिसके कारण इस शरीर का महत्त्व था वह तो जा चुका। अब यह किसी का पिता, भाई, बेटा, पति पत्नी, बहिन, सम्बन्धी, मित्र, नेता, कुछ नहीं अब यह मिट्टी है मिट्टी।

भारत के पहले स्वर्गीय प्रधानमन्त्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू में जब तक आत्मा विद्यमान थी, तब तक किस की हिम्मत थी कि उनकी ओर आंख उठाकर बुरी नज़र से देख सकता? किसकी हिम्मत थी कि उन्हें एक सुई तक चुभो सके। किन्तु जब जीवात्मा ने उनको छोड़ा तो लोगों ने देखा कि यमुना के तट पर उस सुन्दर देह को आग की लपटों में जला दिया। जिस शरीर पर कोई बुरी दृष्टि नहीं डाल सकता था आज उसे आग लगा दी गई। जिस शरीर को करोड़ों लोग प्यार भरी नज़रों से देखते थे, आज उसी को जलाकर राख कर दिया। क्यों? इसलिए कि इस शरीर में अन्दर वाला आत्मा नहीं रहा। इसी जन्म-मरण के बन्धन को हर धर्म मानता है।

कुछ लोग हर घड़ी शिकायत करते हैं, क्या है जी? हमारा जीवन भी कोई जीवन है? इससे तो मौत ही अच्छी। अच्छी बात है तो मरो। रोकता कौन है? किन्तु मरना कौन चाहता है? एक लकड़हारा था। गर्मी की जलती दोपहरी में सिर पर लकड़ियों का भारी गट्ठर रखकर नगर की ओर जा रहा था। जब थक गया तो बेचारा लकड़ियों का गट्ठर एक ओर रखकर दुःखी होकर बोला— हाय रे, इससे तो मौत ही आ जाय तो अच्छा है। उस समय मौत कहीं पास ही खड़ी थी। सामने आ गई और बोली— तुमने याद किया मुझे? लकड़हारे ने पूछा— तुम कौन हो? मौत ने उत्तर दिया मैं वही हूं जिसे तुम अभी-अभी बुला रहे थे। जल्दी बोलो, क्या काम है? लकड़हारे ने जल्दी से कहा— और तो कुछ नहीं जरा यह गट्ठर उठाकर मेरे सर पर रख दो। मरना तो कोई नहीं चाहता।

संसारदीर्घरोगस्य सुविचारो महौषधम्।
कोऽहं कस्यचित् संसारो विवेकेन विलीयते॥

यह संसार क्या है, जन्म, यौवन, बुढ़ापा फिर मृत्यु।

१३. गुण-अवगुण और तप

आजकल हमारा स्वभाव ऐसा हो गया है कि हम सिर्फ दूसरों के अवगुण देखते हैं गुण नहीं। किन्तु यदि हम दूसरों के केवल गुण देखें तो हमारे अन्दर भी गुण इकट्ठे होते जाएंगे। और यदि हम दूसरों के केवल अवगुण ही देखेंगे तो दूसरों का कुछ बने या ना बने हमारे भीतर बुराइयों का भण्डार अवश्य लग जाएगा। मधुमक्खी सदैव मधु खोजती है और दुष्ट लोग केवल बुराइयों को। परन्तु जिस व्यक्ति का गन्दगी खोजने व प्रत्येक स्थान पर त्रुटियां और बुराइयां देखने का स्वभाव हो गया है वह ऐसा करेगा किस प्रकार? उसे तो शुभ में भी अशुभ नज़र आता है। अमृत के समीप जाकर भी विष दिखाई देता है।

वैसे देखा जाए तो त्रुटियां तो प्रत्येक व्यक्ति में होती हैं। सम्पूर्ण गुण तो केवल ईश्वर में ही हैं। यदि हमारे अन्दर भी केवल गुण ही गुण होते अवगुण नहीं होते तो हम इस मृत्युलोक में आते ही क्यों? इन गुणों-अवगुणों से सम्बन्धित मैं आज आपको एक कहानी सुनाती हूं, ध्यान से सुनिये।

एक था राजा। अपने राज्य में उसने ये नियम बना रखा था कि जो कोई व्यक्ति चोरी करेगा उसे फांसी का दण्ड दिया जाएगा। एक दिन महल में चोरी हो गई। जब चोरी की तहकीकात हुई तो तीन व्यक्ति पकड़े गए। जुर्म भी प्रमाणित हो गया। तीनों को फांसी की आज्ञा हो गई। जब राजा के व्यक्ति उसे फांसी के तख्ते तक ले गए तो दो व्यक्ति तो फांसी पर लटक कर मर गए, किन्तु जब तीसरे को फांसी होने लगी तो वह चिल्लाकर बोला— ठहरो। फांसी तो तुम मुझे दोगे ही, परन्तु मुझे एक रहस्य मालूम है जो मैं मरने से पहले बताना चाहता हूं, क्योंकि मेरी मृत्यु के बाद कम से कम संसार का कल्याण तो होगा। लोगों ने पूछा क्या रहस्य है? बताओ। उस चोर ने कहा

कि मैं लोहे से सोना बनाना जानता हूं। राजा के व्यक्तियों ने कहा कि अच्छी बात है बता कि लोहे से स्वर्ण किस प्रकार बनता है? चोर ने कहा— तुम्हें नहीं, मैं केवल राजा को बता सकता हूं। बात उड़ते-उड़ते राजा के कान तक पहुंची, तो राजा के मुख में पानी भर आया।

चोर को बुलाकर राजा ने पूछा— क्यों भाई क्या यह सत्य है कि तू लोहे का सोना बना सकता है। उस चोर ने उत्तर दिया— महाराज! मैं एक जड़ी-बूटी जानता हूं, उस बूटी को जब लोहे पर डाल दो तो वह लोहा सोना बन जाता है। राजा ने फिर पूछा कि कितने लोहे का सोना बना सकता है तू। चोर ने उत्तर दिया— जितना भी आप चाहें, किन्तु समस्या यह है कि यह जड़ी-बूटी मिलती जंगल में है आप मेरे साथ दो आदमी जंगल में भेज दीजिये, मैं जड़ी बूटी लेकर आता हूं और यहां आप लोहा इकट्ठा करवाइये। मैं सब के सामने सोना बनाकर दिखाऊंगा। राजा ने कहा— ठीक है। बस फिर क्या था? उधर चोर गया सिपाहियों के साथ जंगल में जड़ी-बूटी लेने और इधर राजा के महल के बाहर राज्य भर का लोहा इकट्ठा होने लगा। जिसके पास जो लोहे की वस्तु थी उठा लाया। सभा लग गई, सब लोग एकत्र हो गए। किसान, दुकानदार, ठेकेदार, मन्त्री, राज्य-कर्मचारी सब आ गए। तभी चोर सिपाहियों सहित जंगल से जड़ी-बूटी भी ले आया। चोर ने वह बूटी हाथ से मलकर एक मेज पर रख दी। और बोला—

महाराज! यह है वो बूटी। इसको लोहे के इस ढेर पर डाल दो तो ये सारा लोहा सोना बन जाएगा। परन्तु शर्त यह है कि बूटी को उठाकर वो ही व्यक्ति लोहे पर डाले जिसने जीवन में कभी चोरी ना की हो। मैं भी डाल सकता था किन्तु आप तो जानते ही हैं कि चोरी के कारण ही मुझे फांसी का दण्ड मिला है। मैं तो यह कर नहीं सकता। यहां बड़े-बड़े मन्त्री, महान् व्यक्ति विद्यमान हैं, इनमें से कई ऐसे व्यक्ति मिल जाएंगे जो इस बूटी को लोहे पर डाल सकें। आप उन्हें कहें कि बूटी को उठाएं और लोहे पर डाल दें। राजा ने कहा— हां, ऐसा

तो हो सकता है। तब राजा सब से पहले किसानों और जमींदारों की ओर देखकर बोले कि हे कृषको और जमींदारो! तुम में से ऐसा कौन है जिसने जीवन में कभी चोरी ना की हो। सन्नाटा छा गया। किसान थोड़ी देर तो चुप रहे फिर उनके चौधरी ने उठकर कहा— महाराज आप तो जानते ही हैं कि हम लोग अपने पशुओं को चारा खिलाने के लिए एक दूसरे के खेत से चारा काट लेते हैं, फिर ऐसा व्यक्ति किसानों में कहां मिलेगा जिसने कभी चोरी ना की हो। राजा ने फिर दुकानदारों के नेता से पूछा— तुम में से तो कोई ऐसा व्यक्ति अवश्य होगा जिसने कभी चोरी ना की हो? दुकानदारों के नेता ने सिर झुकाकर उत्तर दिया— महाराज, हम लोग तो तराजू की बेईमानी के लिए प्रसिद्ध हैं। हम ग्राहक को 2 किलो तोलकर देते हैं तो घर जाकर वही वस्तु 50 ग्राम कम निकलती है। चोरी तो हो गई ना। तो हम में से कौन कहेगा कि जीवन में कभी चोरी नहीं की। अब राजा ने ठेकेदारों की तरफ देखा और कहा— और तुम? तुम्हारा क्या कहना है? ठेकेदारों ने कहा— महाराज, हमारी तो प्रतिदिन सरकार में रिपोर्ट होती रहती है।

अब राजा थोड़े से चिन्तित हुए और उन्होंने अपने महल के ही कर्मचारियों की तरफ देखा और कहा— तुम में तो अवश्य कोई ऐसा व्यक्ति होगा? राजा के महल के कर्मचारियों ने धीरे से उत्तर दिया— महाराज आप वेतन देते हैं थोड़ा। और फिर भी कम वेतन होते हुए भी हम ने बड़ी-बड़ी आलीशान कोठियां बनवाई हैं, वह कोठियां किसके रुपयों से बनी हैं? यह आप भी जानते हैं और हम भी, फिर हम कैसे कहें कि हम ने चोरी नहीं की। राजा ने अब मन्त्रियों की ओर देखा, मन्त्रिवर ने भी यही उत्तर दिया। अब तो राजा जी घबराए। अपने छोटे भाई की ओर देखकर बोले— छोटे भैया तुम ही उठो, तुमने तो कभी चोरी की ही नहीं। भाई ने उत्तर दिया— महाराज, सच्ची बात तो यह है कि मैंने भी एक बार चोरी की थी। मैं जब प्रिंस कॉलेज में पढ़ता था तो मेरे एक मित्र के पास बहुत सुन्दर तस्वीर वाली एक पुस्तक

थी। वह पुस्तक मुझे इतनी पसन्द आई थी कि जब मेरा मित्र उठकर दूसरे कमरे में गया तो मैंने वह पुस्तक चुरा ली। मुझसे तो यह काम होगा नहीं। अब राजा ने तंग आकर कहा— तब मैं ही इस बूटी को उठाकर लोहे पर डालता हूं। उन्होंने मेज पर से बूटी उठाई और लोहे पर जैसे ही डालने लगे तो उन्होंने अपना हाथ रोक लिया और बोले— मुझे याद आता है कि चोरी तो एक बार मैंने भी की थी। मुझे एक बार ज्वर यानि कि बुखार हो गया था। डॉक्टर ने मुझे खाने के लिए मना किया था, अपनी माता के पास मैंने मिठाई पड़ी देखी और हठ किया कि मैं मिठाई खाऊंगा। माता ने मना किया— नहीं मिठाई के लिए तुझे डाक्टर ने मना किया है। और मिठाई का डिब्बा अलमारी में रखकर मां दूसरे कमरे में चली गई। माँ की अनुपस्थिति में मैं चुपके से उठा और अलमारी से मिठाई निकालकर खा ली, मां को मैंने बताया नहीं, परन्तु चोरी तो मैंने भी की ना। अब सारे राज्य में सन्नाटे की एक लहर-सी दौड़ गई, सब अपने से ही नज़रें चुराने लगे। तब चोर ने बड़े ही अदब से कहा— महाराज जब सारे ही चोर हैं तो मुझ अकेले को ही फांसी क्यों?

तो श्रोतागणो, यह कहानी सुनाने का मतलब था दोष और त्रुटि से तो कोई अलग नहीं। इसलिए किसी हिन्दी के कवि ने कहा है कि—

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा ना मिलया कोई।
जो दिल खोजा आपना मुझ से बुरा न कोई॥

इसलिए दूसरे के गुणों को देखो अवगुणों को नहीं, और सब से आवश्यक बात है कि मन की मैल हटाकर सदा प्रसन्न रहो। आजकल तो किसी से पूछो कि क्यों भाई, कैसे हो? तो मुह लम्बा करके उत्तर मिलता है, कट रही है। सुनकर ऐसा लगता है कि जैसा जेल में कट रही है। यह क्या बात हुई? मनुष्य सदा आड़े तिरछे मुंह बिगाड़कर

रोता ही रहता है? मानव जीवन रोने के लिए तो नहीं मिला है, बहुत मूल्यवान् वस्तु है यह। महाभारत में लिखा है कि— 'गुह्यं ब्रह्म तदिदं ब्रवीमि। न हि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्।' अर्थात् सुनो रहस्य की बात कि मनुष्य शरीर से मूल्यवान् और कुछ भी नहीं है। इतना सुन्दर शरीर दिया है भगवान् ने संसार इसे सर्वश्रेष्ठ प्राणी कहता है। और तुम मुंह लम्बा करके कहते हो कि कट रही है। सुनो, यह बहुत ही पुण्य कर्मों से ईश्वर की महती अनुकम्पा से मिलता है। संसार में तीन वस्तुओं का मिलना बहुत कठिन होता है। पहला मानव शरीर, दूसरा मुक्ति की कामना और तीसरा साधु की संगति। मुक्ति की कामना के विषय में जगद् गुरु शंकराचार्य कहते हैं कि मनुष्य में ऐसी उत्कट इच्छा होनी चाहिए जैसे पानी से बाहर निकाली गई मछली पानी में वापस जाने को तड़पती है, बेचैन होती है।

१४. प्रेम का स्वरूप

पिछले मंगलवार को मैं आपको प्रेम के विषय में बता रही थी। प्रेम कितने प्रकार का होता है, कैसे होता है और इसका रूप क्या होना चाहिए। मैंने आपको बताया था कि वियोग के साथ यदि प्यार का रंग चढ़ जाए तो भक्ति का जन्म होता है। गुरु और पिता के लिए जो प्यार सन्तान के हृदय में पैदा होता है उसे श्रद्धा कहते हैं। पति के लिए पत्नी के हृदय में जो भावना उत्पन्न होती है उसे 'प्रेम' कहते हैं। सन्तान के लिए माता-पिता के हृदय में जो अनुराग जागता है उसे स्नेह कहते हैं। और ईश्वर के लिए जो प्रेम उत्पन्न हो जाए उसे भक्ति कहते हैं। इसलिए कहा है कि—

पोथी पढ़-पढ़ जग मुआ, पण्डित भया ना कोई।
ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पण्डित होय॥

किन्तु पोथी तो हर कोई पढ़ सकता है ये जो ढाई अक्षर का शब्द है ना प्यार है, यह बड़ी कठिन वस्तु है। क्योंकि हमारी दशा उस मनुष्य की भांति है जो पानी के बीचोंबीच खड़ा हो और चिल्ला रहा हो कि मुझे प्यास लगी है। किन्तु यहां पानी का अर्थ जल नहीं अपितु ईश्वर है। जो हमारे चारों ओर है फिर भी उसकी ही प्यास से बेचैन है क्यों? इसलिए कि हम में असली प्यास की अग्नि नहीं जली। जब अपने प्यारे प्रियतम के लिए यह प्रेम की आग प्रज्वलित होगी तब उससे मिलने के लिए मन स्वयम् तड़प उठेगा। जब उसके बिना यह जीवन व्यर्थ लगने लगेगा तो सूखे होठों की प्यास बुझाने के लिए आंसुओं का पानी जाग उठेगा। जब प्रियतम के वियोग में आंसू बहें तो समझना कि यह तुम्हारी सफलता का पहला चिह्न है। ये आंसू तुम्हारे मन की मैल धो देंगे और मन साफ हो जाने पर वह प्रीतम प्रभु-स्वयं मुस्कुराता हुआ दिखाई देगा। ईश्वर तो पाषाण हृदय नहीं निर्दयी और बेदर्दी भी नहीं, वह तो अनन्त दया का भण्डार है। प्यार की अग्नि जब प्रज्वलित हो जाती है, वियोग की गर्मी जब तन को जलाने लगती है और उस

गर्मी के कारण उमड़ते बादलों की भांति जब अँखियाँ छम-छम आंसू बरसाने लगती हैं, तब वह अतिशय सुन्दर, मनमोहन, प्रीतम स्वयम् आगे बढ़कर कहता है कि "आओ मेरे भक्त! मैं तो तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहा था"

कबीरा मन निर्मल भया, जैसे गंगा नीर।
पाछे पाछे हरि फिरें, कहत कबीर कबीर॥

अब देखिये, प्रभु कहीं गए नहीं, भक्त कहीं गया नहीं। दोनों पहले भी यहीं थे। यह ज्ञान भी था कि ईश्वर हर तरफ है। तब प्रभु प्रतीक्षा किस बात की कर रहे थे? केवल इस बात की भक्त के हृदय में प्रेम की ज्वाला कब उठे? प्यार एक तरफ से तो नहीं हो सकता था। अकेला ज्ञान तो कुछ नहीं कर सकता और अकेला प्रेम भी व्यर्थ है। जब ज्ञान और प्रेम का मिलन हो जाए तब भगवान् आगे बढ़कर ज्ञान और प्रेम के मिलन का स्वागत करते हैं, क्योंकि ज्ञान में जब सच्चाई आ जाती है तो प्यार जाग उठता है। 'प्रेम' ज्ञान का रस है और ज्ञान प्रेम की ज्योति। जब दोनों मिलते हैं तो कल्याण जाग उठता है। ज्ञान प्यार का दीपक है, किन्तु इस दीपक में जो तेल जलता है वह है प्यार। प्रेम के बिना ज्ञान कुछ नहीं और ज्ञान के बिना प्रेम कुछ नहीं। इसीलिए शुरू में मैंने कहा कि "पोथी पढ़ पढ़ जग मुआ।"

कोरे ज्ञान से बड़ी-बड़ी बातें कहने से तो यह जन्म-मरण का बन्धन समाप्त नहीं हो जाता। वह तो प्यार से समाप्त होता है, क्योंकि—

प्रेम पियाला जो पिये, सीस दक्षिणा देय।
लोभी सीस ना दे सके, नाम प्रेम का लेय?

इस बात के लिए गुरु गोविन्दसिंह जी ने कहा था—

जो तोहे प्रेम करन का चाव।
सिर धर तली गली मोरी आव॥

इसमें सिर देना पड़ता है, अपने आपको मिटा देना पड़ता है—

कबीरा यह घर प्रेम का, खाला का घर नाहीं।
सीस उतारे कर धरे, सो पैठे घरु मांही॥

प्रेमी तो वो ही है जो मरने से भी ना डरे–

जब लग मरने से डरे, तब लग प्रेमी नाहिं।
बड़ा दूर है प्रेम घर, समझ लेव मन माहिं॥

सिर देने का सौदा तो महंगा नहीं है। यह सिर तो एक ना एक दिन जाएगा अवश्य। जब इस सिर को रहना ही नहीं है तो दे दो प्रभु के प्यार में सिर, देते ही ज्योति जाग उठेगी। जैसे दीपक की बत्ती का सिर काटने से उसकी लौ और तेज हो उठती है–

सिर राखे सिर जात है, सिर काटे सिर सोय।
जैसे बाती दीप की, कटे उजियारा होय॥

विचित्र संसार है इस प्रेम का। यहां मृत्यु में जीवन मिलता है और विनाश में निर्माण जागता है। अपना आप मिटा दो, अहंकार को समाप्त कर दो, अपने को प्रभु को अर्पण कर दो, फिर प्रभु भी मिलते हैं अवश्य। क्योंकि यह मरा हुआ अहंकार जन्म-मरण के बन्धन को खा जाता है। महर्षि दयानन्द जी ने ऋग्वेदादि-भाष्यभूमिका में लिखा है कि जब तक पूरी तरह आत्मसमर्पण नहीं करोगे तब तक प्रभु-दर्शन की आशा ना करो। प्रेमी बनना चाहते हो तो कुछ मत छिपाओ। सर्वस्व उसे दे दो क्योंकि यह सब कुछ तेरा नहीं उसी का है।

तू छिपा छिपा के न रख इसे तेरा आईना है वो आईना।
कि शिकिस्तः हो तो अजीजतर है, है निगाहे आईना साज़ में॥

सामवेद में कहा है— **नि होता सत्सि बर्हिषि।** अर्थात् जिस हृदय मन्दिर में, पाप अज्ञान और अन्धकार नष्ट हो गए हैं। उस मन मन्दिर में प्रभु के दर्शन होते हैं।

भक्त मीराबाई के शब्दों में—

तात, मात, भ्रात, बन्धु अपना नहीं कोई।
छोड़ दी है लोक लाज, होनी हो सो होई॥

तब चिन्ता किस बात की और डर कैसा? वियोग की धरती पर आंसुओं के जल से सींच कर प्यार की बेल जब भक्त ने बो दी है तो यह प्यार ही उसका सब कुछ है—

असुअन जल से सींच-सींच प्रेम बेल जो बोई।
अब तो बेल फैल गई अमृत फल उपजे होई॥

फैल गई यह बेल अब भक्त के लिए चैन कहां? शान्ति कहां? धैर्य से बैठ जाना कहां?

हे री मेरे पार निकस गया साजन मारया तीर।
बिरहा ज्वाला लगी उर अन्तर, प्राण धरत नाहीं धीर ॥

हृदय में तीर लग गया अब धैर्य कहां? बाल मूलशंकर को लगा था यही तीर। शिवरात्रि की रात को रात-भर जागते रहे, कि भगवान् शंकर के दर्शन हो जाएं। किन्तु जब यह दर्शन नहीं हुआ तो अशान्ति और भी बढ़ गई। उनके पिता ने सोचा कि इसकी बेचैनी की चिकित्सा विवाह है। किन्तु बाल मूलशंकर तो अपनी बेचैनी का कारण जानते थे। उन्होंने देखा कि उनके लिए विवाहरूपी जंजीरें तैयार हो रही हैं। मन ही मन उन्होंने निर्णय किया कि "नहीं पहनूंगा ये जंजीरें" उसे खोजे बिना शान्ति से बैठूंगा नहीं। शहनाई बजती रही, कपड़े बनते रहे, बनती रहीं मिठाइयां, दयानन्द सब कुछ छोड़कर चल दिये। कहां कहां की खाक छानी। एक ही धुन, एक ही मंजिल, एक ही गीत अपनाते हुए—

जिसने बनाई बांसुरी गीत उसी के गाए जा।
सांस जहां तक आए जाए, एक ही धुन बजाए जा॥

तब तक उन्होंने चैन की सांस नहीं ली जब तक दर्शन नहीं हो गए। हृदय की ग्रन्थियां खुल नहीं गईं—

भिद्यते हृदयग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।

यह है प्यार की महिमा। अपने अन्दर प्यार की आग उत्पन्न करो, अपने को मिटा दो, अहंकार को समाप्त कर दो तो प्रियतम मिलते हैं अवश्य। परन्तु यह सिर देने की बातें, प्यार में पागल हो जाने की अवस्था, यह सब सरल तो नहीं। इसका आधार है आत्मसमर्पण। किन्तु आजकल लोग प्यार बाद में करते हैं पहले यह प्रश्न पहले पूछते हैं कि मुझे क्या मिलेगा? परन्तु प्यार में व्यापार तो कभी होता ही नहीं

इसलिए व्यापार की भावना से किया गया प्यार कभी सफल होता नहीं। सफलता चाहते हो तो ऐसा प्यार करो, जिसमें स्वार्थ न हो। ऐसा प्यार भगवान् के साथ ही नहीं भगवान् के बनाए हुए प्राणियों से भी करो। जैसे मजनूं ने लैला से किया था, शीरी ने फरहाद से, ससि से पुन्नु ने, मीरा ने कृष्ण से। वेद भगवान् ने ईश्वर को विश्वरूप कहा है। यजुर्वेद में भक्त हाथ जोड़कर मस्तक झुकाकर कहता है—

नमो विश्वरूपेभ्यो विश्वरूपेभ्यश्च वो नमः।

नमस्कार है उस अनन्तरूप को, उस विश्वरूप को। स्वार्थ की भावना को छोड़ो। ऐसा करने से विश्वप्रेम उत्पन्न होगा जो वर्तमान संसार की प्रत्येक समस्या की चिकित्सा है। इसी विश्वप्रेम के कारण महर्षि दयानन्द जी ने आर्यसमाज के नियम बनाते हुए लिखा कि— "संसार का उपकार करना आर्यसमाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना। इस नियम पर ध्यान से विचार करें तो कहीं किसी सम्प्रदाय का, देश का, किसी जाति का वर्णन नहीं है। इसी विश्व प्रेम की विशाल भावना को लेकर महर्षि दयानन्द ने आर्यसमाज की नींव रखी। हम आप यदि महर्षि के उद्देश्यों को भूलकर आर्यसमाज को छोटी-छोटी सीमाओं में बांध दें तो यह महर्षि दयानन्द जी के साथ बहुत बड़ा अन्याय होगा, और आर्यसमाज के साथ भी अन्याय होगा। इसी बात को और अधिक स्पष्ट करते हुए महर्षि जी ने आगे चलकर नियमों में फिर कहा कि "प्रत्येक आर्यसमाजी को केवल अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिए अपितु दूसरों की उन्नति में भी अपनी उन्नति समझनी चाहिए। यह था महर्षि का विश्वप्रेम जो उन्होंने वेदों से प्राप्त किया था। ऋग्वेद में मन्त्र आता है—

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय।
युवा पिता स्वपा रुद्र एषां सुदुघा पृश्निः सुदिना मरुद्भ्यः॥

मन्त्र का अर्थ है— तुम से बड़ा कोई नहीं, कोई छोटा नहीं। तुम सब भाई-भाई हो, मिलकर आगे बढ़ो, सौभाग्य के लिए, उन्नति के

लिए, शान्ति के लिए। ईश्वर तुम्हारा पिता है। उत्तम अन्न देने वाली धरती तुम्हारी मां है। अपना-पराया कोई नहीं। अब बताइये, इससे बड़ा समाजवाद भी आपको कहीं मिलेगा? इससे बड़ा साम्यवाद कहीं है? यह है हमारा धर्म, जिसकी नींव है विश्वप्रेम। यह विश्वप्रेम संघर्ष से नहीं आता, डिक्टेटरशिप से नहीं आता, क्रूरता से नहीं आता, अन्याय से नहीं आता, तलवार से नहीं आता। यह उत्पन्न होता है उस समय जब भक्त अपने भगवान् को विश्वरूप में देखता है। प्रत्येक में उसी की ज्योति को देखकर अपना निःस्वार्थ प्यार देता है। यदि प्रभु को प्रसन्न करना चाहते हो तो उसके बनाए हुए प्राणियों से पहले प्यार करो।

खुदा के बन्दे तो हैं हजारों जंगलों में फिरते हैं मारे मारे।
मैं उसका बन्दा बनूंगा जिसको, खुदा के बन्दों से प्यार होगा॥

यही बात श्रीकृष्ण ने गीता में कही थी कि जो दूसरों के हित में सदा तैयार रहता है वही ईश्वर को प्राप्त करता है। महर्षि दयानन्द के विश्वप्रेम का आधार यही विश्वरूप प्रेम था। महर्षि जी के एक मित्र ने उनसे पूछा। इतना तप करने के पश्चात्, मोक्ष का अधिकारी बनने के पश्चात् तुम यह किस धन्धे में फंस गए हो? क्यों सारे संसार की चिन्ता तुम्हें अशान्त किये देती है। महर्षि दयानन्द ने इस बात को शान्ति से सुना और गम्भीरता से उत्तर दिया— सुनो मित्र! जो कुछ तुम ने कहा मैं उसे समझता हूं। किन्तु मैं केवल अपने लिए मोक्ष नहीं चाहता। मैं इस जलते हुए संसार के लिए शान्ति चाहता हूं। यह संसार आसुंओं के सागर में डूबा जाता है, त्राहि माम्-त्राहि माम् में सुलगता है। दया करो- दया करो में तड़पता है। मैं इसे ऐसे छोड़कर जाऊंगा नहीं। मुक्त होऊंगा तो इन समस्याओं को साथ लेकर। संसार के कल्याण के लिए मोक्ष को भी ठुकराता हूं।

१५. मानव-शरीर क्यों?

आलोक्य सर्वशास्त्राणि विचार्यार्थं पुनः पुनः।
इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा॥

सब शास्त्रों को देखकर और बार-बार विचार करके एकमात्र यही सुसम्मत विचार है कि सदा भगवान् नारायण का ध्यान करना चाहिए। प्यारे श्रोतागणो! गत मंगलवार को मैं आकर्षक, मनलुभावनी, प्रतिक्षण रंग बदलती ठगनी माया के विषय में बता रही थी। किन्तु अन्त में मेरा यह सन्देश था कि जो इस ठगनी माया को ठग ले, सुख केवल उसे ही मिलता है। मैं आज यहां रेडियो पर बैठकर कुछ बातें कर रही हूं और आप उसे सुन रहे हैं। यदि इस समय आपसे कोई पूछे कि आप क्या कर रहे हैं तो आप यही कहेंगे कि रेडियो द्वारा प्रसारित यह प्रवचन सुन रहे हैं। किन्तु यदि कोई आपसे यह पूछे कि आप इस मानव शरीर में क्यों आए हैं तो क्या कोई उत्तर है आपके पास? शायद आपके पास हो? किन्तु जो लोग इस ठगनी माया को ही अपना धर्म बनाए बैठे हैं उनके पास तो इनका कोई उत्तर नहीं। वे उद्देश्य को नहीं जानते हैं, केवल इच्छा को ही जानते हैं। प्रत्येक मनुष्य प्रसन्न रहना चाहता है, सुख चाहता है, परन्तु सुनो, जीवन में बहुत प्रसन्नता हो जाए तो भी सुख नहीं होता। तब यह चिन्ता जाग उठती है कि जो प्रसन्नता मिली है कहीं वह चली ना जाए। इसलिए प्रसन्नता के साथ-साथ मनुष्य में सन्ताप की दुःख की कल्पना भी जाग उठती है—

खुशी के साथ दुनिया में हजारों गम भी आते हैं।
जहाँ बजती है शहनायी वहां मातम भी होते हैं॥

हां श्रोतागणो! जीवन में ऐसे क्षण भी आते हैं और ऐसे विवाह भी होते हैं जिसमें शाम को बेटी का विवाह होता है और प्रातः सूर्योदय से पूर्व पिता के हृदय की गति बन्द हो जाती है, उसका देहान्त हो जाता है। वहीं पर विवाह मंडप की मधुर शाहनाइयों की गूंज के स्थान पर रोने की चीखें गूंज उठती हैं। बेटी के आशीर्वाद के फूलों के स्थान

पर आंसू बरसने लगते हैं। इस प्रकार कभी प्रसन्नता ही दुःख का कारण बन जाती है। आजकल प्रत्येक धनी व्यक्ति के पास सब कुछ यानि, मोटर, महल, नौकर-चाकर सन्तान, परिवार आदि सब कुछ है। किन्तु सुख-शान्ति नहीं है, कोई हृदय में बैठा कुरेद रहा है घाव किये दे रहा है। वह कौन है आत्मा, किन्तु हमें इसका अहसास नहीं है। प्रसन्नता, धन-सम्पत्ति, शक्ति, विद्या आदि ये सब नश्वर हैं। ये सब के सब जीवन बिताने के मनोरंजक साधन हैं किन्तु जीवन का उद्देश्य नहीं। यजुर्वेद के प्रथम अध्याय में एक मन्त्र आता है। इस मन्त्र में जीवन के उद्देश्य के सम्बन्ध में कुछ मनोरंजक प्रश्न हैं जो यहां मैं आपकी सेवा में प्रस्तुत कर रही हूं। जरा ध्यान से सुनिये-

प्रश्न है— 'कस्त्वा युनक्ति'? इसका अर्थ है कि तेरे इस शरीर के साथ आत्मा को किसने जोड़ दिया?

उत्तर है— 'स त्वा युनक्ति'। अर्थात् उस ईश्वर ने जोड़ दिया है।

फिर प्रश्न होता है— 'कस्मै त्वा युनक्ति' अर्थात् किसलिए जोड़ दिया है आत्मा को शरीर के साथ?

उत्तर मिलता है— 'तस्मै त्वा युनक्ति' उस परमात्मा को पाने के लिए जोड़ दिया है। और तब अन्त में कहा है कि 'कर्मणे वां वेषाय वाम्' परमात्मा को पाने का मार्ग यह है कि कर्म कर, ज्ञान प्राप्त कर, उपासना के मार्ग को अपना। यहां पर तीन शब्द हैं ज्ञान, कर्म और उपासना। उपासना के लिए कर्म आवश्यक है और कर्म करने के लिए ज्ञान, अर्थात् ज्ञान कर्म और उपासना के लिए यह मानव शरीर मिला है। इसलिए इस उपासना की भावना से, भक्ति की भावना से ही ऋग्वेद के शब्दों में भक्त पुकारकर कह रहा है कि— ओ मेरे प्रीतम, ओ मेरे प्यारे प्रभु, ओ मेरे मनमोहन, मेरे जीवन-नाथ, कब आएगा वह दिन, कब निकलेगा वह सूर्य, जब मैं अपनी आत्मा से बातें कर सकूंगा। कुछ आर्यसमाजी श्रोतागण यदि सुन रहे हैं तो अवश्य ही उनके हृदय में यह प्रश्न उठ रहा होगा कि अर्चना अपने आपको आर्यसमाजी कहती और ईश्वर को निराकार । किन्तु इसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है कि आज

रेडियो द्वारा यह प्रसारित कर रही है कि ईश्वर से बातें हो सकती हैं।

किन्तु श्रोतागणो यह परम सत्य है झूठ नहीं। इसलिए वेद (ऋ० 7।86।2) के इस मन्त्र में जो पिछली बार आपके सामने पढ़ा था—

उत स्वया तन्वा सं वदे तत्कदा न्वन्तर्वरुणे भुवानि।
किं मे हव्यमहृणानो जुषेत कदा मृळीकं सुमना अभिख्यम्॥

इसी मन्त्र में पुकारते हुए भक्त ने कहा है— कब आयेगा वह दिन जब मैं तुमसे बातें कर सकूंगा। जब तेरा प्रेमपात्र बनकर तुझे अपना बना लूंगा। और प्यारे प्रभु कब आयेगा वह दिन जब मैं तुम से बातें कर सकूंगा। जब तेरा प्रेमपात्र बनकर तुझे अपना बना लूंगा। और प्यारे प्रभु, कब आयेगी वह सौभाग्य की घड़ी जब तू मेरी प्यार से दी हुई भेंट को स्वीकार करेगा। हाय रे! कब उदय होगा वह सूर्य, जब मैं तेरे दर्शन कर पाऊंगा। यह है पुकार कि— कब, कब और कब? यही है वो प्रश्न जिसका उत्तर भक्त चाहता है। परन्तु यह जो वेद-मन्त्र होते हैं ना । इन वेद-मन्त्रों में एक प्रकार का जादू-सा होता है। वह जादू कि प्रश्न ही इस प्रकार से किया जाता है कि प्रश्न में ही उत्तर भी छिपा रहता है। ऋग्वेद के इस मन्त्र में भी सब प्रश्नों का उत्तर विद्यमान है केवल एक शब्द में और वह है सु-मना अर्थात् अच्छे पवित्र मन से। यह है भेद की बात मन को यदि सु-मन बना लो तो प्रभु का दर्शन मिलता है अवश्य और यदि इसको कुमन बना लो तो—

नदी किनारे मैं खड़ी, पानी झिल मिल होय।
मैं मैली, उजले पिया, मेरा किस विध मिलना होय॥

नहीं इस प्रकार मैले मन से प्रीतम नहीं मिलते। उन्हें मिलना हो तो सु-मन उत्पन्न करो। अपने मन को स्वच्छ करो तब उसके दर्शन होंगे अवश्य। परन्तु क्या दर्शन हो जाने से ही काम समाप्त हो जाएगा। नहीं? अभी तो कार्य आरम्भ हुआ है। हिन्दी के कवि ने कहा है कि 'आए वह' कौन है वह? मेरे प्रीतम, मेरे चितचोर, मेरे मनमोहन, मेरे प्रकाश स्वरूप, मेरे ज्योति भण्डार—

आए वह और झांककर ही लौटकर जाने लगे। मैंने कहा दामन

पकड़, क्यों लौटकर जाने लगे? मैं तो कब जोहती थी बाट तुम्हारे शुभ-आगमन की। फिर क्यों चले हो छोड़, प्रिय शोभा बढ़ाओ मेरे सदन की। हाँ केवल दर्शनों से ही प्यास नहीं बुझती वो तो और भी भड़क उठती है। तब जी चाहता है कि वे बैठें और कभी ना जाएँ, परन्तु हाय रे दुर्भाग्य दामन झटककर चल दिये वो—और यूं कहते गए, बैठूँ कहां तेरे सदन में, गैर हैं बैठे हुए।

अरे मानव निकाल इन गैरों को। यह गैर कौन हैं? काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार। याद रखो, प्रेमी सदैव एकान्त में मिलते हैं बाजारों में नहीं। उनकी भेद भरी बातें एकान्त में होती हैं। इसलिए इस मन्त्र में कहा—ओ मेरे प्यारे प्रभु! अब मैं तुझ से बातें करूंगा। साथ ही उत्तर दिया कि जब यह मन सु-मन हो जाएगा। इस मन का रोना तो भगवान् राम भी रोते थे । एक दिन गुरु वसिष्ठ जी के पास जाकर बोले— गुरुदेव, यह मन वश में नहीं होता । भगवान् राम ने कहा—परन्तु मुझे तो इसे वश में करना है अवश्य। मुझे मन को वश में करने का या तो उपाय बताइये नहीं तो मैं अपने प्राण दे दूंगा। तब गुरु वसिष्ठ घबराए। बोले नहीं राम, प्राण देने की आवश्यकता नहीं। मन को वश में करने का उपाय भी है। तब गुरु वसिष्ठ ने राम को यजुर्वेद का यह मन्त्र सुनाया— **तदेजति तन्नैजति तद् दूरे तद्वन्तिके। तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः॥**

वह सब को चलायमान रखता है किन्तु स्वयं स्थिर है। वह दूर है और पास भी है। वह सब के भीतर है और बाहर भी है। कैसी विरोधी बातें हैं? किन्तु विरोधी होते हुए भी सत्य हैं। मन चलता है, रुकता नहीं, किन्तु रुकता भी है। हवा तब रुकती है जब पृथिवी की आकर्षण शक्ति से परे चली जाए। पानी तब रुकता है जब समतल भूमि पर आ जाए और मन तब रुकता है जब प्रभु को खोजता खोजता थककर प्रभु-महिमा में खो जाए। उस समय के लिए कहा है "तन्नैजति" तब वह चलता नहीं। किन्तु गुरु वसिष्ठ के इस उपदेश में भगवान् राम को तसल्ली नहीं हुई। बोले— मैं आपसे प्रभु के पास जाने के

लिए मन को वश में करने का उपाय पूछता हूं तो आप कहते हैं प्रभु के पास जाकर मन वश में हो जाता है। अब यह बात मैं करूं कैसे। कहां ढूंढूं उस ईश्वर को, कहाँ जाकर खोज करूं? कहां मिलेगा वह?

गुरु वसिष्ठ ने देखा इस प्रकार काम नहीं बनेगा। उन्होंने पैंतरा बदला और प्यार से बोले— सुनो राम, मन को वश में करने का साधन मन है। राम बोले बड़ा विचित्र उत्तर है। यहां एक ही मन का झगड़ा समाप्त नहीं होता और अब दो मन हो गए इसका निपटारा कौन करेगा? तब गुरु वसिष्ठ ने उत्तर दिया— राम, लोहा लोहे को काटता है। इसी प्रकार वह मन जिसने अपने आपको तप और योग के साधन से वश में कर लिया है, वह दूसरे मन को वश में कर सकता है। इसलिए कठोपनिषद् में कहा है —**"उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत"**— उठो, जागो और उनके पास पहुंचो जो पहुंचे हुए हैं। इस सूक्ति में कहा है— उठो फिर कहा है जागो। वास्तव में मनुष्य जागता पहले है और उठता बाद में है। तब यहां यह बात उल्टी क्यों कह दी? वह इसलिए कि गुरु की खोज करने के लिए उठे हो तो जाकर खोजो। सावधान होकर आगे बढ़ो।

यह संसार बहुत बुरा है। यहां भांति-भांति के लोग अपनी दुकान लगाए बैठे हैं। स्वयम् उन्हें मार्ग का पता नहीं, दूसरों से कहते हैं— आओ तुम्हें मार्ग दिखाएं। सावधानता के साथ उन लोगों से बचो। मार्ग वह दिखा सकता है जिसने मार्ग पहले स्वयं देखा हो। पहुंचे हुए का पता इस प्रकार लगाया जा सकता है। आप ऐसे व्यक्ति के पास बैठें जिसके पास बैठने से और उसकी बात सुनने से आपका मन उकताए नहीं। दूसरी बात उस व्यक्ति की जिह्वा और वाणी वश में हो और तीसरी बात उसे क्रोध न आता हो। ऐसे ही एक व्यक्ति की कथा आज मैं आपको सुनाती हूं— एक भक्त थे उनका नाम था दादू। दादू महाराज एक नगर के बाहर रहते थे। मस्ती में भक्ति भरे गीत गाते। कोई आ जाए तो उसे भक्ति का उपदेश देते। स्थान स्थान वह मशहूर होने लगे। उनकी भक्ति की सुगन्ध शहर में भी पहुंची। शहर के कोतवाल भक्ति में थोड़ी-थोड़ी रुचि रखते थे। शहर के कोतवाल की भी इच्छा हुई

कि दादू महाराज के पास जायें और थोड़ा भक्ति-रस पी आए। उन्होंने अपने घोड़े पर एड़ लगाई, चाबुक मारा और चल दिये भक्त दादू को ढूंढ़ने। दूर तक गए कहीं कोई दिखाई नहीं दिया। तभी एक व्यक्ति दिखा जो मार्ग से कांटेदार झाड़ियों को हटा रहा था। कोतवाल ने रौब से पूछा—अरे, तू जानता है कि महात्मा दादू कहां रहते हैं? वह व्यक्ति कार्य में मस्त था, कुछ बोला नहीं। कोतवाल क्रोधित हो उठा, गाली देते हुए बोला— मैं तेरे बाप का नौकर नहीं, शहर का कोतवाल हूं कोतवाल, जल्दी बोल। उस व्यक्ति ने अब की बार सुना, आश्चर्य से कोतवाल की ओर देखा और धीरे से मुस्करा दिया। कोतवाल ने समझा यह व्यक्ति मजाक कर रहा है। कोतवाल ने उसे जोर से धक्का दिया और उस व्यक्ति का सिर पत्थर से जा टकराया और सिर से रक्त बहने लगा।

कोतवाल उसे वैसे ही छोड़कर आगे चल पड़े। कुछ दूरी पर जाकर कोतवाल को एक और आदमी मिला। कोतवाल ने उसे रोककर पूछा— तू जानता है कि दादू महाराज कहां मिलेंगे। उस व्यक्ति ने उत्तर दिया— दादू महाराज तो पीछे कांटेदार झाड़ियां साफ कर रहे थे, जिस मार्ग से अभी आप आ रहे हैं? क्या आपने उन्हें नहीं देखा? कोतवाल ने आश्चर्य से कहा— क्या? क्या वही दादू भक्त थे? पथिक ने कहा— हाँ। कोतवाल घोड़े को मोड़ते हुए झट वापस आए और शीघ्रता से घोड़े से उतरकर दादू के चरणों में गिर पड़े और रोते हुए बोले— मुझे क्षमा कर दो महात्मन् । मैं तो आपको ही खोजता फिरता था। मेरी बुद्धि पर पर्दा पड़ गया था जो आप ही को पीट डाला। दादू हंसते हुए बोले जानता हूं कि तुम दादू को ही खोज रहे थे। कोतवाल ने फिर कहा— क्षमा कर दीजिये मुझ से बहुत पाप हो गया। दादू और जोर से हंस पड़े। बोले— कोई पाप नहीं किया तुम ने। एक व्यक्ति एक घड़ा खरीदता है तो उसे भी ठोक बजाकर देख लेता है।

यह है पहुंचे हुए की पहचान। ऐसे व्यक्ति का मन आपके मन को वश में करने की सहायता दे सकता है। इसीलिए गुरु वसिष्ठ ने भगवान् राम को समझाया कि हे राम मन को वश में करने का साधन मन ही है।

१६. लोभ को त्यागो

गत मंगलवार को मैं आप सब को बता रही थी कि प्रभु-मिलन में कौन कौन सी रुकावटें हैं। मैंने बताया था कि पहली रुकावट है काम, दूसरी है क्रोध और आज तीसरी रुकावट क्या है यह आपको बताने जा रही हूं। यह रुकावट है लोभ। इस लोभ ने कितने देश उजाड़ दिये, कितनी जातियाँ नष्ट कर दीं, कितने परिवारों का सर्वनाश कर दिया। एक परिवार में दो भाई हैं। जब तक लोभ उत्पन्न नहीं होता, तब तक दोनों सुख से शान्ति से रहते हैं। चहुं ओर लक्ष्मी खेलती है। समाज में आदर है, सम्मान है, किन्तु लोभ के उत्पन्न होते ही दोनों परस्पर लड़े और दोनों का विनाश हो गया। इसलिए यह लोभ कहीं भी जागे विनाश को जगाता है। वेद भगवान् ने कहा है— "मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।" मत लालच कर किसी के धन का क्योंकि यह धन किसी का भी नहीं है। धन का अधिक लोभ करोगे तो जो कुछ पास में है वह भी चला जाएगा। एक कथा है—

एक व्यक्ति था। उसके पास एक मुर्गी थी जो प्रतिदिन सोने का अण्डा देती थी । उस सोने के अण्डे को बेचकर वह व्यक्ति अपना जीवन चलाता था, किन्तु एक दिन उसके मन में लोभ जागा । उसने सोचा कि यह मुर्गी प्रतिदिन एक अण्डा देती है क्यों ना इसे जान से मारकर एक ही बार में सारे अण्डे प्राप्त कर लूं । उसने उस मुर्गी को मार डाला। परिणाम यह हुआ कि एक भी अण्डा नहीं मिला और पहले जो सोने का अण्डा प्रतिदिन मिलता था वह भी समाप्त हो गया।

इसलिए शास्त्रों में कहा है कि लोभ मत करो क्योंकि यह लोभ पाप का नाम है। प्रत्येक पाप का जन्म इसी से होता है। इसी कारण से व्यक्ति चोरी करता है, डाके डालता है, अपने देश और जाति से विश्वासघात करता है। इस लोभ से बेटा बाप को, पति पत्नी को, भाई-भाई को कत्ल कर देता है। परन्तु आजकल तो लोभ का प्रचार इतना बढ़ गया है कि पैसे से अतिरिक्त लोग कुछ सुनना ही नहीं चाहते।

यदि लोभ को हृदय में लेकर, क्रोध को सीने में बैठाकर, वासना का बोझ उठाकर चाहते हैं कि प्रभुदर्शन हो जाए तो कैसे होगा। यह दर्शन? एक बार एक सुनार महर्षि दयानन्द जी के पास आया और बोला— स्वामी जी, मुझे प्रभुदर्शन करवा दीजिये। महर्षि ने मुस्कुराकर कहा— तीन विवाह तू पहले कर चुका, प्रतिदिन सोने की चोरी करता है। ऐसा कर कि एक विवाह और करा ले, सोने की चोरी और अधिक कर ले हो जाएगा प्रभु का दर्शन। प्रभु का नहीं तो किसी और का तो हो ही जाएगा। स्मरण रखो, इस प्रकार आत्मदर्शन नहीं होता। एक ओर प्रभु है दूसरी ओर तुम हो। दोनों के मध्य कुछ रुकावटें हैं। इन दीवारों को तोड़े बिना तुम अपने प्रीतम तक नहीं पहुंच पाओगे। जिस लोभ और मोह के जाल में तुम फंसे हो उससे बाहर निकलो। नहीं तो तुम्हें प्रभु का पता तक नहीं मिलेगा। वहां पहुंचने के लिए तो प्रत्येक इच्छा को छोड़ देना पड़ता है—

खुशी तुम्हारी त्यों करूँ, हम तो मानी हार।
भावें बन्दा बखशिये भावे गहि कर मार॥

तब लोभ के लिए स्थान नहीं रहता। कोई अपना-पराया नहीं रहता यहां तक कि अपनापन भी नहीं रहता। क्योंकि—

"उनका पता मिला तो फिर अपना पता कहाँ? अब आशना कहां कोई ना आशना कहां?" इस प्रकार काम, क्रोध, लोभ के बाद प्रभुदर्शन में चौथी रुकावट है "भय"। यह डर जो मन, बुद्धि चित्त और शरीर सब को नष्ट करता है। आज संसार में हम जितना संघर्ष देखते हैं इन सब का कारण डर के अतिरिक्त और क्या है? जैसे अमेरिका को ***रशिया*** का डर है और ***रशिया*** को अमेरिका का। दोनों एक दूसरे के भय के कारण सारे संसार को उस लक्ष्य की ओर लिये जा रहे हैं जहां विनाश निहित है। डर कैसे पतन की ओर ले जाता है। एक कथा सुनिये— एक स्त्री सड़क पर चली जाती थी। सामने से एक व्यक्ति आ रहा था जिसके दोनों हाथ सामान से भरे हुए थे और सिर पर एक भारी गठरी रखी थी। स्त्री उस बेचारे आदमी को देखकर चिल्लाई

कि यह आदमी मुझे छेड़ेगा। अचानक ही वहां एक समझदार व्यक्ति आ निकला। उस नेक आदमी ने कहा कि ओ भली मानस औरत यह तो तुझे कैसे छेड़ेगा। इसके तो दोनों हाथ खाली नहीं, सिर पर इतना बोझ है, दूर यात्रा पर इसे जाना है, फिर तू क्यों डरती है? स्त्री ने कहा कि यह एक हाथ का सामान मुझे पकड़ा देगा, सिर की गठरी को पीठ-पर बांध लेगा, तब इसका हाथ खाली हो जाएगा, फिर यह मुझे छेड़ेगा।

यही दशा आजकल हर व्यक्ति की है, हर देश की है। व्यर्थ का डर। यह अकारण का डर विनाश की ओर ले जाता है। हां, किन्तु इस भय से लाभ भी होता है। वर्षा और तूफान का डर ना होता तो ये भवन नहीं बनते। सर्दी-गर्मी का भय ना होता तो यह कपड़े नहीं बनते। भूख का डर ना होता तो खेती-बाड़ी ना होती। किन्तु यह डर बाह्य जगत् में ही नहीं भीतर के उस जगत् में भी है जिसे साधक लोग योग ध्यान अवस्था में देखते हैं। उस ध्यान की अवस्था में कभी-कभी मनुष्य को ऐसे भयावने दृश्य दिखाई देते हैं जिसे देखकर मनुष्य का हृदय दहल जाता है। किन्तु इससे डरना या घबराना नहीं चाहिए। यह सब मन की मैल है। ध्यान के साबुन से इस मन के मैल को धीरे-धीरे धो देना चाहिए और प्रतिदिन प्रार्थना करनी चाहिए कि वह मन का मैल शीघ्र ही दूर हो जाए। इस प्रकार काम, क्रोध, लोभ, भय चार रुकावटों के बाद प्रभुदर्शन में पांचवीं रुकावट है चिन्ता। विचित्र प्रकार की रुकावट है। चिन्ता चिता के समान होती है और चिन्तन से होता है आत्मदर्शन। चिन्ता करने से बनता तो कुछ भी नहीं बिगड़ता सब कुछ है। परन्तु बने या ना बने चिन्ता करने वाले समझते तो नहीं। कभी एक बात की चिन्ता तो कभी दूसरी बात की। अरे भाई, यह संसार है इसमें सुख भी है दुःख भी है। कर्म का फल भोगे बिना यहां से छुटकारा नहीं होता। क्योंकि—

देह धरे का दण्ड है सब काहू को होय।
ज्ञानी भुगते हँसि हँसि मूर्ख भुगते रोय॥

जब भुगतना ही है तो रोना किसलिए? और फिर चिन्ता की बात इस संसार में है क्या? सब से बड़ी बात तो मृत्यु है ना। वह तो है निश्चित। रोते रहिये तो भी हंसते रहिये तो भी—

रोवन हारे भी मरे, मरे जलावन हार।
हा हा करते वे मरे, काहे करूँ पुकार॥

रोने वाले भी नहीं बचे। हाहाकार करने वाले भी नहीं बचे, फिर यह हाय-तोबा किसलिए। कवियों ने इसको इस प्रकार कहा है—

कफन बढ़ा तो किसलिए? नज़र तू क्यों डबडबा गई?
सिगार क्यों सहम गया? बहार क्यों लजा गई?
न जन्म कुछ ना मृत्यु कुछ, बस सिर्फ इतनी बात है।
किसी की आंख खुल गई, किसी को नींद आ गई॥

या उर्दू शायर कहते हैं कि—

इस पथ से डोली आती है, उस पथ से अर्थी जाती है।
आने वाली शरमाती है और जानेवाली पछताती है॥
यह तो चला चली का मेला है भाई।
यहाँ चिन्ता करके मिलेगा क्या?
बोआ सो काटिये, फूला सो कुम्हलाय।
जो बना वो गिर पड़े, जो आया सो जाए॥

जाना तो है ही, चिन्ता कर के जाना या बिना चिन्ता के जाना, जाये बिना तो गुज़ारा नहीं। क्यों—

पानी केरा ज्यूं बुलबुला, अस मानुस की जात।
देखत ही छिप जाएगा, ज्यों तारा परभात॥

नहीं मृत्यु से भी नहीं डरो। चिन्ता से कभी कुछ नहीं होता। भगवान् तो आनन्दस्वरूप हैं। आनन्द की ज्योति फैल रही है वहां। उन्हें मिलना है तो शोक और चिन्ता के इस अन्धेरे को दूर करके मिलना होगा। चिन्ता को त्याग देना स्वयं एक योग है। गीता में कहा है—

सर्वचिन्तापरित्यागो निश्चिन्तो योग उच्यते

अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, मोह, चिन्ता आदि सब रुकावटों को दूर कीजिये तो प्रभु का दर्शन होता है अवश्य। किन्तु यह सारा झगड़ा जहां से आरम्भ होता है वह है "वासना"। वासना ही सब दुःखों की जड़ है, सब रुकावटों की मां। इससे बचने का एक ही उपाय है नर बनो नारी बनो। नर और नारी का अर्थ है। आत्मज्ञान जिसका सारथी है, जिसने मन की लगाम को अपने वश में कर लिया है, वह नर है वह नारी है। उसे ही नारायण का दर्शन होता है, ये नर और नारायण आपस में मिलते हैं अवश्य।

किसी भी वस्तु की अधिकता हो जाए तो वहां भी विनाश होता है। यह अति भी बुरी है। प्रभु को बिल्कुल भूल जाए। और यह अति भी बुरी है कि अपने संसार का कर्तव्य भूलकर हर समय प्रभु को ही स्मरण करता रहे। सुनिये, भगवान् बुद्ध से पूर्व यज्ञ करने की प्रथा बहुत अधिक थी। उसका रूप अति अधिक बिगड़ गया था। इतना अधिक कि यज्ञ में कभी-कभी नर-बलि भी दी जाती थी। बुद्ध जी ने इस बात को देखा तो यज्ञ के विरुद्ध ही प्रचार कर दिया। एक अति तो पहले से ही हो रही थी और दूसरी अति बुद्ध ने कर दी। लोगों ने बुद्ध से पूछा कि— तुम यज्ञ को मानते हो? बुद्ध बोले— नहीं। वेद को मानते हो? बुद्ध बोले— नहीं। तब तीसरा प्रश्न था कि ईश्वर को मानते हो? बुद्ध ने कहा— नहीं। संसार पहले ही एक अन्धकार में था अब दूसरे में जा गिरा। बुद्ध के पश्चात् जगत् गुरु शंकराचार्य आए। उन्होंने एक और अति की। बुद्ध जी ने कहा था ईश्वर नहीं है और शंकराचार्य जी ने कहा कि सब कुछ ईश्वर ही ईश्वर है, इसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं। किन्तु शताब्दियों बाद महर्षि दयानन्द आए। उन्होंने बिना अति के वास्तविकता को संसार के सामने रखा और सत्य का मार्ग अपनाते हुए कहा कि— ईश्वर भी है, आत्मा भी है, प्रकृति भी है। प्रकृति सत् है आत्मा सत्-चित् है और ईश्वर सत् चित् आनन्द है। संस्कृत साहित्य में लिखा है कि—

अतिरूपेण वै सीता अतिगर्वेण रावणः।
अतिदानात् बलिर्बद्धो ह्यति सर्वत्र वर्जयेत्॥

बहुत अधिक रूपवती होने से सीता संकट में फंसी, बहुत अभिमान होने से रावण मारा गया। बहुत दान करने से राजा बलि बांधे गए। अतः अति का त्यागकर देना चाहिए। क्योंकि—

अति का भला ना बोलना, अति की भली न चुप्प।
अति का भला न बरसना, अति की भली ना घुप्प॥

या यूं कहिये कि—

बादल इतना न गरज़ कि वो आ न सकें।
आ जायें तो छम छम के बरस वो जा न सकें॥

किन्तु इन सब रुकावटों को दूर कर ऋग्वेद ७।८६।७ में प्रभुभक्त प्रार्थना करता है कि—

अरंदासो न मीळहुषे कराण्यहं देवाय भूर्णयेऽनागाः।
अचेतयदचितो देवो अर्यो गृत्सं राये कवितरो जुनाति॥

अर्थात् ओ मेरे प्रभो! आनन्द को देने वाले मेरे देवता! मैं पापों को छोड़कर, तेरा दास बनकर तेरे पास आया हूं। मेरे चमकते हुए परमेश्वर कृपा कर। तू दानियों का महादानी है, सब का स्वामी है। जो अन्धेरे में भटकते हैं उन्हें तू प्रकाश देता है। उनके अज्ञान को ज्ञान में बदलकर उनके भक्ति भरे गीत सुनता हुआ उन्हें उस मार्ग पर ले जाता है जिसका लक्ष्य परम आनन्द है। ईश्वर बोलता है, आवाज देता है, स्पष्ट रूप से कहता है कि "ऐसा न कर ईश्वर, प्रतिक्षण प्रेरणा देता है सावधान करता है कि— रुक जाओ, आगे ना बढ़ो, खतरा है। कई लोग कहते हैं हमें तो यह आवाजें नहीं सुनाई देतीं। सुनाई दें कैसे? उनके भीतर यह ध्वनि उत्पन्न ही नहीं होती। क्योंकि जब तक बाहर के कोलाहल को, क्रोध की, काम की, लोभ, मोह, भय, चिन्ता की, आवाज को नहीं रोकोगे तब तक अन्दर बैठे हुए प्रभु की आवाज नहीं सुनाई देगी। यह आवाज सुनना चाहते हो तो उस खिड़की को पहले बन्द करो जो संसार के बाजार की तरफ खुलती है—

समरन सरत लगाइ के, मुख ते कुछ नांही बोल।

बाहर के पट बंदकर भीतर के पट खोल॥

तब आएगी वह आवाज। प्रभु तो यहां बैठे हैं। बाहर जाकर ढूंढ़ने की आवश्यकता नहीं वह तो अन्दर बैठा है। जागो! उसकी आवाज सुनो— **ज्यों तिल मांही तेल है, ज्यों चकमक में आग।**

तेरा प्रभु तुझ में बसे, जाग सके तो जाग॥

जागकर सुनो, सुनाई देगी उसकी आवाज। उसका दर्शन भी होगा तब मांग लेना जो मांगना है। सब कुछ मिलेगा उस दरबार में। ओम् नाम का धन मिलेगा जिसको प्राप्त करने के पश्चात् कुछ मांगने की आवश्यकता ही नहीं रहती। प्रभु-दर्शन में जो सब से बड़ी भयानक रुकावट आती है वह है मोह। जब मनुष्य के मन में मोह जाग उठता है तो वह पतन की ओर निरन्तर बढ़ता ही जाता है यहां तक कि उसका कोई अन्त रहता ही नहीं। इसलिए मोह करो ऐसे जैसे कि तुम्हारे मुंह में जीभ रहती है। "तुलसी जग में यों रह ज्यूं रसना मुख माहिं। खाती है घी तेल नित, फिर भी चिकनी नाहिं।"

सुनिये मोह के विषय में एक कथा सुनाती हूं। एक बार पार्वती-देवी ने भगवान् शिव जी से कहा कि— महाराज, आप यहां कैलास पर्वत पर बैठे हुए योग दृष्टि से सब को देखते हैं। कुछ ऐसा कीजिये कि मैं भी देखने लगूं। भगवान् शिव ने कहा— देवी! संसार में बड़े विचित्र प्रकार के मनुष्य रहते हैं। उन्हें देखकर तेरा मन दुःखी होगा। ना देख तो अच्छा है। पार्वती ज़िद्दी थी। बोली— नहीं, कैलासपते! मुझे तो देखना ही है। शंकर भोले बोले अच्छी बात है— चलो मैंने तुम्हें देखने की शक्ति दी, लो देखो । शिव जी की योग-शक्ति से पार्वती जी ने इस रंग-बिरंगे संसार को देखा। उन्हें अनुभव हुआ जैसे वह सारे संसार के ऊपर उड़ी जाती है। उड़ते-उड़ते वह दिल्ली के चांदनी चौक पर पहुंचीं तो उन्होंने देखा कि एक बूढ़ा व्यक्ति दूकान में बैठा कह रहा है कि— हे शंकर प्रभो, इस जीवन से तो मृत्यु ही अच्छी। पार्वती जी ने जैसे ही अपने शंकर का नाम सुना तो वहीं रुक गईं। और भगवान् शंकर की शक्ति से ज्ञात हुआ कि वह बूढ़ा एक

अवकाश प्राप्त (Retire) आदमी है। उसने मकान भी अपना बनवा लिया है, बाल-बच्चे भी हो गए हैं किन्तु मोह को त्याग नहीं सका और इस दुकान में सेठ के यहां नौकरी कर रहा है। परिश्रम करते-करते थक गया है शरीर से पसीना बह रहा है और काम करते-करते यह बड़-बड़ाता जा रहा है कि भगवान् शंकर, इस जीवन से मृत्यु आ जाये तो सुन्दर। पार्वती जी को उस बूढ़े पर तरस आ गया। कैलास पर्वत पर पहुंचकर अपने शंकर जी से बोलीं— प्रभु, वह आपका भक्त बहुत दुःखी है, उसके कष्ट दूर क्यों नहीं कर देते? भगवान् शिव हंसते हुए बोले— देवी, तू बिल्कुल भोली है। सिर्फ मेरा नाम सुनकर धोखे में आ गई? वह मेरा भक्त नहीं अपनी सन्तान के मोह का भक्त है। पार्वती जी ने कहा कि फिर भी महाराज आप उस पर कृपा कीजिये। शिव जी बोले— कृपा तो तुम ही करो, देवी उसके पास जाओ। यदि वह माने तो उसे स्वर्ग में ले आओ। परन्तु ध्यान रह उसे विवश मत करना। जैसा वह चाहे वैसा ही करना। पार्वती जी बोलीं— अच्छा! अभी जाकर मैं उससे कहती हूं। भला स्वर्ग में आने की बात वह क्यों नहीं मानेगा? शंकर जी ने कहा— अवश्य जाओ किन्तु साधु के वेश में जाना। पार्वती जी ने वृद्ध साधु का वेष धारण किया— श्वेत दाढ़ी, शरीर पर भगवे वस्त्र और हाथ में एक सुन्दर कमण्डल। साधु के वेष में पहुँच गईं।

साधु के रूप से पार्वती बोलीं— बाबा तुम मृत्यु को बुलाते हो, बहुत ही दुःखी प्रतीत होते हो। बूढ़े ने कहा हां, महात्मा जी मैं बहुत दुःखी हूं। साधु ने कहा— आ मेरे साथ, मैं तुझे स्वर्ग ले चलूंगा। बूढ़े ने कहा— स्वर्ग, यह कौन-सी जगह का नाम है और वहां क्या होता है। साधु ने कहा कि सुख ही सुख। ना अधिक गर्मी ना अधिक सर्दी, सदा बहार की ऋतु रहती है। वहां हर समय पवन गीत सुनाती है। फूल मुस्कुराते रहते हैं। चहचहाते हुए पक्षी हैं, रंगों भरा आकाश, नाचती हुई सुन्दर अप्सराएं हैं। खाने को स्वादिष्ठ पदार्थ हैं। सब सुनकर भी वृद्ध पुत्रादि के मोहवश स्वर्ग जाने तैयार नहीं हुआ। फलतः पार्वती जी लौट गईं।

१७. सुखमय जीवन की ओर

प्यारे श्रोतागणो!

गत सप्ताह मैं आप सब को बता रही थी कि आज हर व्यक्ति दिन और रात मेहनत कर रहे हैं, प्रयत्न कर रहे हैं कि संसार में शान्ति स्थापित हो जाए, दुःख और असन्तोष की मात्रा कम हो जाए, उजड़े उखड़े लोग फिर से बस जायें, उपद्रव, सब धर्म जाति के सारे झगड़े मिट जाएँ, मनुष्य की मानसिक कमजोरियों से जो विमान-दुर्घटनाएँ होती हैं वे रुक जाएँ। अनाज की कमी दूर हो जाए, उलझी हुई उलझनें सुलझ जायें, संसार की हाहाकार चीत्कार शान्त हो जाए। परन्तु हमारी सब मेहनत हमारी सारी कोशिशें, हमारे सारे प्रयत्न बेकार होते जा रहे हैं, सफलता की बजाय हमें असफलता ही मिल रही है। क्यों? क्योंकि हमने सारे सुख-शान्ति के स्रोत प्रभु को ही भुला दिया है।

आज हम संसार में शान्ति स्थापित करने के लिए एक दूसरे से झगड़ रहे हैं। गरीब कहता है कि मैं पहले अमीर हो जाऊँ। अमीर कहता है मैं और भी अमीर हो जाऊँ। बस! इसी सफलता के झगड़े में दोनों वर्ग अपना सब कुछ दांव पर लगा रहे हैं। पर क्या उन्हें सफलता मिल रही है? बिल्कुल नहीं। वे सब तो अपनी ही पैदा की हुई उलझनों में उलझकर रह गए हैं। उसका कारण यह है कि उन दोनों की दृष्टि तो केवल प्रकृति की भौतिकता की ओर है। आत्मा की ओर तो उनका ध्यान ही नहीं है। केवल प्रकृति और माया का पुजारी तो संसार को सुखी नहीं कर सकता। आज देश विदेश में जितने भी बड़े-बड़े आन्दोलन और क्रान्तियाँ हो रही हैं उनका ध्यान तो केवल शरीर की ओर ही है आत्मा की ओर नहीं। यही कारण है कि इतने पुरुषार्थ और परिश्रम के बाद भी संसार की नैया दुःख के दावानल में जल रही है। इसी तथ्य को उपनिषद् में बार-बार दोहराया गया है।

बृहदारण्यक उपनिषद् में ऋषि याज्ञवल्क्य अपनी ऋषिका पत्नी गार्गी को उपदेश देते हुए कहते हैं कि गार्गी! सुनो; जो व्यक्ति इस

अविनाशी परब्रह्म परमात्मा को जाने बिना इस लोक में होम करता है वह केवल कष्ट सहन करता है। चाहे वह सहस्त्रों वर्षों तक ऐसा ही करता रहे, किन्तु उसका अन्त दुःख से परिपूर्ण है। किन्तु जो इस अक्षर आत्मा को जाने बिना इस दुनिया से चल देता है वह कृपण अर्थात् दया का पात्र है और जो इस अक्षर आत्मा को जानकर इस दुनिया से चलता है वह सच्चा ब्राह्मण विद्वान् है। शुक्ल यजुर्वेद की काण्वशाखा की इसी उपनिषद् में उपदेश दिया है कि जो व्यक्ति अपनी स्वयम् की आत्मा को अपना असली लोक समझकर उसकी उपासना करता है उसका कर्म, पुण्य, पुरुषार्थ, तप, यज्ञ, परोपकार, राजनीति अथवा धार्मिक कार्य कभी नष्ट नहीं होता क्योंकि वह इसी आध्यात्मिक आत्मा से जो जो चाहता है वह रच लेता है।

इसके विपरीत जो व्यक्ति अविद्या और मोह जाल में फंसा है और केवल अनात्मक वस्तुओं के पीछे भाग रहा है उनका भ्रमजाल इतना गहरा और अन्धकारमय है कि उसमें सारे सुविचार, सुपथ उलझ कर रह गए हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि हम सफलता तो चाहते हैं किन्तु सफलता की कुञ्जी की ओर ध्यान नहीं देते। हम शान्ति तो चाहते हैं किन्तु शान्ति के आधार प्रभु को हम ने भुला दिया है। यही कारण है कि इतने अथक परिश्रम और पुरुषार्थ के बावजूद हम अपनी जीवन की मंजिल से कोसों दूर हैं, ऐसा कहना चाहिये कि केवल दूर ही नहीं अपितु अपने मार्ग से भी हम कट गए हैं। शान्ति के नाम पर आज हम विनाशकारी भयंकर विस्फोटक शस्त्र तैयार कर रहे हैं। इतना ही नहीं आप की सब से आधुनिक शस्त्र बनाने की कम्पनी तो दिन रात ऐसे बम बनाने का प्रयत्न कर रही है जिससे कम से कम समय में अधिक से अधिक प्राणियों की मृत्यु हो सके। जब विनाश का ऐसा नग्न ताण्डव नर्तन हो रहा हो तो इस संसार में अशान्ति दुःख, कष्ट और क्लेश की विषैली बेल बढ़ती ही जायेगी। भगवान् कृष्ण ने गीता में कहा है कि—

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम्॥

इसका अर्थ है कि जिसकी बुद्धि प्रभु से युक्त नहीं है, ऐसे अयुक्त पुरुष के मन में स्थिरता नहीं होगी और जिसका मन अशान्त है उसे सुख कहाँ? यह तत्त्व रहस्य है सफलता और शान्ति का। इस रहस्य को जाने बिना समाज-सेवा, देश-सेवा, राष्ट्र-सेवा परिवार-सेवा कोई भी काम कर लीजिए, आपको कभी सिद्धि सफलता प्राप्त नहीं होगी। मेरे स्वयम् के अनुभव पर आधारित अटल विश्वास है कि आत्म-दर्शन तथा प्रभु-दर्शन के सिवा शान्ति का कोई मार्ग ही नहीं है।

आत्म दर्शन का महत्त्व बताते हुए महर्षि दयानन्द जी ने 'सत्यार्थ-प्रकाश' के छठे समुल्लास में लिखा है कि राज्य के सब सभासद् और सभापति अपनी इन्द्रियों को अपने वश में रख कर सदा धर्म का आचरण करें और अधर्म से बचते रहें। इसके लिए रात दिन नियत समय पर योगाभ्यास और इन्द्रियनिग्रह भी करते रहें। इन्द्रिय अर्थात् ये जो मन प्राण और शरीर रूपी प्रजा है इसको जीते बिना बाहर की प्रजा को अपने वश में रखने में कभी समर्थ नहीं हो सकता।

महर्षि दयानन्द जी ने स्पष्ट शब्दों में राजनीति में भाग लेने वालों को आत्मादर्श, योगाभ्यासी और जितेन्द्रिय होने का आदेश दिया है। यदि सब राज्य कर्मचारी आत्मदर्शी और प्रभुदर्शी हो जाएँ तो वास्तव में फिर से संसार में राम-राज्य स्थापित हो सकेगा। महाभारत के शान्ति-पर्व में उनतीसवें में 'राम-राज्य का वर्णन इस प्रकार है'-

विधवा यस्य विषये नाऽनाथः कश्चित् नाभवत्।
सदैवासीत्पितृसमो रामे राज्यं यदन्वशात्॥

अर्थात् श्री रामचन्द्र जी के राज्य में कोई स्त्री विधवा नहीं थी, कोई अनाथ न था। समय पर वर्षा होती थी। उनके राज्य में कभी अकाल नहीं पड़ा। किसी की पानी में डूबकर या आग में भस्म होकर मृत्यु नहीं होती थी और ना ही कोई रोग फैलता था।

इसका मूल कारण यही था कि भगवान् राम के राज्य में ब्रह्मध्यानी, योगाभ्यासी, आत्मदर्शी अधिकारी राज्य का प्रबन्ध करते थे। ऐसे ही राज्य का वर्णन छान्दोग्य उपनिषद् में केकय प्रदेश के राजा अश्वपति का वर्णन आता है, जिससे ब्राह्मण और ऋषि लोग परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करने के लिए आते थे। वह ब्रह्मज्ञाता आत्मदर्शी राजा अश्वपति उपनिषद् में घोषणा करता है—

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः।
नाऽनाहिताग्निर्नाविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः॥

मेरे देश में कोई चोर नहीं, कोई कंजूस नहीं । कोई शराबी नहीं, ऐसा कोई घर नहीं जिसमें अग्न्याधान (हवन) न होता हो, विद्या से कोई हीन नहीं, कोई व्यभिचारी पुरुष नहीं तो व्यभिचारिणी स्त्री कहाँ।

श्रोताओ! आज का सत्संग यहीं समाप्त होता है।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

१८. धर्म की शिक्षा

प्यारे श्रोतागण!

गत सोमवार को मैं आपको ब्रह्मज्ञाता आत्मदर्शी राजा अश्वपति एवम् भगवान् राजा राम के राज्य के बारे में बता रही थी कि उन दोनों ही राजाओं का राज्य इतना सुन्दर इतना सुव्यवस्थित, इतना अनुशासन वाला, इतना सुचारु था कि उनके राज्य में कोई भी घर ऐसा नहीं था जहाँ प्रतिदिन हवन-यज्ञ न होता हो। इस अच्छे राम-राज्य का कारण यही था कि उस राज्य के सभी कर्मचारी ब्रह्मज्ञानी, आत्मदर्शी एवम् योगाभ्यासी शासक थे। और आज जब कि पूरे संसार में अशान्ति, दुःख, बीमारी, कष्ट, क्लेश, लड़ाई-झगड़े, द्वेष, वैमनस्य, लूट खसोट, हिंसा, मानसिक तनाव, एक दूसरे की आत्मा को घायल करने की तैयारी हो रही है तो ऐसी स्थिति में हम सब और विशेषतः वह सब भी जो अपने आपको धर्म के ठेकेदार समझते हैं, स्वयम् नहीं जानते कि उन्हें क्या करना है। इधर उधर भटकने की बजाय क्यों नहीं सिद्धि, सफलता, धर्म और आध्यात्म का मार्ग अपनाने का प्रयत्न करते हैं?

यह धर्म की शिक्षा केवल कुछ गिने चुने लोगों के लिए नहीं है अपितु सब के लिए है। आप चाहे जहाँ पर जैसे भी जो भी कार्य करते हों, चाहे आप डाक्टर हों, वकील हों, डायरेक्टर हों या सभापति हों, सम्पादक हों या लेखक, प्रवचनकर्ता हों या समाज सुधारक, नेता हों या साधारण प्रजा, जमींदार हों या किसान, गरीब हों या अमीर, सैनिक हों या साधारण गृहस्थ, कलाकार हों या चित्रकार, चाहे आप कहीं भी हों किसी भी अवस्था में हों, बालक हों, युवक हों, वृद्ध हों, सभी स्त्री-पुरुषों के लिए आज के जीवन संग्राम में विजयी होने का अपनी जीवन-यात्रा के संघर्ष में सफलता प्राप्त करने का यही एक स्थायी और सच्चा मार्ग है कि आप ब्रह्मज्ञानी बनें। विशेषतः आज जब कि सफल होने के सभी शस्त्र असफल होते जा रहे हैं किन्तु एक

शस्त्र ऐसा अभी बचा है हमारे पास जिसका निशाना कभी चूकता नहीं, जिसका सन्धान कभी टूटता नहीं, वह है ब्रह्म-अस्त्र। यह एक ऐसा अस्त्र है जो शास्त्रों के शब्दों से बना है। इस ब्रह्मास्त्र को अपनाने के लिए स्वयम् में हमें सर्वप्रथम ब्रह्म पैदा करना होगा। यही शस्त्र भगवान् कृष्ण ने गीता में अर्जुन को देते हुए कहा था कि— 'प्रणवः धनुः शरो हि आत्मा ब्रह्म तद् लक्ष्यम् उच्यते।' किन्तु ब्रह्मज्ञानी आत्मदर्शी बनने के लिए हमें सर्वप्रथम भक्ति के मार्ग पर चलना आवश्यक है। जब हम भक्ति के मार्ग पर अपना पहला कदम रखें तो हमें ध्यान रहे कि हमारी मंजिल प्रभु-दर्शन हो। तब देखिये आप सब के जीवन में सफलता, सुख और शान्ति ही शान्ति है। संसार में यही एक मार्ग है जो सारे कष्ट और क्लेशों को काटकर, सुख और समृद्धि देने वाला है। लोक और परलोक दोनों को सुधारने वाला है। आज सारा विश्व जो अन्धकार के गहरे गड्ढे में गिरता जा रहा है उसका कारण यही है कि हम में आस्तिकता मरती जा रही है। इस विनाश के अन्धकार से बचने का यही मार्ग है कि अपने हाथों में हम आत्म-दर्शन एवम् प्रभु-ज्योति की मशाल थाम लें। इसी प्रकाश-ज्योति का वर्णन ऋग्वेद में आता है—

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।
दिवीव चक्षुराततम्॥

मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि जब आप सब के जीवनों में अन्धकार ही अन्धकार छा रहा हो, दुःखों के बादल उमड़ रहे हों तो आप अपनी आत्मा में ज्ञान की तीली लगाकर हृदय में ब्रह्म की ज्योति जलाइये। उस ज्योति के जलते ही उसके प्रकाश में आप स्वयम् ही सफलता सुख और शान्ति की राह के दर्शन करेंगे। तब आप स्वयम् ही सामवेद के इस मन्त्र का उच्चारण करेंगे कि—

ओ३म् अग्न ओजिष्ठमाभर द्युम्नास्मभ्यमध्रिगो प्र नो राये पनीयसे।
रत्सि वाजाय पन्थाम्॥

हे मार्ग दिखाने वाले प्रकाश स्वरूप प्रभो! आप हमें, अतिबल, ओज, तेज और ज्ञानमय विचारधारा का धन दो और इसका मार्ग भी हमें दिखलाओ।

तो श्रोतागण यही संकल्प और दृढ़ संकल्प कीजिए कि शिव की ज्योति आपके जीवन में प्रज्वलित हो जाए। यदि आपका संकल्प दृढ़ है और आपकी शक्ति अजेय है, अजेय का अर्थ है जिसको कोई नहीं जीत सकता, और यदि आपका संकल्प दृढ़ के साथ सत्य और शिव भी है तो हाथ जोड़े सफलता आपके चरण चूमती है। तब आपका संकल्प और उसके अनुसार किये गये शिव-कर्म आपको संसार का स्वामी बना देते हैं। प्रश्न उपनिषद् में पिप्पलाद ऋषि का भी यही कथन है कि— **'यत् चित्तस्तेनैष प्राणमायाति प्राणस्तेजसायुक्तः सहात्मना यथा सङ्कल्पितं लोकं नयति।'** इस मन्त्र का अर्थ है कि यह आत्मा जिस संकल्प वाला होता है, उस दृढ़ संकल्प के साथ हमारे मुख्य प्राण में स्थिर हो जाता है। वह मुख्य प्राण तेज से युक्त होकर मन इन्द्रियों से युक्त जीवात्मा को उसके संकल्पों के अनुसार भिन्न-भिन्न लोकों अथवा योनियों में ले जाता है।

भगवान् कृष्ण ने भी गीता में यही आदेश दिया कि अन्त समय में आत्मा का जैसा संकल्प होता है, उसका मन जिस भाव का चिन्तन करता है वह वैसे ही संसार को प्राप्त कर लेता है। इसलिए संकल्प, विचार और भावना ये तीन शब्द हैं जिनसे जीवन का महल खड़ा होता है। जैसे आपके मन में विचार और भावनाएँ है आपका जीवन वातावरण वैसे ही बनता चला जाएगा। यह वातावरण आपके जीवन को आपके परिवार को आपके समाज और देश को और फिर राष्ट्र और संसार को विशेष सांचों में ढाल देता है, किन्तु यदि हम एक नज़र डालें सोचें कि ये सब है आख़िर क्या? कुछ संकल्प कुछ विकल्प। संकल्प और विकल्प के अनुसार आप प्रभावित होते हैं। आपके सम्बन्धी और मित्र प्रभावित होते हैं। यदि आपके संकल्प में पवित्रता, आशा, उल्लास, प्रेम, प्रसन्नता और उत्साह एवम् आत्मविश्वास की भावनाएँ हैं तो आपको

अपने चारों तरफ यही सब कुछ दिखाई देगा। किन्तु यदि आपके संकल्प में नीचता, निराशा, घृणा, चिन्ता, राग, वैमनस्य, शत्रुता, और निस्सार की भावनाएँ हैं तो लाख प्रयत्न करने पर भी आप इन्हीं भावनाओं से घिरे रहेंगे। यह संकल्प-भावना केवल प्रभुदर्शन के लिए ही आवश्यक नहीं है अपितु किसी भी शुभ काम में सफलता प्राप्त करने के लिए भी यह आवश्यक है कि आपका संकल्प दृढ़ सत्य और शिव हो। क्योंकि जिसका मन रोगी नहीं उसका तन भी कभी रोगी नहीं होता और जिसका मन हंसता है उसके होठ कभी नहीं रोते। तन बड़ा दीखता है किन्तु नन बहुत बलवान् है। अस्वस्थ तन में स्वस्थ मन तो रह सकता है किन्तु अस्वस्थ मन तन को भी स्वस्थ नहीं रहने देता। इसीलिए छान्दोग्य उपनिषद् भी स्पष्ट लिखता है कि दृढ़ संकल्प वाला पुरुष 116 वर्षों तक जीता है। इसमें कोई गूढ़ रहस्य नहीं, साधारण सी बात है कि आप सब अपने आपको यज्ञ रूप बनाने का दृढ़ संकल्प करें और यज्ञरूप बन जाएँ। पुरुष यज्ञ ही तो है **"पुरुषो वाव यज्ञः"** अपने आपको यज्ञ रूप समझकर व्यक्ति संकल्प करे कि जब तक जीवन का यज्ञ पूर्ण नहीं हो जाता, तब तक मैं रोगी नहीं होऊँगा। दुःखी नहीं होऊँगा। ऐसे दृढ़ संकल्प वाले पुरुष के समीप रोग और दुःख तो क्या मृत्यु भी नहीं आती। यह कहानी नहीं सत्यता है। यदि आप सब प्रयत्न करें कि आज अभी इसी क्षण में अपने संकल्पों में सुधार करना प्रारम्भ कर दें तो आपको सफलता, सुख और शान्ति का मार्ग दिखने लगेगा। देखना कहीं देरी हो गई तो फिर सफलता का शुभ प्रभात आप देख नहीं पायेंगे।

कल करे जो आज कर आज करना जो अब।
पल में परलय होवेगी बहुरि करेगा कब॥

ओ३म शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

१९. सत्यम् शिवम् सुन्दरम्

प्यारे श्रोतागण,

गत सोमवार को मैं आप सब को बता रही थी कि 'तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु' अर्थात् हे मेरे मन तू शिव तथा दृढ़ संकल्पों वाला हो। मन में जो भी विचार उठें वह केवल दूसरों के हित के लिए समाज के कल्याण के लिए उठें क्योंकि मन-मन्दिर की पवित्रता ही हमें सत्यम् शिवम् सुन्दरम् की राह की ओर ले जाती है। जब मानव मनुर्भव का सन्देश अपने हृदय तथा आत्मा में धारण कर सच्चा मानव बनने का प्रयत्न करता है तो उसे स्वयमेव ही सत्य का मार्ग दीखने लगता है और वह सत्यमेव जयते को अपना आदर्श मानकर सत्य की ओर बढ़ता है और वही सत्य उसे शिव की ओर अर्थात् कल्याण के मार्ग पर ले जाता है और फिर तो बनते-बनते बात इस तरह बन जाती है कि सत्यम् शिवम् को जान लेने के बाद सुन्दरम् अर्थात् सुन्दरता का तेज सूर्य उसकी आत्मा में चमकने लगता है और वह तेज इतना पवित्र, इतना प्रभावशाली, इतना कल्याणमय होता है कि देखने वाले कहते हैं कि आहा कितने सौभाग्य की बात है कि इसका जीवन सूर्य उदय हो रहा है। प्यारे श्रोतागण मैं परम पिता प्रभु से भी यही प्रार्थना करती हूँ कि आप सब के जीवन में सत्यम् शिवम् सुन्दरम् का सूर्य उगता रहे जो परिवार, समाज तथा देश के कल्याण के लिए हितकारी सिद्ध हों।

मैं आप सब को यह सब बातें पहले भी बता चुकी हूँ कि मन एक मन्दिर है। यह मन मनुष्य को इसलिए नहीं सौंपा गया कि इसमें भय, चिन्ता, निराशा, ईर्ष्या, द्वेष और नीचता के विचारों का कूड़ा करकट हम इसमें जमा करते रहें। मन का मन्दिर तो सदैव पवित्र रहना चाहिये। इस मन मन्दिर को हमें प्रसन्नता, आशा, निर्भयता, प्रेम, उत्साह और ऊँचे उल्लास भरे पुष्पों से सजाना चाहिये। अपवित्र विचारों तथा पतित करने वाले दूषित संकल्पों से सुरक्षित करने का यही एक साधन है

कि इस मन रूपी मन्दिर को प्रेम, प्रभुभक्ति, परोपकार तथा उत्साह पूर्ण संकल्पों से सदा सुरक्षित और परिपूर्ण रखा जाए। तब हम स्वयम् में ही गुनगुना उठेंगे कि—

इस मन्दिर में दीया नहीं बाती निर्मल तेज जले।

अब एक सवाल जो आप सब के हृदय में मेरे प्रवचन के बाद अवश्य ही उठेगा। यह बात मैं अपने अनुभव से कह रही हूँ क्योंकि यही प्रश्न कभी ना कभी मेरी स्वयम् की जिन्दगी में भी उठा था कि मन में सत्य, शिव और दृढ़ संकल्प कैसे पैदा किया जाए? आप कहेंगे कि मन तो चाहता है कि विचार अच्छे हों, चिन्ता निकट ना आएं परन्तु जीवन की परिस्थितियां ही ऐसी हैं कि बेचारा मानव बेबस होकर चिन्ता के सागर में डूब जाता है। और फिर चिल्लाता है त्राहि माम्। हे प्रभु मेरी नैय्या पार लगा देना। बात गलत नहीं पूर्णतः सत्य है।

किन्तु हमें यह कदापि नहीं भूलना चाहिये कि इस नश्वर संसार की प्रकृति का सब से पहला नियम है बदलना। मानव के जीवन में हर तरह का मौसम आता है। गर्मी भी, सर्दी भी, वसन्त भी, पतझड़ भी, झुलसा जला देने वाली बड़ी धूप भी, मूसलाधार बाढ़ लाने वाली बरसात भी। इतनी शीघ्रता से बदलाव आता है कि हमें बदलाव की स्थिति का अहसास भी नहीं हो पाता और हम बदल जाते हैं, हमारे दिन बदल जाते हैं, हमारा समय बदल जाता है, हमारी जीवन राह बदल जाती है और हम खड़े-खड़े स्तब्ध अवाक्, मौन, आंखें फाड़े? जीवन-लीला के अन्त का गुबार ही देखते रह जाते हैं। कबीरदास जी भी बहुत दुःखी होकर अपने जीवन की सत्यता को जान लेने के बाद ही लिखते हैं कि 'सब दिन होत ना एक समान।' श्रोतागणो मेरे कहने का मतलब यही है कि समय परिवर्तनशील है। संस्कृत में कहते हैं कि "चक्रवत् परिवर्तन्ते सुखानि च दुःखानि च।" मनुष्य के जीवन में सुख और दुःख पहिये के चक्र के समान घूमते और बदलते रहते हैं।

भगवान् राम से बढ़कर तो कोई आदर्श पुरुष नहीं है हमारे सामने। जिनको हम भगवान् कह कर पुकारते हैं, क्या उन पर कठिन दिन

नहीं आए? राजा राम को सारा राजपाट छोड़कर, सुख सुविधाओं को त्याग कर चौदह वर्षों तक वन-वन भटकना पड़ा। महलों को छोड़कर घास और पत्तों से बनी कुटिया में रहना पड़ा था। नवविवाहिता सीता जी को भी सारे सोलह शृंगार तजकर साध्वी के रूप में रहना पड़ा था। ऐसे एक नहीं कई बड़े-बड़े धर्मात्माओं को जब विपत्तियाँ झेलनी पड़ीं तो हम क्या हैं? केवल साधारण मनुष्य हैं। कहने का मतलब यही है कि कष्ट क्लेश के दिन तो आते ही हैं।

धीर पुरुष और आर्य वीरांगना नारी वह है जो विपत्ति और कष्ट के दिनों को धैर्य के साथ काट दे। अधीर ना हो, दुखी ना हो। घबराए नहीं। ऐसे धैर्य धारण करने वाले नर-नारी के लिए कष्ट कष्ट नहीं रहता। उस समय अपने दृढ़ शिव संकल्पों की शक्ति से वह सहन-शक्ति पैदा कर सकता है या कर लेता है। हमारे धर्मशास्त्रों ने भी हमारा जीवन इसी प्रकार व्यतीत करने का आदेश दिया है।

कष्ट को भी हम हंसकर झेलें कि कष्ट हमें कष्ट ना लगे। उपनिषदों का तो संदेश भी है कि रोगी होकर भी अपने आपको रोगी ना समझो। यही समझो की आप तप तप रहे हैं। याद रखो कि सुवर्ण सोना आग में जलकर ही पवित्र होता है और अधिक चमकता है। बृहदारण्यक उपनिषद् में लिखा है कि— **एतद् द्वै परमं तपो यद् व्याहिस्यस्ये।** अर्थात् यह परम तप है जो रोगी होता हुआ तपता है। इसी को कहते हैं हर हाल में खुश रहना। इसी को स्वामी रामतीर्थ जी ने कहा था कि मनुष्य को हर हाल में मस्त रहना चाहिये।

जब उपनिषद् यह सन्देश देता है कि मनुष्य को अपना जीवन यज्ञ-रूप बना लेना चाहिये। यज्ञ शब्द में उपसदा और दीक्षा के शब्दों का वर्णन आता है। इसका मतलब है कि यदि भक्त मनुष्य खाता पीता और खुशियां मनाता है तो समझना चाहिये कि वह यज्ञ की उपसदा का भाग पूर्ण कर रहा है और इसके विपरीत यदि भक्त भूखा प्यासा रहता है, कष्ट सहन करता है, खुशियों से दूर चला गया है तो वह यज्ञ की दीक्षा पूर्ण कर रहा है। प्रयोजन यह है कि भक्त किसी भी

अवस्था में अपने मन को निर्बल ना होने दे। यही द्वन्द्व सहन शक्ति बढ़ाता है।

गर्मी-सर्दी, सुख-दुख, नर्मी-सख्ती, हर अवस्था में एक रस रहना, समान रूप से व्यवहार करना ही दृढ़ संकल्प बनने की पहली सीढ़ी है। मनुष्य विपत्तियों में घिरा हुआ भी निराश न हो। इस जीवन-यात्रा में कितनी ही बार पांव फिसल भी जाते हैं चोटें भी लगती हैं, परन्तु साहसी यात्री का यही कर्तव्य है कि फिसल कर भी फिर संभले। इसी वीरता का वर्णन करते हुए उर्दू कवि ने लिखा कि- "गिरते हैं शह सवार ही मैदाने जंग में"। अर्थात् जो वीर हैं वही, गिरते हैं क्योंकि उनको गिरकर फिर और ऊपर उठने की तमन्ना होती है। चोट खाकर, गिरकर फिर उठे और अपनी मंजिल की ओर चल पड़े, लक्ष्य की ओर बढ़ने लगे। हिन्दी के कवि दिनकर ने कहा है— "प्रतिपल गिरें प्रतिपल उठें जीवन प्रगति का नाम है।"

संकल्प और दृढ़ संकल्प तथा शिव सुन्दर संकल्प वाला बनकर ही मनुष्य अपनी जीवन-यात्रा का उद्देश्य पूर्ण कर सकता है। जब अपने स्वयम् के स्व लौकिक व्यवहारों में संकल्पों का इतना प्रभाव होता है तो आप अन्दाजा लगाइये कि दृढ़ शिव संकल्प कितने अद्भुत व अलौकिक फल पैदा कर सकते हैं। प्रभुदर्शन के लिए जब मन में उत्कट इच्छा उत्पन्न हो जाए तो फिर इस संसार में रहते हुए भी मनुष्य को ये सारे संसारी आडम्बर और आकर्षण फीके दिखने लगते हैं और केवल एक प्यारा प्रभु ही प्रियतम प्रतीत होने लगता है। तब स्वयमेव भक्त उपनिषद् के शब्दों को पुकार कर कह उठता है कि—

तदेतत् प्रेयः पुत्रात् प्रेयो वित्तात् प्रेयोऽन्यस्मात्।
सर्वस्मादनन्तरं यदयमात्मा। -बृहदारण्यक

अर्थात् यह आत्मा प्रभु पुत्र से भी अधिक प्यारा है। यह धन से भी अधिक प्यारा है। यह आत्मा प्रभु दुनिया की प्रत्येक वस्तु से अधिक प्यारा है। यह सारी दुनिया की वस्तुओं से सब से अधिक मेरे तन मन के समीप है, यह है आत्मा।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

२०. दृढ़ संकल्प से प्रभु दर्शन

प्यारे श्रोतागणो!

गत सोमवार को मैं आप सब को यह बता रही थी कि जब प्रभु-दर्शन की इच्छा मन में उत्पन्न हो जाए तो फिर संसार में रहते हुए भी ये सारे संसारी आडम्बर और आकर्षण फीके दीखने लगते हैं और एक प्यारा प्रभु ही सब से अधिक निकटतम प्रियतम दिखने लगता है। तब भक्त उपनिषद् के शब्दों में पुकार उठता है कि वह प्रभु पुत्र से भी अधिक प्यारा है, वह प्रभु धन से भी अधिक प्यारा है क्योंकि वह हृदय और आत्मा के सब से अधिक निकटतम है। यह तो उपनिषदों ने अपनी आत्मा के प्यार मोहब्बत की बात कही, किन्तु परमात्मा तो इससे कहीं अधिक महान् और प्यारा है। वेद भगवान् की वाणी में अटल विश्वासी भक्त ऋग्वेद (१।४।५) के शब्दों में कह उठता है—

ओ३म् उत ब्रुवन्तु नो निदो निरन्यतश्चिदारत। दधाना इन्द्र इद् दुवः॥

अर्थात् चाहे हमारी बुराई करने वाले निन्दक हमें कहें कि तुम तो केवल इन्द्र परमात्मा की ही पूजा करते हो, तुम इस स्थान से और दूसरे स्थान से भी चले जाओ। और चाहे भक्तजन हमें सौभाग्यशाली बतलाएँ। पर हे अद्भुत इन्द्र प्रभो हम तेरी ही शरण में पड़े रहेंगे। ऐसा दृढ़ संकल्प वाला बनने के लिए पूर्ण आस्तिकता की भावना मन में जागृत करनी चाहिये। श्रद्धा और विश्वास की ज्योति हृदय मन तथा आत्मा में प्रज्वलित करनी चाहिये। ऐसा प्रयत्न करते समय कितनी ही घटनाएँ आपके सामने ऐसी आएँगी जो आपकी श्रद्धा, विश्वास और आस्तिकता को कुचल डालें, परन्तु उस समय सावधान रहें और अपना शुभ सत्य दृढ़ संकल्प ना छोड़ें बल्कि उस समय अपने दृढ़ संकल्प को और अधिक दृढ़ बनायें। ऐसे दृढ़ संकल्प वालों को अन्त में सदा ही सफलता प्राप्त होती है।

भक्त प्रह्लाद पर क्या कम आपत्तियाँ आई थीं? परन्तु भक्त ने अपना

दृढ़ सत्य संकल्प नहीं छोड़ा और अन्त में प्रभु-दर्शन पा लिये। भक्त ध्रुव के दृढ़ संकल्प ने ही उसे कठिन घोर तप के लिए प्रेरित किया और उसने दृढ़ संकल्प ले लिया। चाहे जो हो जाए किन्तु जब तक मैं अपने प्यारे प्रभु सच्चे पिता की गोद में न बैठूंगा तब तक मैं यह तप न छोडूंगा और अन्त में उसे सफलता मिली और वह प्रभु की गोद में जा बैठा।

वह भी एक दृढ़ संकल्प ही था जिसने महर्षि दयानन्द जी को माता पिता का लाड़-प्यार और घर के सुख आनन्द को छोड़ने पर विवश कर दिया। बचपन में ही, बालक दयानन्द सच्चे शिव के दर्शन पाने के लिए बेचैन हो उठे, व्याकुल हो उठे। नर्मदा नदी के तट पर निवास करने वाले योगियों और हिमालय पर्वत की गुफाओं में रहने वाले तपस्वियों के पास दयानन्द जी पहुँचे और जब तक स्वामी जी ने अनन्त शिव के दर्शन नहीं पा लिये तब तक उन्हें चैन नहीं आया। यह सच्चा शिव दृढ़ संकल्प ही है जो भक्त साधक को भयंकर से भयंकर परिस्थितियों में भी अटल खड़ा रखता है। प्रेम, श्रद्धा और भक्ति की मूर्ति मीराबाई को भी उसके दृढ़ संकल्प ने ही लोकलाज से ऊपर कर दिया और अन्त में उस भक्ति की मूर्ति मीराबाई को विष भी अमृत समान लगने लगा।

प्यारे श्रोतागणो! आज मैं आपको एक छोटी सी दृढ़ संकल्प की कथा सुनाती हूँ। पाकिस्तान के बहावलपुर शहर में एक रामभक्त छिनकु था। वह रामभक्त छिनकु बहुत ही मीठे स्वभाव वाला था और अपनी रोज़ी रोटी चलाने के लिए शुद्ध घी की छोटी सी दुकान चलाता था। वहाँ की रियासत के नवाब तक को यह विश्वास था कि अगर कहीं से शुद्ध घी मिल सकता है तो केवल भक्त छिनकू की दुकान से। भक्त छिनकू दिन भर भगवान् राम की आराधना में लगा रहता और शाम को दो तीन घण्टे दुक़ान खोलकर रोटी कमा लेता था। कितने ही उसके मुसलमान मित्र भी उसकी दुकान पर आते थे। किन्तु एक दिन एक मुसलमान ने उसे प्रातः आकर कहा कि दुकान खोलो मुझे

घी दो शुद्ध। भक्त छिनकू ने उत्तर दिया कि यह समय दुकान खोलने का नहीं किन्तु राम भजन का है। मुसलमान को क्रोध आया उसने भगवान् राम को गाली निकाल दी। इस पर भक्त छिनकू ने कहा कि ऐसे ही तुम्हारे खुदा और पीर को कोई कह दे तो? इस पर उस मुसलमान का क्रोध और भड़का उसने भक्त छिनकू को और गालियां निकालीं तब भक्त छिनकू ने भी जैसे को तैसा ही उत्तर दिया।

बस बढ़ते-बढ़ते बात बढ़ गई। मुसलमान ने हाकिम के पास रिपोर्ट कर दी। भक्त छिनकू को पुलिस पकड़ कर ले गई। यह समाचार मिलते ही वहां के रियासत नवाब तक भी पहुँचा। नवाब ने छिनकू को कहा कि कचहरी में तू झूठ बोल देना और कह देना कि मैंने पीर को गालियां नहीं निकालीं तो तुम्हें छोड़ दिया जाएगा। किन्तु जब कचहरी में भक्त छिनकू का बयान लिया गया तो भक्त छिनकू ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि मैंने गाली दी है। बस उसी समय जज ने फैसला सुना दिया कि इसे सड़क पर खड़ा कर पत्थर मार मार कर मार दिया जाए। अब छिनकू मैदान में बंधा खड़ा है जो भी उधर से गुजरता है भक्त पर पत्थर फैंकता है। पत्थर की चोट लगते ही भक्त छिनकू पुकार उठता है राम राम! पत्थरों की चोट से सारा शरीर घायल कर दिया गया। जगह-जगह से लहू बह रहा है किन्तु हर पत्थर की चोट पर छिनकू के मुख से आह की जगह निकल रहा है राम केवल राम।

उसी समय भक्त छिनकू का एक मुसलमान मित्र आया और उसे कहने लगा कि भक्त छिनकू तुम्हारी यह दशा देखी नहीं जाती। तुम मुझे आज्ञा दो कि तलवार के एक ही वार से तुम्हें समाप्त कर दूं। भक्त ने उत्तर दिया नहीं मेरे प्यारे मुसलमान मित्र मुझे राज्य की आज्ञा है मैं ऐसे ही मरूँ। और सुनो मुझे तो कोई पीड़ा हो नहीं रही है, पीड़ा तो केवल शरीर को है जिसने आज भी और कल भी नाश होना है। इसीलिए तुम चिन्ता मत करो। किन्तु उस मुसलमान मित्र के लिए यह अत्याचार अधिक देर तक सहना कठिन हो गया। तब वह कहीं से एक तलवार ले आया और उसने भक्त छिनकू का सिर काट दिया।

सिर कटकर भूमि पर गिरा तो कितनी ही देर तक छटपटाता रहा और छटपटाते सिर में होठ ऐसे हिल रहे। जैसे थे कह रहे हों राम राम। ऐसा पवित्र सुन्दर भक्ति भरा दृश्य तो दृढ़ संकल्प वाले ही देख सकते हैं। ऐसे दृढ़ संकल्प वालों के लिए कहा है कि प्राण जायें पर धरम ना जाए।

ऐसी ही एक दृढ़ संकल्प की सच्ची दूसरी कथा आप को सुनाती हूँ। हैदराबाद भारत के दक्षिण का एक शहर है। हैदराबाद शहर की जेल में जब एक नवयुवक को वैदिक धर्म की जय का नाम लेने से पुलिस ने रोका तो वह वीर नवयुवक और जोर से कहने लगा— वैदिक धर्म की जय और बार बार कहता ही रहा। ऐसा करने पर पुलिस ने उसे खम्भे के साथ बांध दिया और उस पर कोड़े बरसाने शुरू कर दिये। किन्तु आश्चर्य की बात है कि जब पहला कोड़ा उस नवयुवक के शरीर पर पड़ा तो उस वीर ने और ऊँचे स्वर में कहा— वैदिक धर्म की जय। जितने ही तेज कोड़े उस वीर नवयुवक के शरीर पर पड़ते उतने ही ऊँचे स्वरों में वह चिल्लाता— वैदिक धर्म की जय। इस प्रकार वैदिक धर्म की जय की गूंज सारी जेल में सुनाई देने लगी। जब तक वह वीर अपने होश में था तब तक उसके मुख से यही ध्वनि आ रही थी कि वैदिक धर्म की जय। जब कोड़ों की मार से वह वीर बेहोश हो गया तब भी उसकी जिह्वा वैदिक धर्म की जय का जाप कर रही थी। इस प्रकार दृढ़ संकल्प और श्रद्धा के सामने ये संसारी पीड़ाएँ कोई शक्ति नहीं रखतीं। जो एक कार्य करने या किसी उद्देश्य को पूर्ण करने का दृढ़ निश्चय कर चुका है और उस पर कटिबद्ध हो गया है तो उसको न अग्नि जला सकती है, न समुद्र डुबो सकता है, न भूकम्प गिरा सकता है और न ही कोई कष्ट उसे रोक सकता है। वह वीर दृढ़ संकल्पी तो सब को पार करता हुआ आगे निकल जाता है—

मार सहे अन्धेर की, अटकें कष्ट अनेक।
धर्मवीर की अन्त में, पर न टरेगी टेक॥

यह सन्देश उन सब आर्यसमाजी व्यक्तियों के लिए भी है जो आर्यसमाजी होने का दावा तो करते हैं किन्तु छोटी सांसारिक पीड़ाओं से घबराते भी हैं तो वह जान लें कि आर्य होने की सब से पहली निशानी यही है कि मनुर्भव आर्य वीर-पुरुष बनना।

इस प्रकार श्रोतागण जब प्रभु-प्रेम का पात्र बनने के लिए दृढ़ संकल्प कर इस मार्ग पर हम चल पड़ेंगे तो निश्चय समझ लीजिये कि प्रभु-दर्शन की पक्की नींव पर आप अचल खड़े हो गए हैं। तब प्रभु-दर्शन के राह की कोई बाधा आपके सामने खड़ी नहीं होगी। यदि आपका संकल्प दृढ़ है तो उन पर भी आप विजय प्राप्त कर लेंगे। निश्चय रखें कि आप सब में बहुत बड़ी शक्ति छिपी हुई है। आप स्वयं ही उस शक्ति का प्रयोग कर अपने आपको पूर्ण अधिकारी बना सकेंगे। अपने संकल्प को निर्बल न होने दें। अपने आपको छोटा न समझें। भगवान् कृष्ण के इस आदेश को सदा सामने रखें कि—

उद्धरेत् आत्मनाऽत्मानम् न आत्मानमवसादयेत्।
आत्मैव हि आत्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥

इसका अर्थ है कि- अपने द्वारा ही अपना उद्धार करे। अपने को गिराओ नहीं। आप स्वयम् अपने ही मित्र हैं और स्वयम् ही अपने वैरी हैं।

२१. प्रभु-दर्शन के उपाय

ओ३म् उत्तिष्ठ प्रेहि प्र द्रवौकः कृणुष्व सलिले सधस्थे।
तत्र त्वम् पितृभिः संविदानः सं सोमेन मदस्व सं स्वधाभिः ॥

(अथर्ववेद ८।३।१)

प्यारे श्रोतागणो

पिछले तीन सप्ताह से मेरे प्रवचन का विषय था प्रभु-दर्शन की तैयारी हमें किस प्रकार करनी चाहिये। हम ने प्रभु-दर्शन की नींव सत्य शिव और दृढ़ संकल्प से रख दी। किन्तु प्रश्न है कि केवल नींव रख देने से ही तो कार्य सिद्ध नहीं हो जाता। अभी हमें इस प्रभु-दर्शन की नींव को अपने जीवन में व्यवहार रूप में लाना होगा। हमें अपना जीवन इस प्रकार बनाना होगा कि वास्तव में हम प्रभु के दर्शन कर सकें। पिछले सप्ताह कई सज्जनों ने फोन द्वारा पूछा है और कहा है कि मन तथा हृदय में बड़ी प्रबल इच्छा है प्रभु-दर्शन की। और यह इच्छा लेकर अटल निश्चय और दृढ़ संकल्प से बैठते हैं कि मन को एकाग्र करके भगवान् के दर्शन कर पायेंगे, परन्तु कुछ भी पल्ले नहीं पड़ता, एक निराशा सी मन में जागने लगती है और आसन से उठ खड़े होते हैं। ऐसे भक्तों से मेरा सविनय निवेदन है कि मन की एकाग्रता केवल एक स्थान पर बैठके आँखें बन्द करके ध्यान लगाने का प्रयत्न करने से ही प्राप्त नहीं हो सकती। इस मंजिल को प्राप्त करने के लिए हमें कितनी ही दूसरी मंजिलें भी तय करनी पड़ती हैं।

दृढ़ संकल्प की नींव रखने के पश्चात् मनुष्य को पहले अपना जीवन भी मनुष्य का जीवन बनाना पड़ता है। इसका मतलब है कि हमें अपने मानव जीवन में मनुष्यत्व पैदा करना और अपने अन्दर में पशुत्व समाप्त करना होगा। प्रभु की इस अद्भुत सृष्टि में लाखों योनियां

हैं। पशु-पक्षी जलचर, भूचर, नभचर, कीट पतंग इत्यादि। इस सारे संसार में प्रभु-दर्शन का अधिकार तो केवल मनुष्य को ही दिया गया है। अब यदि मनुष्य मानव का चोला पहन करके भी पशु या अमानव ही बना रहे तो प्रभु-दर्शन कभी नहीं हो सकेंगे। इसलिए प्रभु-दर्शन के लिए सर्वप्रथम मनुष्य को मनुष्य ही बनना होगा और मनुष्य भी आर्य मनुष्य को ही कहा गया है। महाभारत के उद्योग पर्व के 38वें अध्याय में आर्य-मनुष्य की परिभाषा इस प्रकार दी गई है—

न वैरम् उद्दीपयति प्रशान्तं न दर्पम् आरोहति नास्तमेति।
न दुर्गतोऽस्मीति करोति अकार्यं तमार्यशीलं परमाहु आर्याः॥
न स्वे सुखे वै कुरुते प्रहर्षं नान्यस्य दुःखे भवति प्रहृष्टः।
दत्त्वा न पश्चात् कुरुतेऽनुतापं स कथ्यते सत्पुरुषार्यशीलः॥

इन दो श्लोकों का अर्थ है कि जो मनुष्य शान्त हुए वैर को नहीं चमकाता, घमण्ड में कभी नहीं आता, तेज से हीन नहीं होता। विपत्ति झेलता हुआ भी बुरे कार्य नहीं करता उसको और जो अपने सुख ऐश्वर्य में फूलकर कुप्पा नहीं हो जाता, दूसरों के दुःख से दुःखी होता है प्रसन्न नहीं, जो दान करके बाद में पछताता नहीं, वही मानव केवल सत्पुरुष आर्यशील कहलाता है। यही सारे गुण यदि मनुष्य में हों तो वह मनुष्य कहलाने का अधिकारी हो सकता है। वेद भगवान् ने मनुष्य को मनुष्य बनाने के लिए भिन्न-भिन्न नियमों का आदेश दिया है। उस में सब से पहला नियम है कि प्रातःकाल में ऊषाकाल से पहले ब्राह्ममुहूर्त में उठो। मनुष्य को चाहिये कि सूर्य तथा ऊषाकाल से भी पहले निद्रा त्याग कर उठ जाना चाहिये। क्योंकि वेद भगवान् के अनुसार ऊषा उस ज्योति का नाम है जो सूर्य उदय होने से पूर्व फैलती है। अथर्ववेद (१०।७।३१)में मानव के लिए यह आदेश है कि—

नाम नाम्ना जोहवीति पुरा सूर्यात् पुरोषसः। यदजः प्रथमं संबभूव।

इस मन्त्र का अर्थ है कि— सूर्य उदय से पहले और ऊषा से

पहले नाम को नाम से अर्थात् उस ईश्वर को बार-बार पुकारो जो अनन्त अजन्मा और पहले से ही प्रकट है। इसलिए मनुष्य को चाहिये कि वह ऊषा काल से पूर्व ही उठे और परमात्मा को जिस नाम से भी स्मरण करना चाहे करे। ऊषा देवी की महिमा वेदों में गाई गई है। ऋग्वेद कहता है कि रानी ऊषा मनुष्य समुदाय के लिए चिकित्सा करती हुई काले आकाश से उठ खड़ी हुई है। ऋग्वेद (१।१२३।४) का मन्त्र कहता है—

ओ३म् गृहंगृहमह्ना यात्यच्छा दिवे दिवे अधि नाम दधाना।
सिषासन्ती द्योतना शश्वदागादग्रमग्रमिद् भजते वसूनाम्॥

इस मन्त्र का अर्थ है कि— ऊषा रानी दिन पर दिन सवाया रूप धरती हुई घर की ओर जाती है। यह कुछ बांट देना चाहती हुई चमकती हुई सदा आती है और अपने कोषों में से ख़जाने लुटाती हुई आगे-आगे अपनी चमक बांटती ही जाती है। इसीलिए ऐसी सौन्दर्य ऐश्वर्य पवित्रता वत्सलता की मूर्ति उषा देवी का स्वागत करने के लिए ऊषा के आने से पूर्व ही उठ जाओ। यदि ऊषा आ गई और आप निद्रा में ही पड़े रहे तो आप ऊषा के दान से वंचित रह जाओगे। जागो। जागो और भगवान् के ख़जाने से कुछ ज्ञान का प्रसाद ले लो। जिसने यह प्रसाद पा लिया है वह दूसरों को कहता है कि—

हर रात के पिछले पहर में इक दौलत लुटती रहती है।
जो जागता है सो पाता है, जो सोता है सो खोता है॥

भक्त कबीर भी इस ऊषा देवी के लिए कितनी मस्ती से गाता है कि—

जागु री बौरी, अब का सोचे।
रैन गई दिन काहे को होवे, जिन जागा तिन मानिक पाया।
तैं बौरी सब सोय गंवाया।
कह कबीर सोई धन जागै, शब्द बान उर अन्तर लागे॥

उठो जागो, नींद से आंखें खोलो तन्द्रा छोड़ो और अपनी आंखों

से स्वयम् देखो और निहारो कि— प्रातःकाल होने से पूर्व ही ऊषा देवी चहक रही है सब के लिए स्वास्थ्य सौन्दर्य, सफलता, आस्तिकता, सुख, सम्पन्नता, ऐश्वर्य की दौलत लुटा रही है, और तुम अभागे सो रहे हो? यह तो परमात्मा के दर्शन के लिए ब्राह्ममुहूर्त की अमृतवेला है। तीन घड़ी रात रहते शय्या को छोड़ दो और अपनी पलकें खोलो। निहारो तो तुम्हारा प्रियतम कितना सुन्दर रूप धारण करके इस बहाने तुम्हें देखने आया है। भक्तजनो उठो और गाओ, अपने प्रीतम प्रभु के गीत गाओ। प्रार्थना करो, स्तुति करो, वन्दना करो, अर्चना करो और हाथ फैलाकर कहो कि हे मेरे प्रिय राम प्रभो लाओ आज की इस वेला में मुझे मनुष्य बनाने के लिए क्या लाए हो? तो श्रोतागण यही वेद रामायण, महाभारत, पुराण, कुरान संसार के धर्म ग्रन्थों का सन्देश है कि जीवन में सर्वप्रथम आलस्य का त्याग कर रात के तीसरे प्रहर उठकर अपने तन और मन दोनों ही आंखों से देखो प्रकृति के अद्भुत दृश्य परमात्मा का दानी बनकर सब को दान बांटना और याचक का दान ग्रहण करना।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

२२. मन का प्रभाव

गत मंगलवार को मैंने आपसे यह कहा था कि इस मन को वश में रखना चाहिए और यह मन क्या है और कैसा इसे बनाना चाहिए यजुर्वेद के मन्त्रों में सुनिये—

ओ३म् यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥

अर्थात् यह मन, जो जागता हुआ और सोता हुआ बहुत दूर-दूर तक जाता है, और यह मन इस शरीर की इन्द्रियों में इस भांति चमकता है जैसे आकाश में सूर्य चमकता है। यही मन जिससे कर्मयोगी और मुनि लोग, ज्ञानयोगी और यज्ञशील कितने ही शुभ कर्म करते हैं और यह ही मन है जो सब इन्द्रियों को चलाता है। इसलिए हे अन्तर्यामी प्रभो, हम पर ऐसी कृपा कर कि यह हमारा मन कल्याण भरे संकल्प वाला हो।

यह मन जो ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद के मन्त्रों के बीच इन्हें स्मरण करके इस प्रकार बैठ जाता है। जैसे अरे लगे रथ के पहिये हों, जिसमें सभी लोगों और सभी वस्तुओं का ज्ञान इस प्रकार पिरोया जाता है जैसे माला में मोती पिरोए जाते हैं। इसलिए उपनिषद् में कहा है— "क्रतुमयः पुरुषः" मनुष्य स्वयम् अपने विचारों से बना हुआ है। जैसे आपके मन में विचार होंगे वैसा ही आपका संसार भी बन जाएगा। यह बात सुनने में विचित्र लगती है किन्तु है सत्य। जो विचार आपके मन में उत्पन्न हुआ वह केवल आप पर ही नहीं सारे संसार पर प्रभाव डालता है। यह मत समझिये कि केवल वाणी से निकला हुआ शब्द ही दूसरों पर प्रभाव डालता है। सात दरवाजों में आप अपने शरीर को बन्द करके बैठिये किन्तु मन से एक विचार निकालिये, यह विचार आगे बढ़ेगा और तब सात बन्द दरवाजे भी इस विचार को बाहर जाने से नहीं रोक सकते हैं। यह बात आज का मनोविज्ञान परीक्षण

द्वारा सिद्ध कर चुका है कि मन से निकला हुआ विचार दूर बैठे हुए व्यक्ति के विचारों को भी बदल सकता है। जिसे विज्ञान की भाषा में हम 'टेलीपैथी' कहते हैं। प्रत्येक व्यक्ति के शरीर में एक Receiver है जो विचार लेता है और एक Transmeter है जो विचारों को बाहर भेजता है। यहां से सूचनाएं आती-जाती हैं। कैसे? सुनिये—

एक बूढ़ी स्त्री एक भारी गठरी अपने सर पर लिये जाती थी। उसे दूर दूसरे गांव में जाना था। चलते-चलते थक गई थी। तभी उसने देखा एक नौजवान घोड़े पर बैठा उसी ओर जा रहा था जहां उसे जाना था। बुढ़िया ने उसे आवाज़ दी— अरे ओ बच्चा ओ घोड़े वाले एक बात सुन। घुड़सवार बुढ़िया की बात सुनने के लिए रुक गया। और बोला— क्या बात है माँ? बुढ़िया ने उत्तर दिया कि— "बेटा, मुझे सामने गांव में जाना है और मैं बहुत थक भी गई हूं। यह गठरी बहुत भारी है मुझसे उठाई नहीं जाती। यदि यह गठरी तू अपने घोड़े पर रख ले तो मुझे चलने में आसानी हो जाएगी। युवक बोला— माँ, तू है पैदल और मैं हूं घोड़े पर। गांव काफी दूर है पता नहीं तू वहां कब पहुंचेगी और मैं तो वहां पर पांच मिनट में ही पहुंच जाऊँगा, तब क्या मैं तेरी प्रतीक्षा करता रहूंगा? यह कहकर वह युवक आगे की ओर बढ़ गया।

जब वह थोड़ी दूर पहुंचा तो उसके मन में एक विचार आया और उसने सोचा कि तू भी बड़ा मूर्ख है। वह बूढ़ी स्त्री तुझे गठरी देती थी और स्वयं शीघ्र चल नहीं सकती थी। अरे, गठरी में कोई मूल्यवान् वस्तु भी तो हो सकती है, चल वापस और गठरी ले ले, भाग जा फिर तुझे पूछने वाला है ही कौन? अब सुनिये, एक व्यक्ति का विचार दूसरे के मन पर कैसे प्रभाव डालता है। घुड़सवार वापस आया और बुढ़िया से प्यार से बोला— अच्छा माँ, ला दे दे अपनी गठरी, ले चलता हूं। दूसरे गांव में पहुंचकर तेरी प्रतीक्षा करता रहूंगा। बुढ़िया ने कहा— ना बच्चा, अब तू जा। अब मुझे गठरी नहीं देनी है। घुड़सवार बोला— अभी तू तो कह रही थी कि गठरी ले चल

और अब जब मैं तेरी गठरी लेकर चलने को तैयार हूँ तो तू कहती है कि नहीं। यह उल्टी बात तुझे किसने समझाई। वह बुढ़िया मुस्कुराकर बोली— बेटा, बच्चा, पुत्र, यह बात मुझे उसी ने समझाई है जिसने तुझे यह बात समझाई है माँ की गठरी ले चल। जो तेरे भीतर बैठा है वह मेरे भीतर भी बैठा है। जिसने तुझे कहा कि गठरी ले ले और भाग जा उसी ने मुझे कहा और समझाया, इसे गठरी मत देना यह लेकर भाग जाएगा।

इस प्रकार एक मन का विचार दूसरे के मन पर प्रभाव डालता है। अतः भूलकर भी मन में खोटा विचार न आने दे। किसी भी समय गिरने की, हारने की, पीछे हटने की बात मत सोचो। सदैव विजय की, ऊपर उठने की और आगे बढ़ने की बात सोचो। क्योंकि—

मन के हारे हार है और मन के जीते जीत।
पारब्रह्म को पाइये मनके के प्रतीत॥

किन्तु यह मन बन्दर की भांति अतिचंचल होता है। परन्तु बन्दर बेचारे की चंचलता वृक्ष पर, शाखाओं पर, मकान पर, दीवारों तक ही सीमित रहती है। परन्तु यह मन रूपी महाराज तो अभी यहां Radio Saranga के कार्यालय में बैठे हैं तो क्षण में Valkon Bos Kade पहुंच जाते हैं। फिर पलक झपकते ही पहुंच गए भारत, लन्दन, न्यूयार्क, मास्को, शंघाई, रंगून चन्द्रलोक, सूर्यलोक आदि। हे भगवान्, एक ही क्षण में कहां से कहां। इस मन की चंचलता की क्या तुलना? परन्तु अच्छा मान लीजिये यह मन बन्दर की भांति चंचल है। और अब इस उछलते-कूदते बन्दर को यदि आप शराब पिला दें तब तो इसकी चंचलता और बढ़ जाएगी। और इसी शराबी बन्दर को यदि बिच्छू काट ले तब यह शराबी बन्दर तड़प उठेगा और बेचैन हो उठेगा। एक तो बेचारा बन्दर दूसरे, शराब पी ली तब काट लिया बिच्छू ने और यदि इस दशा में इस चंचल बन्दर के सिर पर कोई भूत सवार हो जाए तो फिर? भगवान् ही रक्षा करे। अब यह जो अवस्था बन्दर की हुई है यही अवस्था तो हम अपने मन की भी करते हैं। एक तो वह पहले से ही बहुत

चंचल है। और उस पर हम अपने मन को आशा और तृष्णा रूपी शराब पिला देते हैं। इतना अधिक चाहने लगते हैं और उस चाहने से इतनी प्यास जाग उठती है जिसका अन्त नहीं। सहस्त्र जन्मों में भी अन्त नहीं। इसलिए कबीरदास जी ने कहा—

मैं मुई न मन मुआ, मर मर गए शरीर।
आशा तृष्णा न मिटे, कह गए दास कबीर॥

इस चंचल मन को जब आपने आशा-तृष्णा रूपी शराब पिला दी फिर इस मन को काट लिया ईर्ष्या और द्वेष के बिच्छू ने। बस तब क्या है? किसी की उन्नति देख मन महाराज जले जा रहे हैं, अपने चारों ओर ईर्ष्या और द्वेष की अग्नि प्रज्वलित कर उसमें भुने जा रहे हैं। एक सज्जन व्यक्ति अपनी योग्यता द्वारा जज बन गए तो जलने वालों ने कहना प्रारम्भ किया यह तो हमेशा सरकार का ही पक्ष लेते हैं। बेचारे बिना अग्नि के ही जलते रहते हैं और तभी जलने वालों के सिर पर सवार हो गया अहंकार का भूत। मैं ये हूं, मैं वो हूं आदि। मुझ से कोई ऐसी बात करे तो मैं उसकी हड्डियां ना पीस दूंगा। पीसते रहे भाई। दूसरे की हड्डियां पिसें न पिसें अपने आत्मा को तो तूने मन की चंचलता से पीस लिया है अवश्य। नहीं, मन को वश में करने की विधि यह नहीं। इसे वश में करना है तो पहले अपना आहार शुद्ध करो।

आहार मन की शुद्धि का पहला साधन है। जैसा आहार वैसा विचार, जैसा अन्न वैसा मन। आहार शुद्ध हो तो बुद्धि स्वयम् शुद्ध होती है। बुद्धि शुद्ध हो तो स्मृति ठीक रहती है। स्मृति ठीक हो जाए तो हृदय की सब ग्रन्थियां खुल जाती हैं। मन वश में आने लगता है। मन के सारे सन्देह दूर हो जाते हैं। ब्रह्मलोक की प्राप्ति हो जाती है। क्योंकि यह मन ही हृदयरूपी गुफा में छिपा बैठा था, वहीं से इन्द्रियों के साथ छेड़छाड़ कर रहा था। परन्तु आजकल आहार की जो दशा है उसे देखकर तो कहना चाहिए कि आधारभूत बात का ही हम ने सत्यानाश करके रख दिया है। ऐतरेय उपनिषद् में एक कहानी है—

भगवान् जब सारी सृष्टि बना चुके तब सारे पशु, जानवर और मनुष्य मिलकर भगवान् के पास गए तो मनुष्य ने आगे बढ़कर कहा— महाराज! आपने हमारी रचना तो कर दी, परन्तु अब हम खाएं क्या और कितनी बार खाएं? ईश्वर ने उत्तर दिया कि दिन में चौबीस घण्टे होते हैं तो तुम दो बार खाओ। मनुष्य ने सुना और पीछे हट गया। पशुओं ने सुना तो बहुत घबराए। आगे बढ़कर बोले महाराज— चौबीस घण्टे में केवल दो बार। हम तो भूखे मर जाएंगे। भगवान् ने हंसते हुए कहा— घबराओ नहीं, चौबीस घण्टे में दो बार खाने की बात केवल मनुष्यों के लिए है। तुम तो पशु हो चाहे जितनी बार खाओ, दिन में खाओ, रात में खाओ, तुम्हारे लिए कोई नियम नहीं। यह थी भगवान् की आज्ञा।

परन्तु आज के मानव ने सोचा यह पशु तो मुझ से छोटा है और खाता है अधिक। तब उसने अपने खाने का भोजन का कार्यक्रम Menu अलग बनाया। वह भूल गया कि जीने के लिए, केवल शरीर रक्षा के लिए खाना है। शरीर की रक्षा के लिए अच्छा खाना और अच्छा पीना अति आवश्यक है। परन्तु तनिक ठहरिये और ध्यान से सुनिये। आजकल पीने का अर्थ तो कुछ और ही हो गया है। जो व्यक्ति शुद्ध पानी पीता है, दूध पीता है, शुद्ध फलों का रस पीता है तो उस व्यक्ति के सम्बन्ध में आजकल के लोग कहते हैं कि वह "नहीं पीता।" और जो न पीने योग्य वस्तुओं को पीता है उसके लिए कहते हैं कि वह पीता है, पियक्कड़ है। आजकल पीने का अर्थ तो केवल नशा चढ़ाना हो गया है। अच्छी बात है नशा भी चढ़ाना चाहते हो तो चढ़ाओ। परन्तु ऐसा नशा चढ़ाओ कि एक बार चढ़कर कभी उतरे नहीं। जो नशा बार-बार चढ़े और बार-बार उतर जाए वह नशा तो नहीं केवल नशे का धोखा है।

> **शराब चढ़कर उतरने वाली, पिलाई तो क्या पिलाई, साकी।**
> **जो चढ़कर इक बार फिर न उतरे, वो मय पिलाओ तो हम भी जानें।**

ऐसी शराब पियो अवश्य। भगवान् के भक्त बेचते हैं वह शराब, बिना मूल्य के मिलती है। इस शराब का नाम है 'प्रभु का नाम'। यजुर्वेद ने कहा है। "**सुरा त्वमसि शुष्मिणी**" अर्थात् प्रभो! तेरा नाम बलकारी, शक्तियुक्त तीव्र शराब है। गुरु नानक जी ने भी यही कहा—

भंग भसूटी सुरापान, उतर जाए प्रभात।
नाम खुमारी नानका, चढ़ी रहे दिन रात॥

हो सके तो यह शराब खूब पिओ। एक बार इसका नशा हो जाए तो फिर कोई कष्ट नहीं रहता, क्लेश नहीं रहता। अन्धकार में भी प्रकाश जाग उठता है। अग्नि की ज्वालाओं में ठंडक आ जाती है। कांटों में भी फूल खिल उठते हैं—

डूबब जरव न बात कछु तैं जे लागी लाग।
जहाँ प्रीत कांयी नहीं, क्या पानी क्या आग॥

यही नशा भक्त प्रह्लाद ने किया था। पिता ने कहा— प्रह्लाद, मैं तेरा पिता हूँ मेरी पूजा कर, ईश्वर की पूजा न कर। प्रह्लाद ने हाथ जोड़कर कहा— आप पिता हैं, शरीर आपने दिया है, चाहें तो इसे ले सकते हैं किन्तु ईश्वर की पूजा को मैं नहीं छोड़ सकता। पिता ने क्रोध से कहा— तुझे हाथी के पैरों तले रौंद दिया जाएगा, पहाड़ की चोटी से गिराकर चकनाचूर कर दिया जाएगा, समुद्र के मंझधार में छोड़ दिया जाएगा, अग्नि की ज्वालाओं में जलाकर राख कर दिया जाएगा। प्रह्लाद ने मुस्कुराकर नम्रता से उत्तर दिया— पिताश्री, आप जो चाहे कीजिये। प्रत्येक स्थान पर मेरा भगवान् मेरे साथ है। अग्नि में, सागर में, जल में, पर्वत पर, प्रत्येक स्थान पर उसका प्यार मेरे साथ है और उस प्यार से भभकती, जलती चिता हो या खौलता समुद्र, सब मां की गोद की भांति सुखदायी हो जाते हैं। यह है इस नशे का प्रभाव।

इतिहास के पन्ने पलटकर देखिये। जिस किसी ने यह नशा किया वह अभय हो गया। राजा हो या प्रजा, धनी हो या निर्धन, निर्बल हो या सबल, कोई भी उसे भय देने वाला नहीं रहा। यह वो नशा है जिसे कोई भी तुरशी उतार नहीं सकती। इसलिए जब बच्चा जन्म लेता है

तो पिता सर्वप्रथम उसे नहला-धुलाकर सोने की सलाई को शहद में भिगोकर उसकी जिह्वा पर लिखता है "ओ३म्"। और तब उसके कान में कहता है "वेदोऽसि" तू वेद है। आप सोचेंगे कि यह क्या संस्कार हुआ। बच्चा 'ओ३म्' और वेद को क्या समझता है? परन्तु स्मरण रखिये, उस समय जो कुछ भी आप उसे कहते हैं उसका प्रभाव उसके मन पर पड़ता है। पिता अपने पुत्र को कहता है कि बच्चे, यह संसार भयानक जंगल है। इसमें अनेक व्याधियां और पाप हैं। इस संसार रूपी वन में तुझे आगे बढ़ना है। इसलिए तुझे एक साथी देता हूं। यह साथी है ओ३म्। देख, जीवन की इस यात्रा में मधु की भांति मीठा बोलना, अपने को पवित्र बनाना। मूल्यवान् बनाना जिससे कि तुझे सोने की तरह संभालकर रखें। संसार में दूसरे साथी भी मिलेंगे। सारे रिश्तेदार, भाई-बन्धु, मित्र आदि। किन्तु यह सब कुछ देर के साथी हैं रूठ जाते हैं चले जाते हैं। इसलिए ओ नन्हीं सी जान। मैं तुझे ऐसा साथी देता हूं किसी भी समय और किसी भी अवस्था में तुझ से अलग नहीं होगा। जीवन में, मृत्यु में, सृष्टि में, प्रलय में, प्रतिवर्ष, प्रतिदिन, चौबीस घण्टे, प्रति मिनट, प्रति सेकण्ड तेरे साथ ही रहेगा। इसलिए कठोपनिषद् में कहा है—

एतदालम्बनं श्रेष्ठं एतदालम्बनं परम्।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा, ब्रह्मलोके महीयते॥

यह "ओ३म्" ही सब से परम आश्रय है। इस सहारे को पहचान कर, इसे धारण करके केवल इस संसार में ही नहीं ब्रह्मलोक में भी महिमा को प्राप्त होता है—

किस संग कीजे मित्रता, सब जग चालन हार।
निश्चय केवल है प्रभु, उस संग करो प्यार॥

इसीलिए उसे भूलना नहीं "**अश्मा भव, परशुर्भव। हिरण्यमस्तृतं भव।**' पत्थर बन, कुल्हाड़ा बन, सोने की भांति चमक। आप कहेंगे कि यह क्या आशीर्वाद हुआ। बच्चे के उत्पन्न होने पर प्रसन्नता मनाई जा रही है, बाजे बज रहे हैं और पिता बच्चे को कहता है "तू पत्थर

हो जा" परन्तु इस संसार में कभी-कभी पत्थर भी बनना पड़ता है। पिता बच्चे को कहता है— ओ मेरे छोटे से प्राण। यह संसार एक सुनसान जंगल है। यहां कितने ही पशु और कई पशु समान मनुष्य हैं, इसलिए अपने आपको शक्तिशाली बना। पत्थर की वो चट्टान बन जिसे आंधियाँ, तूफान, बवंडर, बाढ़ कोई तुझे ना हिला सके। पत्थर के साथ कुल्हाड़ा भी बन। जब कोई अत्याचारी तेरे धर्म पर, तेरी स्वन्त्रता पर आक्रमण करे तो उसका सर काट। वो कुल्हाड़ा बन, जिससे अन्याय और अत्याचार से पाप और अनाचार से अपने धर्म, जाति, समाज, परिवार की रक्षा कर सके। वह कुल्हाड़ा बन जिससे तेरी विद्यमानता में किसी दीन पर अन्याय न हो, किसी निर्दोष का जीवन न छीना जाए, किसी देवी का सतीत्व भंग ना किया जाए। जब यह पत्थर और कुल्हाड़े वाली बातें हो जाएं तो फिर सोने की भांति चमक। फिर तेरी इस चमक को रोकने वाली कोई शक्ति नहीं।

ओ३म् केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे। समुषद्भिरजायथाः॥

— ऋ० १।१६।१३

हे मनुष्यो तुम ज्ञान-रहित को ज्ञान देते हुए, रूप-रहित को रूप देते हुए ऊषा काल के साथ उत्पन्न हुए हो।

यज्ञोपवीत के तीन धागे तीन ऋणों के प्रतीक हैं। ये हैं— ऋषि-ऋण, देव-ऋण, और पितृ-ऋण। ऋषि-ऋण विद्या दान और ज्ञान के प्रसार-प्रचार से उतारा जाता है। यज्ञ से देव-ऋण उतारा जाता है। और माता-पिता की सेवा से पितृ-ऋण। इस मन्त्र में ऋषि-ऋण या ब्रह्म-ऋण उतारने का संकेत है। वेदाध्ययन करके मनुष्य का कर्तव्य है कि अज्ञानियों को ज्ञान दे और अविद्वानों को विद्वान् बनाये। मन्त्र में कहा गया है कि जिस प्रकार प्रभात, ऊषा अन्धकार को हटाती है, सौन्दर्य का विस्तार करती और सृष्टि में चेतनता का संचार करती है, उसी प्रकार, प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह अज्ञानरूपी अन्धकार को हटाये, सौन्दर्य की वृद्धि करे और सर्वत्र चेतनता का संचार करे।

जिस प्रकार यज्ञोपवीत के तीन धागे तीन ऋणों के प्रतीक हैं। उसी

प्रकार इस संसार में तीन वस्तुएं भी अति दुर्लभ हैं। बड़ी कठिनता से प्राप्त होती हैं। वह हैं— 1. मानव जीवन 2. मुमुक्षुत्व और तीसरा साधु सन्त, महात्मा और विद्वानों की संगति।

1. बहुत पुण्य कर्मों के संचय के बाद यह मानव शरीर मिलता है। मनुष्य चाहे तो मानवता द्वारा ज्ञान, कर्म और उपासना के अमोघ शस्त्रों से सारे बन्धन काटकर परम आनन्द को प्राप्त कर सकता है।

और दूसरा है मुमुक्षुत्व। ये मुमुक्षुत्व है क्या? वह यह है कि अपने प्यारे प्रियतम के वियोग में, विरह में, जैसे एक सच्चा प्रेमी विकल हो जाता है, बेचैन हो जाता है, इसी प्रकार मानव को परमात्मा से मिलने के लिए तड़प पैदा करनी होगी, शरीर के सुख-आराम के सारे साधन जुटाते हुए भी उस प्यारे की खोज में लगे रहना होगा जिससे बिछुड़कर मानव दुःखी हो रहा है। विरह का अर्थ है अपने प्रियतम के प्रेम पर मर मिटने की लगन। इसी लगन में इतना मगन हो कि अपनी सुधि भी न रहे। और सुधी हो तो अवस्था यह हो कि—

विरह अग्नि तन में तपे, अंग सभी अकुलाय।
घर सूना जिव पीव महँ, मौत ढूंढ फिरि जाय॥

प्रेमी का विरह मार्ग तो इसी प्रकार का होता है। विरही हानि-लाभ, सुख-दुःख, लोक-निन्दा या लोक-स्तुति से ऊपर हो जाता है। उसके सिर पर एक ही धुन सवार होती है कि किसी प्रकार प्रियतम से मिलाप हो, और जब तक मिलाप न हो तब तक विरह का रूप यही होगा—

उर में दाह, प्रवाह दृग, रह रह निकले आह।
मर मिटने की चाह हो यही विरह की राह॥

मुमुक्षु प्रेमी या विरही चलते-फिरते, जागते सोते हर समय एक ही बात सामने रखता है कि मैं कोई पग ऐसा न उठाऊं जो मुझे मेरे प्यारे प्रभु से दूर कर दे। अपितु ऐसा पग उठाऊँ कि प्रतिदिन प्रभु के निकट ही होता चला जाऊं। माया के जिस कीचड़ में फंस गया हूं इससे छूट जाऊं। मुमुक्षु का अर्थ ही है कि छूट जाना, मुक्त हो जाना।

बहुत से लोग तो ईश्वर की कृपा को माया के माप-तोल ही से मापते हैं। जैसे कि कोई सौन्दर्य की प्रतिमा हो, धनी, शक्तिमान् हो या जिसकी यश कीर्ति की पतंग आकाश की ऊंचाइयों को छू रही हो तो कहते हैं इस पर प्रभु की कृपा है। किन्तु इन सब बातों के होते हुए भी यदि मानसिक शान्ति नहीं है तो समझो कि उस पर प्रभु कृपा नहीं है। यह सब तो सम्पत्ति, माया और वैभव के खिलौने हैं जो जीवन की कठिन यात्रा में मानव-मन बहलाने के लिए दिये जाते हैं। इसके लिए हिन्दी कवि ने ठीक ही कहा है कि —

तमन्नाओं में उलझाया गया हूं।
खिलौने देके बहलाया गया हूं।
ये खिलौने इसलिए हैं कि गम्भीर लम्बी।
जीवन-यात्रा में कुछ मनोरंजन का साधन बन सकें।

तीसरी वस्तु जो प्रभु-कृपा से प्राप्त होती है वह है सत्-संगति। संगति से मनुष्य बनता भी है और बिगड़ता भी है। जिस प्रकार की संगति होगी वैसे ही विचार मिलेंगे और फिर मनुष्य बनेगा भी वैसा ही—

कदली, सीप, भुजंग मुख स्वाति एक गुण तीन।
जैसी संगति बैठिये, तैसो ही फल दीन॥

स्वाति नक्षत्र में वर्षा के जल की एक बूंद यदि कदली अर्थात् केले में चली जाए तो वह कपूर (Kampher) बन जाती है। वह जल की बूंद यदि समुद्र के सीप में चली जाए तो वह बहुमूल्य मोती कहलाती है। और यदि वही जल की बूंद यदि भुजंग अर्थात् सर्प के मुख में चली जाए तो विष बन जाती है। जल तो एक ही है किन्तु भिन्न-भिन्न संगति से गुण-कर्म और स्वभाव में कितना अन्तर पड़ जाता है। नदी, नहर और कुएं का जल यदि आम के पेड़ की संगति करता है तो आम का मीठा रस बन जाता है, यदि वही जल लाल मिर्च के पौधे की संगति में रहता है तो अत्यन्त कड़वा और तीखा बन जाता है। कुसंग मानव को बिगाड़ देता है और सत्संग सुधार देता है। इसलिए कहा है कि—

कर कुसंग चाहै कुशल तुलसी यह अफसोस।
महिमा घटी समुद्र की रावण बसत पड़ोस॥

पञ्चतन्त्र में भी कहा है कि

असतां सङ्गदोषेण साधवो यान्ति विक्रियाम्।
दुर्योधनप्रसङ्गेन भीष्मो गोहरणे गतः॥

अर्थात् असत् पुरुषों की संगति के दोष से सज्जनों में भी विकार भर जाते हैं। दुर्योधन की संगति से ही भीष्म गौ हरने गए थे। अतः कितना बुरा परिणाम सामने आ जाता है कुसंगति का। इसलिए भूलकर भी निम्नस्तर का साहित्य बिगड़े हुए मनुष्यों और मन में विकार और कुविचार उत्पन्न करने वाली वस्तुओं की संगति कभी नहीं करनी चाहिए।

अतएव सावधान, आज के दुःखी मानव! सावधान। देखो, किधर जा रहे हो? सत्संग में या कुसंग में। साधु, सन्त, महात्मा और महापुरुषों की संगति इसलिए अच्छी मानी गई है कि उनके पास बैठने से चित्त में निर्मलता, मन में शान्ति और बुद्धि में स्वच्छता आती है। 'बृहदारण्यवार्तिकम्' में कहा है कि—

महानुभावसम्पर्कः कस्य नोन्नतिकारणम्।
अशुच्यपि पयः प्राप्य गङ्गां याति पवित्रताम्॥

अर्थ है कि महात्माओं के संग से मनुष्य की ऐसी उन्नति नहीं होती है जैसे कि नालियों का अपवित्र जल गंगा में मिलकर पवित्र हो जाता है। इसलिए सन्त कबीर जी ने कहा है कि—

कबीर संगति साधु की, नित प्रति कीजै जाय।
दुरमति दूर बहावसी, देसी सुमति बताय॥

मानव सुन! इस संसार-सागर में तैरने के लिए सत्संग एक नौका है। इस माया की मोह-निशा तोड़ने के लिए जिन अस्त्रों की भारी आवश्यकता समझी गई है उनमें से साधु, सन्त, महात्माओं की संगति भी है—

संयम सेवा साधना, सत्पुरुषों का संग।
यह चारों तुरंत करे, मोह निशा को भंग॥

निस्सन्देह अच्छे लोगों की संगति मानव को भारी लाभ पहुंचाती है और सत्संग तो भव से पार ही कर देता है। सत्संग का गूढ़ अर्थात् गहरा अर्थ है कि हर समय सत्-चित्-आनन्द भगवान् को अपने संग-संग अनुभव करना। वह सत् स्वरूप प्रभु तो हम से कभी अलग होता ही नहीं। यह भ्रम में पड़ा मानव ही है जो सदा के साथी को भुला देता है। उसकी संगति तो कभी छूटती ही नहीं। परन्तु यह कितने आश्चर्य की बात है कि दिन-रात, सोते-जागते, हर समय पास रहने वाले की संगति से हम लाभ नहीं उठाते। सच जानिये तो कितना बड़ा अन्याय कर रहे हैं, हम अपने ही साथ कि घर के अन्दर ही घर के स्वामी को खोए बैठे हैं और उसकी संगति से वंचित हो रहे हैं। किन्तु ये संगति अत्यन्त दुर्लभ है। वह प्रभुकृपा से ही प्राप्त हो सकती है—

सत्संगति दुर्लभ संसारा।
निमिष दण्ड भरि एकऊ बारा॥

अन्त में नारद जी का वचन सत्संगति के विषय में—

सत्सङ्गो दुर्लभोऽगम्योऽमोघश्च।

प्यारे श्रोतागणो! आज, इस वर्ष का अन्तिम मास, अन्तिम सप्ताह तथा अन्तिम मंगलवार है। जो आया था, वह जाएगा भी। यह वर्ष भी जाएगा। किन्तु इस जाने के साथ नव-वर्ष का पदार्पण भी होगा। अतः इस जाने वाले वर्ष को मैं भावभीनी विदाई देती हूं और आगामी नव-वर्ष का हृदय से स्वागत भी करती हूं। आप सभी के लिए नव-वर्ष शुभ हो, मंगलमय हो, सर्वोन्नति को प्राप्त करवाने वाला हो। इस वर्ष मैं भी विदाई लेती हूँ। प्रभु ने चाहा तो अगले वर्ष फिर आपकी सेवा में नये धार्मिक विचारों के साथ उपस्थित होऊंगी। ओ३म् तत्सत्।

— धन्यवाद।

२३. प्रभु-भक्ति

प्यारे श्रोतागणो! आप सब को अब तक यह तो मालूम हो ही गया होगा कि प्रभु क्या है? सत्यनारायण किसे कहते हैं। किन्तु यह प्रभु एवम् सत्यनारायण की कथा ऐसी है जो कभी समाप्त नहीं होती। वास्तविक बात यह है कि इस कथा का कोई आरम्भ ही नहीं है। क्योंकि जब नारायण का ही न आदि है न अन्त, तब नारायण की कथा भी तो ऐसी ही है। फिर प्रभु की कहानी तो अकथ है। इसे पूर्णरूप से आज तक न कोई सुना सका है, ना ही भविष्य में कोई सुना सकेगा। तब मैं क्या करने लगी हूं? मेरी इतनी सामर्थ्य कहां कि अल्पज्ञ होकर सर्वज्ञ की कथा सुना सकूं? हां, इतना अवश्य है कि जैसे गंगा नदी से कुछ घूंट जल पीकर कोई प्यासा अपनी प्यास बुझा लेता है, वैसे ही मैं भी उस अथाह गहन-गम्भीर प्रभु की अमर कहानी के दो अक्षर लेकर आपकी प्रभु-भक्ति की प्यासी आत्मा को तृप्त करने का प्रयास करती हूं।

वैसे प्रवचन सुनाने का तो केवल एक बहाना है, मैं तो अपने ही जीवन को सफल बनाने का एक सुन्दर सुअवसर समझती हूं। उसे प्यारे प्रभु के गुण वर्णन सुनाने में जो घड़ी बीते वही हमारे जीवन की वास्तविक घड़ी है। जिस प्रभु की कथा ने, सोई प्रकृति को जगा दिया और उसी प्रकृति में अनेक सूर्य, नक्षत्र, पृथिवियां समुद्र और अनेक मण्डल तथा लोक बना दिये उसकी कहानी तो बहुत मनोरञ्जक है। किन्तु बार-बार कथा सुनने पर भी हम उसे जान नहीं पाते हैं क्योंकि ठगनी माया जो खड़ी है चारों ओर वह मनमोहक, विषकन्या का रूप बनाये हुए है। इसलिए मनुष्य पग-पग पर ठोकर खाता है, पग-पग पर अन्धकार से घिरकर गिर जाता है।

इस ठगनी माया का जाल तो बाढ़वाली उस तीव्र नदी के समान है जिस पर इन्द्रियों के तख्ते पर बंधा आत्मा तेज धार में बहा जाता

है। किन्तु तब भी मानव को इस ठगनी माया का असली रूप समझ में नहीं आता किन्तु जब उसके हृदय में प्रभु के प्रति प्रेम जागृत हो उठता है और तब मानव पश्चात्ताप के प्रकाश में अपनी भूल को देखता है। तब ऋग्वेद के शब्दों में पुकार कर कहता है। अच्छा महाराज हो गया अपराध मुझ से। अब मैं तुम्हारी शरण में आया हूं मेरे अपराधों को ना देखो। अपने नाम की मेरे प्यार की लाज रखो।

सुखद चरण तेरे प्रभु, मेरा नत यह माथ।
शरण पड़े की लाज को, राखो दीनानाथ॥

जैसे चोर चोरी करके पश्चात्ताप कर रहा हो, बच्चा अपराध करके मां के समक्ष आ गया हो। सिर झुकाए खड़ा है और कहता है— क्षमा कर दे मुझे। तू मां है मैं अबोध बालक हूँ। इस कीचड़ को दूर कर फिर से अपनी गोदी में बिठा ले। संसार में त्रुटियां और भूल तो सब से होती हैं। त्रुटि रहित तो केवल वह परमात्मा ही है। सीधी-सी बात है यदि भूल न होती तो यह मनुष्य का चोला ही क्यों मिलता? कुछ अच्छे कर्म थे कुछ बुरे। दोनों के कारण यह मानव चोला मिला कि पहले जो गलतियां कीं उन्हें अब सुधार लो। इसके लिए यजुर्वेद के ३।२० मन्त्र में आता है—

यद् ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये।
यदेनश्चकृमा वयमिदं तदवयजामहे स्वाहा॥

गांव में, जंगल में, सभा में, जिनकी आज्ञा-पालन करनी चाहिए थी, उन स्वामियों के सम्बन्ध में, जिनकी रक्षा करनी चाहिए थी उन सेवकों के सम्बन्ध में, किसी भी व्यक्ति को उसके धर्म से गिराने के सम्बन्ध में या किसी भी बात में यदि इन इन्द्रियों से जाने, अनजाने हम ने कोई भी पाप किया हो तो हे पतितपावन, कृपा करके इन पापों को समाप्त कर दे।

ये आंखें इसीलिए मिली हैं कि ईश्वर की महिमा को देखें। कान इसलिए मिले कि भक्ति के गीत सुनें। हृदय इसलिए मिला है कि इसमें प्रभु-प्रेम की ज्योति जगाएं। किन्तु हम तो मनुष्य हैं कभी-कभी

इनका उल्टा प्रयोग भी हो जाता है। आखें मनमोहक रूप की ओर भटक जाती हैं, कान न सुनने योग्य बातों में उलझ जाते हैं। हृदय मोह और माया में भटक जाता है। हो जाता है अपराध। तब भक्त हाथ जोड़कर यजुर्वेद के मन्त्र ३६।२ में कहता है—

यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वातितृणं बृहस्पतिर्मे तद्दधातु।
शन्नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः॥

अर्थात् हे परम महान्, परम विशाल, आंख से, हृदय से यदि मैंने कोई भी अपराध किया हो तो हे संसार के स्वामिन् उसे दूर कर, यदि त्रुटि आ गई है तो उसे पूरा कर। याद रखो, अपराध हो जाते हैं तो दूर भी किये जा सकते हैं। परन्तु दूर हो सकते हैं उस समय जब पश्चात्ताप और प्रायश्चित्त की सच्चो भावना मन में जाग उठे। यह नहीं कि—

रात को पी, सुबह को तौबा कर ली।
रिन्द के रिन्द रहे, हाथ से जन्नत न गई॥

निश्चय करो कि जो अपराध हो गया है उसे भविष्य में कभी न करेंगे। निराश होने की कोई बात ही नहीं है। और फिर हम ईश्वर को ढूंढ़ते किसलिए हैं। बीमार व्यक्ति डॉक्टर को ढूंढता है। जिसके कपड़े फट गए हों वह दर्जी को ढूंढ़ता है। जिसके वस्त्र मैले हों वह धोबी को ढूंढ़ता है। इसी प्रकार प्रभु को भी हम इसलिए ढूंढ़ते हैं कि हमारे अपराधों की मैल दूर हो जाए। किन्तु इस मैल को दूर करने के लिए पश्चात्ताप की भावना मन में उत्पन्न करनी चाहिए। मन में इस भावना के पैदा होते ही हृदय में प्रकाश जाग उठता है और तब भक्त पुकार उठता है कि प्रभो! तेरे द्वार पर आ पड़ा हूं, अब पड़ा रहने दो मां। हटाओ नहीं यहां से, धुल जाने दो मेरे पाप, हट जाने दो यह अन्धकार।

तेरे दर को छोड़कर हम बे-नवा जाएं कहां ?
या बता दे और कोई अपने जैसा घर हमें।

दूसरा तो कोई ठिकाना भी नहीं।
तुम शरण ना दोगे तो फिर कौन देगा?

तुम से भीख ना मांगी तो कहां से मिलेगी? खोल दो पट। कृपा कर दो अब। मेरे अपराधों को ना देख। पश्चात्तापरूपी आंसुओं को देख। सुनिये, यह आंसुओं की बात भी विचित्र है। कई लोग आंसुओं से घबराते हैं डरते हैं। किन्तु प्रभु के द्वार पर आकर रोने से मन का मैल दूर हो जाता हे। महर्षि व्यास जी ने लिखा है कि — यदि सत्संग में बैठा हुआ कोई साधक अपने कर्मों को याद करके आंसू बहाने लगे तो समझो कि उसके अच्छे दिन निकट आ गए हैं। इसलिए घबराओ नहीं। पुकारो उस मां को, आंसुओं से भीगी हुई आवाज़ में उस प्रियतम को कहो— "अरे ओ परमानन्द! परम शान्ति! परम ज्योति! परम सुख। कब आएगा वह दिन जब तू साकार दर्शन देगा? आहों, तड़प और बेचैनी की भाषा में कहो— कृपा कर दो प्रभु, अब प्रतीक्षा नहीं होती।

आओ कि दूरी तुम्हारी, अब सही जाती नहीं।
वेदना विरह बढ़ी इतनी अब कही जाती नहीं।।
माना कि तेरी दीद के क़ाबिल नहीं हूँ मैं।
तू मेरा शौक देख, मेरा इन्तज़ार देख।।

हो गया अपराध, अब दया कर दो। तुम तो पतितपावन हो, दीनानाथ हो, करुणा के सागर हो। क्या अपने उस भक्त पर कृपा नहीं करोगे जिसका तुम्हारे अतिरिक्त और कोई नहीं है?

तुम्हारी दीद ही मकसद रही जिसकी बिसारत का।
वो चश्मे मुन्तज़र पथरा गई, क्या तुम न आओगे?

नहीं प्रतीक्षा करने वाले नेत्र कभी पथराते नहीं, प्रतीक्षा में भी अपना ही आनन्द है— **वस्ल में हिज्र का ग़म हिज्र में मिलने की खुशी।**
कौन कहता है जुदाई से विसाल अच्छा है?

भगवान् एक रात अयोध्या में थे, सारी अयोध्या रो रही थी क्योंकि राम को वन्वास की आज्ञा हो चुकी थी। तब एक और रात थी। जब

राम अयोध्या में नहीं थे तो सारी अयोध्या खुश थी क्योंकि दूसरे दिन राम वनवास से वापस आने वाले थे। सारी अयोध्या प्रतीक्षा में अशान्त थी किन्तु इस अशान्ति में भी एक विचित्र प्रकार का आनन्द था। यह वियोग एक अद्भुत औषधि है। इसमें तड़पना पड़ता है अवश्य। परन्तु यह तड़पना ही उस प्रकाश के लिए द्वार खोल देता है जो ईश्वर की ओर ले जाता है—

विरह जगावे दर्द को, दर्द जगावे जीव।
जीव जगावे सुरत को, पंच पुकारे पीव॥

तब पांचों प्राण पिया-पिया पुकारते हैं। इस पुकार में जो दर्द युक्त आनन्द है उसे वही लोग अनुभव करते हैं जिन्हें वियोग का रोग लग जाए। किन्तु इस विरह वियोग का अर्थ रहे अपने प्रियतम पर मर मिटने की लगन। कबीर—

विरह अग्नि तन में तपै, अंग सभी अकुलाय।
घर सूना जिव, पीव महँ, मौत ढूंढ़ फिरि जाय॥

प्रभु के प्रेमी का विरही— हानि-लाभ, सुख-दुःख, लोक-निन्दा-लोक-स्तुति से ऊब जाता है। उसके सिर पर एक ही धुन सवार होती है किस प्रकार अपने प्रियतम से मिलाप हो और जब तक मिलाप ना होगा, तब तक विरह का रूप यही होगा—

उर में दाह प्रवाह दृग, रह रह निकले आह।
मर मिटने की चाह हो, यही विरह की राह॥

इस वियोग में सुख-दुःख सब बराबर हो जाते हैं। मस्ती में प्रभु-भक्त कहता है—

तुम्हारी चाही में प्रभो है मेरा कल्याण।
मेरी चाही मत करो मैं मूरख नादान॥

तब मनुष्य अपनी इच्छा छोड़ देता है। प्रभु की इच्छा ही उसकी इच्छा बन जाती है। महर्षि दयानन्द जी जीवन की अन्तिम सासें ले रहे थे। सब लोग अशान्त थे कि अब क्या होगा? सभी के मुख-

मण्डल पर उदासी थी आँखों में आंसू। महर्षि ने मुस्कुराते हुए पूछा- कौन-सी तिथि है आज? कौन-सी घड़ी है इस समय? पास खड़े एक व्यक्ति ने तिथि और समय बताया। महर्षि बोले— तो अब खोल दो सारी खिड़कियां, बाहर की वायु आने दो, आत्मारूपी पंछी का मार्ग ना रोको, मेरे पीछे आ जाओ सब लोग और गायत्री मन्त्र का जाप करो। जब सब लोग जाप कर रहे थे तो महर्षि ने अन्तिम सांस लेते हुए कहा— प्रभो, तेरी इच्छा पूर्ण हो। इसके अतिरिक्त उन्होंने कोई दूसरी प्रार्थना नहीं की, कोई दूसरी याचना नहीं की।

राजी हैं हम उसी में, जिसमें तेरी रज़ा हो।
यहाँ यूं भी वाहवा हो और वहाँ वूं भी वाहवाह हो।

यह है वह अवस्था जो प्रभु-विश्वास से उत्पन्न होती है। और वह विश्वास तब उत्पन्न होता है जब प्रभु के लिए प्रेम जाग उठे। उस समय प्रभु यदि भक्त की पुकार को ना भी सुने तो भक्त निराश, नहीं होता। साहस से कहता है कि— आए हैं तेरे दर पर तो कुछ करके हटेंगे। या वस्ल ही होगा या मर के उठेंगे। जिनके हृदय में उस प्रेम की अग्नि जाग उठती है उन्हें वियोग की आग भी शीतल लगने लगती है। वह हर समय उसी का चिन्तन करते हैं, उसी के गीत गाते हैं। वियोग भी उनके लिए योग बन जाता है।

लैला-मंजनू का किस्सा तो आप सब ने सुना ही होगा कि मंजनू लैला को दिलोजान से प्यार करता था। कहते हैं एक बार मजनूं बीमार हो गया। Blood Pressure बहुत बढ़ गया। बुखार बढ़ने लगा तो डॉ॰ ने निर्णय किया कि इसका कुछ रक्त निकाल देना चाहिए तो शायद ठीक हो जाए। आप जानते हैं कि रक्त निकालने के लिए शरीर पर नश्तर चुभोना पड़ता है। मंजनू के हाथ-पांव बांध दिये गए। जब डॉक्टर ने रग काटने के लिए चाकू निकाला तो मजनूं ने पूछा— ये क्या करते हो? डॉक्टर ने कहा— नश्तर लगाएंगे तुम्हें। मजनूं ने चिल्लाकर कहा— ठहरो, ऐसा न करो, नश्तर न लगाओ। वैद्य बोला— अरे मजनूं, तू और नश्तर से डर रहा है। लैला-लैला कहता हुआ तू जंगलों में

भटकता फिरता है, सर्दी से नहीं डरता, शेरों से नहीं डरता फिर आज एक छोटे से नश्तर से डर गया। मजनूं ने उत्तर दिया— मैं नश्तर से नहीं डरता वैद्य जी। एक और बात से डरता हूं। वह यह है मेरे हृदय में, मेरी हर एक सांस में और रक्त के हरेक बिन्दु में लैला रहती है। यदि उसे यह नश्तर लग गया तो मैं क्या करूँगा? इसलिए रहने दो यह बुखार। मुझे मरना स्वीकार है किन्तु अपनी लैला को घायल करना स्वीकार नहीं। यह है उस व्यक्ति की अवस्था जिसमें प्रेम की अग्नि जल उठती है। यदि ईश्वर के लिए यह अग्नि प्रज्वलित हो जाए तो फिर हर तरफ वही दिखाई देते हैं। मीरा ने भी यही कहा था कि— मैं देखूं जिस ओर सखी री सामने मेरे सांवरिया।" प्रत्येक रूप में वह है, फिर भी वह दिखाई नहीं देता, क्यों? उसका दर्शन होता है किन्तु दृष्टिवाले को होता है— **दीदार की तलब है तरीकों से बेख़बर।**

दीदार की तलब है तो पहले निग़ाह मांग॥

कौन-सी दृष्टि है वह, जिससे मनमोहन प्रभु आनन्द से भरपूर महाज्योति दिखाई देती है। बाहर की आंखों से वह दिखाई नहीं देता। उसका दर्शन होता है अवश्य। परन्तु आंखों को बंद करके—

उल्टी ही चाल चलते हैं दीवान गाने इश्क।
आंखों को बंद करते हैं दीदार के लिए॥

प्रकृति के मायाजाल में खोई हुई इन आंखों को बन्द करना अत्यन्त आवश्यक है। हिन्दी के महाकवि सुमित्रानन्दन पन्त जी ने कहा है—

छोड़ द्रुमों की मृदुछाया, तोड़ प्रकृति से भी माया।
बाले तेरे बाल जाल में कैसे उलझा दूं लोचन?

बाहर के पट बन्द करने की भावना उस समय उत्पन्न होती है जब भक्ति जागती है। नारद मुनि जी ने एक प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा है— भक्ति प्रभु के प्रति पूर्ण अनुराग का नाम है। भक्ति में ऐसा प्यार है, ऐसा विश्वास है जो एक क्षण के लिए भी डगमगाए नहीं। ऐसी निष्काम भावना है, जिसमें कोई कपट ना हो, धोखा ना हो, छल ना हो। प्रीतम के अतिरिक्त किसी और की इच्छा न हो। यह जानकर कि वहीं सब कुछ है, रात-दिन

उसके संकेत को देखना, उसकी आज्ञा का पालन करना। वह सिर पर ताज़ रख दे तो कहना कि "तेरी इच्छा" और सिर को धड़ से अलग कर दे तो भी कहना — राज़ी हैं हम उसी में जिसमें तेरी रज़ा है। यह है भक्ति। वियोग के साथ प्यार का रंग चढ़ जाए तो भक्ति का जन्म होता है। भक्ति और अनुराग में वैसे बहुत अन्तर नहीं है। गुरु और पिता के लिए जो अनुराग सन्तान के हृदय में उत्पन्न होता है उसे श्रद्धा कहते हैं।

२४. श्रद्धा से सिद्धि

प्यारे श्रोतागणो गत मंगलवार को मैं आपको प्रभु-प्रेम के विषय में बता रही थी। प्रभु-प्रेम का एक रूप और है जिसे मैं आज आपको बताने जा रही हूं। वह है "श्रद्धा"। पूर्ण विश्वासी बनने के साथ-साथ उस भगवान् नारायण पर भक्त की अटूट श्रद्धा का होना भी आवश्यक है। श्रद्धा के बिना किसी कार्य की सिद्धि नहीं होगी। इसलिए वेद भगवान् ने श्रद्धालु बनने का आदेश दिया है। ऋग्वेद (१०।१५१) के श्रद्धा सूक्त के पहले ही मन्त्र में बताया है कि—

श्रद्धयाऽग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः।
श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि॥

अर्थात् श्रद्धा से ही अग्नि का प्रदीपन किया जाता है। श्रद्धा से ही अग्नि में हवि होमी जाती है। श्रद्धा ऐश्वर्य की चोटी पर रहती है, ऐसा वचन हम अग्नि के सामने बोलते हैं। इसी सूक्त के चौथे मन्त्र में कहा है कि—

श्रद्धां देवा यजमाना, वायुगोपा उपासते।
श्रद्धां हृदय्याकूत्या श्रद्धया विन्दते वसु॥

देवता और यज्ञ करने वाले सदैव श्रद्धा की उपासना करते हैं। मनुष्य श्रद्धा से ही हृदय में संकल्प धारण करता है और श्रद्धा से ही नेकी को कमाता है। इसलिए जब देवता और मनुष्य सभी श्रद्धावान् होना चाहते हैं तब हम क्यों ना हों? निःसन्देह श्रद्धा हीन व्यक्ति दो कौड़ी का भी नहीं है। श्रद्धा के बिना जीवन शुष्क है, सूखा है, सूना है। उसमें कोई माधुर्य नहीं, कोई सौन्दर्य नहीं। श्रद्धा के बिना जीवन लोहे की उस मशीन के समान है जिसके पुर्जों को कभी तेल मिला ही नहीं। मानव जीवन में माधुर्य और सौन्दर्य केवल श्रद्धा से ही उत्पन्न होते हैं। जिस मानव के मन में शारीरिक, मानसिक और आत्मिक मार्ग पर चलने की इच्छा होती है, उसमें सात्त्विक श्रद्धा जाग उठती है।

सर्वप्रथम तो उसे अपने आप पर ही श्रद्धा होने लगती है और वह मानव आत्मविश्वासी बनकर अपने प्यारे प्रभु की खोज में तत्पर हो जाता है। आत्मविश्वास और प्रभु-विश्वास ही श्रद्धा है और यह श्रद्धा ही भक्त के अन्दर एक दिव्य शक्ति, असीम सहनशीलता, अदम्य साहस और उल्लास की सृष्टि रच देती है। श्रद्धावान् का बेड़ा पार हो जाता है। महाभारत में तपस्वी जावली मुनि श्रद्धा की महिमा बताते हुए कहते हैं कि—

अश्रद्धा परं पापम्, श्रद्धा पापप्रमोचिनी।
जहाति पापं श्रद्धावान्, सर्पो जीर्णाविव त्वचम्॥

अर्थात् अश्रद्धा सब से बड़ा पाप है, श्रद्धा पाप से छुटकारा दिलाती है। जिस प्रकार सर्प अपनी पुरानी केंचुल छोड़ देता है उसी प्रकार श्रद्धालु पुरुष पाप का परित्याग कर देता है। फिर जब अटूट श्रद्धा निरन्तर एकरस बनी रहे तो तब तो संसाररूपी भवसागर पार करने में कोई सन्देह ही नहीं रहता। इस प्रकार जब अटूट श्रद्धा की मात्रा इतनी बढ़ जाए तो वह शुद्ध प्रेम का रूप धारण कर लेती है। इसलिए ऋग्वेद में कहा है कि 'श्रद्धया विन्दते वसु।' अर्थात् श्रद्धा से जो भी चाह हो वह पूरी होती है।

प्यारे श्रोतागणो आप जानते हैं कि भारत के गंगोत्री पहाड़ की ऊंचाई साढ़े दस हजार फीट है जहां बारह महीने बर्फीली जाड़ों का मौसम रहता है। किन्तु एक बार एक बूढ़ी औरत साधुओं की टोली के साथ उस बर्फ से ढके पर्वतों तक पहुंच गई। एक साधु ने मां से प्रश्न किया— मां, इतने निर्बल और बूढ़े शरीर से और इतने कम वस्त्रों में इस बर्फ से भरपूर पर्वत पर आप कैसे पहुंचीं। दूसरे साधु ने उत्तर दिया कि गंगोत्री पहुंचने की इनकी उत्कट इच्छा थी और इनकी श्रद्धा इसे यहां तक ले आई है। इसलिए श्रद्धा को धर्म की पुत्री भी कहा गया है। पद्म-पुराण में लिखा है—

श्रद्धा धर्मसुता देवी, पावनी विश्वभाविनी।
सावित्री प्रसवत्री च संसारार्ण वतारिणी॥

अर्थात् श्रद्धा धर्म की पुत्री है, विश्व को पवित्र एवम् अभ्युदयशील

बनाने वाली है। इतना ही नहीं; वह सावित्री के समान पावन जगत् को उत्पन्न करने वाली तथा संसार- सागर से उद्धार करने वाली है। श्रद्धाभक्ति से की गई प्रभु-आराधना पूरा फल देती है। वेद भगवान् का भी यही आदेश है कि—

स इज्जनेन स विशा स जन्मना स पुत्रैर्वाजं भरते धना नृभिः।
देवानां यः पितरमाविवासति श्रद्धामना हविषा ब्रह्मणस्पतिम्॥

अर्थात् जो भक्त श्रद्धायुक्त मन वाला होकर भक्ति से सूर्य, चन्द्र आदि तथा विद्वानों के पालक परमेश्वर की पूजा करता है वही भक्त उत्तम मनुष्यों से, अपनी प्रजा से, अपने जन्म से, अपने पुत्रों से ज्ञान का सम्पादन करता है और अपने साथियों द्वारा वह पुरुष धन से पूर्ण होता है।

किन्तु प्यारे श्रोतागणो! श्रद्धा का अर्थ यह नहीं कि आप किसी ऐसी बात पर श्रद्धा कर बैठें जो अनृत हो अर्थात् श्रद्धा योग्य न हो। श्रद्धा का अर्थ ही यही है कि "श्रत् सत्यम् धा धारणा" अर्थात् सत्य और यथार्थ बात पर ही श्रद्धा की जाए। क्योंकि सत्य का धारण श्रद्धा से ही होता है उसी से मन में साहस और हृदय में प्रसन्नता की छटा छा जाती है। भगवान् श्रीकृष्ण जी ने भी गीता में यही कहा है कि—

त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा,
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु।
सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत,
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्ध स एव सः॥

अर्थात् हे अर्जुन! शरीरधारियों को श्रद्धा स्वभाव से ही तीन प्रकार की होती है— सात्त्विकी, राजसी और तामसी। उनको मैं तुम्हें सुनाता हूं। हे अर्जुन, सब को श्रद्धा अन्तःकरण के अनुसार ही होती है। जिस पुरुष के हृदय में जैसी श्रद्धा होगी उसका फल भी वैसा ही होगा। तब तामसिक श्रद्धा करने का क्या लाभ? पूर्ण विश्वास और अटूट श्रद्धा के साथ-साथ अनन्य भक्ति का होना भी अति आवश्यक तथा अनिवार्य है। उस सर्वव्यापी, जलथलवासी, शक्तिशाली "ओ३म्" परमात्मा के

अतिरिक्त हमारे अन्तःकरण पर किसी और का अधिकार न हो। वही हमारा प्रियतम हो। विश्वसुन्दरियों में वही एक हमारी प्रियतमा हो, वही हमारी अभिलाषा हो, वही हमारे जीवन का अन्तिम लक्ष्य हो, वही हमारा जीवन हो, वही हमारे प्राण हों, जिधर देखें उसी को देखें। यहां तक कि—

आ प्यारे मेरे नैन में, पलक ढाँप तोहे लूं।
ना मैं देखूं औरों को ना तोहे देखन दूं॥

पूर्ण विश्वास और अटूट श्रद्धा की सुन्दर वाटिका में जब भक्ति का झरना बहता है तब भक्ति की वाटिका अर्थात् क्यारी लहलहा उठती है। सूखे तनों में भी नव कोंपलें फूट पड़ती हैं, नव जीवन का संचार हो जाता है। इसलिए अपने मालिक, अपने स्वामी, अपने प्रभु के एक-एक संकेत और एक-एक आज्ञा पर अपने आपको एक सच्चे सेवक की तरह न्यौछावर कर देने की अभिलाषा को ही भक्ति कहते हैं। परमात्मा ही तो सच्चा मालिक है, स्वामी है प्रभु है। तब उसी की आज्ञा में चलना, उसी के प्रेम में मस्त रहना, क्योंकि प्रभु का अनन्य भक्त तो दुकानदारी नहीं करता। वह हानि-लाभ का हिसाब नहीं रखता। क्योंकि—

जहाँ प्रेम तहाँ नेम नहीं, तहां न विधि व्यवहार।
प्रेम मगन जब मन भया, तब कौन गिने तिथि वार॥

पाणिनि के व्याकरण के अनुसार भक्ति का अर्थ है "विश्वासपूर्वक निष्कपट सेवा।" और अनन्य भक्त उसे कहते हैं जिसे प्रभु के अतिरिक्त और कुछ सूझे ही नहीं। योगदर्शन ने अनन्यभक्ति को ही ईश्वर-प्रणिधान का नाम दिया है। श्रीमद्भवद्गीता में इसी को शरणागति कहा है। उपासना शब्द भी यहीं रंग दिखाता है। मतलब यह है कि भक्त अपने मालिक के बिना एक क्षण भी न रह सके। भक्ति की भावना भी एक प्रकार का नशा है जो अत्यन्त रसीला, मीठा और सुस्वादु है। जब यह नशा एक बार चढ़ जाता है फिर उतरता ही नहीं, दिन-प्रतिदिन और अधिक गहरा होता चला जाता है। इसी भक्ति रस को ही सामवेद में सोम-

रस कहा है और यह रस भौतिक नहीं दिव्य रस है। इस विलासमय भोग प्रधान कलिकाल में मानव जीवन के भक्त-यात्री को यदि कोई सहारा देता है तो वह भक्ति रस ही है। इस मरुस्थली में पग-पग पर तप रहे सूखे स्थानों पर भक्ति रस ही माधुर्य की, शीतलता की बौछार करता है। जहाँ पाप, अत्याचार, असत्य व्यवहारों की आंधियां चल रही हों वहां यह भक्ति रस जहरीली आंधियों के सूखे अधरों पर शान्ति की शीतल बूंद बनकर टपकता है और उन्हें हरा देता है।

भक्ति क्या करती है। यह भक्त को भगवान् का प्यारा बना देती है। इसीलिए भगवद् गीता में यह कहा गया है कि—

अकामः सर्वकामो यः मोक्षकाम उदारधीः।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत् पुरुषं परम्॥

जो कुछ भी नहीं चाहता, जो सब कुछ चाहता है, जो केवल मोक्ष चाहता है, वह उदार बुद्धि मानव, तीव्रभक्ति योग द्वारा परम पुरुष प्रभु की आराधना करे। जब भक्त स्वयम् को प्रभु को अर्पण कर देता है तो भगवान् भी उसे अपना लेता है। तब भक्त की कामनाएं स्वयमेव ही पूर्ण हो जाती हैं। वेद भगवान् ने तो यहां तक कह दिया कि भक्ति द्वारा चित्त, बुद्धि सब कुछ पवित्र हो जाता है। अथर्ववेद में लिखा है—

मनसे चेतसे धिय आकूतये उत चित्तये।
मत्यै श्रुताय चक्षसे विधेम हविषा वयम्॥

अर्थात् हम सब मन के लिए, चित्त के लिए, बुद्धि के लिए, शुभ संकल्पों के लिए ज्ञान के लिए, मनन के लिए, श्रवण के लिए दर्शनादि शक्तियों के विकास के लिए भक्ति द्वारा भगवान् की आराधना करें। श्री सत्यनारायण व्रत कथा में भी यही व्रत लेने का आदेश है। ऐसा व्रत लेकर हृदय से व्रत का पालन करने वाले भक्तों के योगक्षेम की जिम्मेदारी भगवान् पर आ जाती है। एक बार पूर्ण विश्वास, अटूट श्रद्धा तथा अनन्य भक्ति से यह व्रत लेकर देखो तो सही—

सारी दुनिया से हाथ धोकर देखो,
जो कुछ भी रहा-सहा है खोकर देखो।

क्या अर्ज करूं इसमें क्या लज्जत है,
इक मरतबा किसी के होकर तो देखो॥

इसलिए दूसरों से ऐसे प्यार करो जैसे स्वयम् से करते हैं। सारे संसार को अपना समझो, प्रत्येक देश को अपना देश, प्रत्येक जाति को अपनी जाति, पराए को अपना सगा सम्बन्धी। ऐसा करने से प्रभु के प्रति में सच्चा शुद्ध पवित्र प्रेम उत्पन्न होता है। मैंने प्रेम के विषय में निरन्तर पिछले चार प्रवचनों द्वारा प्यार की आग को आपके हृदयों में जगाने का प्रयास किया है। प्रभु-प्रेम की यदि कोई चिनगारी आपके हृदयों भी भड़की हो तो उसे जलाए ही रखिएगा। बुझने मत दीजिएगा। तभी विश्वप्रेम की भावना जागेगी। **कृण्वन्तो विश्वमार्यम्** का नारा सफल होगा। इसी प्रेम की अग्नि के प्रकाश में प्रभु मिलेंगे।

अयं सु तुभ्यं वरुण स्वधावो हृदि स्तोम उपश्रितश्चिदस्तु।
शं नः क्षेमे शमु योगे नो अस्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥

—ऋग्वेद के ७।८६।८

हे वरुणदेव! मेरे गीत केवल तेरे लिये हैं। मेरे हृदय में बैठी हुई पूजा केवल तेरे लिये है। मेरे प्यार का केन्द्र तू है, मेरा धन तू है, शान्ति तू है। हर ओर से मिले हुए विद्वानों के आशीर्वाद मेरी रक्षा करते हैं। मैंने तेरी कृपा को तुमको पा लिया है।

२५. दीपावली का महत्त्व

प्रत्यर्ची रुशद् अस्या अदर्शि वि तिष्ठते बाधते कृष्णम् अभ्वम्।
स्वरुं न पेशो विदथेषु अञ्जन् चित्रं दिवो दुहिता भानुम् अश्रेत्॥

—ऋग्वेद १।९२।१

देखो, ऊषा की चमकीली अर्चि दिखाई दे रही है। इसका प्रकाश सर्वत्र फैल रहा है और अन्धकाररूपी काले राक्षस को नष्ट कर रहा है। देव यज्ञों में यज्ञस्तम्भ को चिकनाया-चमकाया जाता है, ऐसे ही यह ऊषा अपने रूप को चमका रही है। यह द्युलोक की पुत्री उषा अद्‌भुत प्रकाश-पुंज सूर्य के आश्रय में स्थित है।

प्यारे श्रोतागणो! आप सभी जानते हैं कि आज से छः दिन बाद **दीपावली** का त्यौहार मनाया जाएगा। इसलिए आज और आने वाले सोमवार ग्यारह नवम्बर तक मेरी कथा दीवाली की कथा ही रहेगी।

दीपावली एकता, सद्‌भावना और चारों तरफ प्रकाश फैलाने का त्यौहार है। वैसे हिन्दू धर्म के अनुसार दीपावली को पंच महोत्सव के रूप में मनाया जाता है। यह त्यौहार कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी से शुक्ला द्वितीया तक अर्थात् पांच दिन तक दीपावली का कार्यक्रम प्रारम्भ हो जाता है। यह त्यौहार इस वर्ष आठ नवम्बर से प्रारम्भ होकर 12 नवम्बर तक समाप्त होगा। आठ नवम्बर को धनत्रयोदशी, धन्वन्तरीजयन्ती अर्थात् धनतेरस मनाया जाता है। इसीदिन आयुर्वेद के जन्मदाता धन्वन्तरी का जन्म हुआ था इसलिए इस दिन एक दीपक अवश्य ही प्रज्वलित करना चाहिए। दीपक जलाते समय—

मृत्युना पाशहस्तेन कालेन भार्यया सह।
त्रयोदश्यां दीपदानं सूर्यजः प्रीयतामिति॥

दीपावली के दिन प्रथम दीपक जलाते समय इस श्लोक का उच्चारण करना चाहिए—

शुभम् करोति कल्याणम् आरोग्यम् धन सम्पदाम्।
शत्रुवृद्धिविनाशाय दीपज्योतिः नमोऽस्तु ते॥

इस श्लोक का अर्थ है — शुभ के लिए, जनहित कल्याण के लिए, स्वास्थ्य के लिए प्रकाश के शत्रु-अन्धकार के नाश करने के लिए हम दीपक प्रज्वलित करें।

दीपावली हिन्दुओं का पवित्र एवम् प्रकाशमय त्यौहार है। यह दीपावली पर्व राष्ट्रीय एकता और सद्भावना का प्रतीक है। सभी वर्णों के लोग दीपावली पर्व बड़े उत्साहपूर्वक मनाते हैं।

दीपावली का अर्थ है दीप पुंज प्रकाशित करके अन्धकार को दूर हटाना है। उपनिषत् के अनुसार—

असतो मा सद्गमय।
तमसो मा ज्योतिर्गमय।

अर्थात् हे मानव तू बाहर और भीतर के अन्धकार को नष्ट कर प्रकाश की ओर बढ़। संस्कृत साहित्य में लिखा है—

लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्विफलतां गता॥

इसका अर्थ है कि अमावस्या का अन्धकार सब अंगों पर छा गया है। आकाश अन्धकाररूपी काजल बरसा रहा है। दृष्टि-शक्ति यानि की हमारी आंखें इस प्रकार बेकार हो गई हैं जिस प्रकार असज्जन लोगों की सेवा व्यर्थ जाती है।

ऐसी घनी रात्रि में नवीन सावनी सस्य के आगमन से नई फसल के स्वागत के लिए दीपमाला का त्यौहार भारत में मनाया जाता है। यहां मैंने एक शब्द प्रयोग किया है— नवसस्येष्टि नव अर्थात् नया (New), सस्य का अर्थ है फसल (Crop), खेती + इष्टि अर्थात् यज्ञ। दीपावली का यज्ञ हम नई फसल के स्वागत के लिए भी करते हैं।

आज के दिन महल से लेकर झोंपड़ी तक सब जगह पूर्ण रूप से सफाई की जाती है और रात्रि में महल की अट्टालिकाओं पर, मकान के आंगनों में, झोंपड़ी के स्थानों पर सब जगह दीपमालाएं ऐसे सुशोभित होती हैं जैसे कि सारी धरती ने दियोंरूपी जगमगाती हुई दुल्हन की चुनरी ओढ़ ली हो। यह था दीपावली का संक्षेप में वर्णन।

किन्तु इस दीपावली के साथ अन्य इतिहास भी जुड़े हुए हैं। आर्यसमाज के प्रवर्त्तक स्वामी दयानन्द जी ने इसीदिन निर्वाण प्राप्त किया था। अतः वैदिक धर्म के लोग इस पर्व को ऋषि-निर्वाण दिवस के रूप में भी मनाते हैं। महाभारत के भगवान् श्रीकृष्ण इस दीपावली के दिन ही शरीर से मुक्त हुए थे। जैन मत के अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर ने भी इसी दिन निर्वाण प्राप्त किया था। स्वामी रामतीर्थ जी का जन्म इसी दिन हुआ और इसी दिन उन्होंने जल में समाधि ली। कुछ विद्वानों का कहना है कि इस दिन मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र 14 वर्षों के वनवास से लौटकर अपनी राजधानी अयोध्या में लौटकर आए थे। अतः इसलिए भी दीवाली का त्यौहार मनाया जाता है। ऐसे तो कई व्यक्तियों ने इस दिन अपने भौतिक शरीर से अपनी आत्मा का त्याग किया होगा, किन्तु अभी मैंने जिंन महापुरुषों का नाम लिया उनके चरित्र पर मैं प्रकाश डालूंगी। किन्तु इससे पहले मैं यह कहना चाहूंगी कि आप सब जानते हैं कि हमारी हिन्दू संस्कृति के अनुसार मानव को चार वर्गों में बांटा गया है। उसी प्रकार हिन्दू धर्म के 4 बड़े पावन त्यौहारों को भी चार वर्गों में बांटा गया है।

1. श्रावणी पर्व,
2. विजयादशमी-दशहरा,
3. दीपावली और चौथा—
4. फाल्गुन यानी होली का उत्सव।

श्रावणी पर्व— ब्राह्मण वर्गों का त्यौहार है। इसका सीधा सम्बन्ध अध्ययन और अध्यापन से है। इस सावन मास में भारत में वेद सप्ताह मनाया जाता है। नये बालक एवम् बालिकाओं के यज्ञोपवीत एवम् उपनयन संस्कार किये जाते हैं। इतना ही नहीं संसार-भर के सारे विद्यालय सावन में पुनः प्रारम्भ होते हैं।

विजयादशमी— क्षत्रियों का

दीपावली— दीपावली पर्व का विशेष रूप से सम्बन्ध वैश्य वर्ग से है। अतः वैश्यवर्ण की अधिष्ठात्री समृद्धि की देवी लक्ष्मी का आह्वान

किया जाता है। इसलिए दीपावली का उत्सव मन को पवित्र कर शुद्ध विचारों से युक्त होकर मनाना चाहिए।

भारतीय धार्मिक ग्रन्थों के अनुसार महालक्ष्मी का जन्म समुद्र-मन्थन के दिन से ही माना जाता है। समुद्र-मन्थन से अप्सराओं की उत्पत्ति के पश्चात् लक्ष्मी जी पैदा हुईं। लक्ष्मी जी की सुन्दरता के कारण सुर और असुर दोनों लक्ष्मी जी को चाहने लगे। इन्द्र ने लक्ष्मी जी को रत्नजड़ित आसन दिया, नदियां सुवर्ण के कलशों में लक्ष्मी जी के स्नान के लिए जल लाईं और ऋषियों ने लक्ष्मी जी का विधिपूर्वक अभिषेक किया। गन्धर्व वाद्य बजाने लगे, अप्सराओं ने लक्ष्मी जी के स्वागत में नृत्य किया। आकाश के बादल अप्सराओं के नृत्य में ताल देने लगे। सागर ने लक्ष्मी जी को पीले वस्त्र दिये, वरुण ने वैजयन्तीमाला और विश्वकर्मा ने विविध प्रकार के आभूषण दिये। लक्ष्मी जी ने स्वयम् कमल की माला लेकर मन्द-मन्द मुस्कुराते हुए विष्णु जी के गले में जयमाला डाल दी। अप्सराओं ने मंगल-गान किया और सभी देवताओं ने लक्ष्मीनारायण की स्तुति की।

इसी प्रकार जब भगवद् गीता के श्री कृष्ण ने योग-माया का आश्रय लेकर रासलीला का आयोजन किया, उस समय उनके वाम अंग से एक देवी का जन्म हुआ जो अत्यन्त रूपवती थी। ईश्वर की इच्छा से उसी समय उस देवी ने दो रूप धारण किये। ये दोनों ही रूप राधिका और महालक्ष्मी के हैं। इस प्रकार लक्ष्मी जी के अनेक निवास-स्थान और अनेक रूप हैं। जैसे इन्द्र के घर में स्वर्गलक्ष्मी, पाताल में नागलक्ष्मी, राजगृहों में राजलक्ष्मी, अपने अंशावतारों के द्वारा सभी कुलवन्ती स्त्रियों में गृहलक्ष्मी, और कमलों में चन्द्रमा, सूर्य में तेज, रत्नों में दमकाहट, आभूषणों में खनखनाहट, शुभ स्थान, मंगल कलश, देवी-देवताओं में प्रतिमाओं के रूप में सभी स्थानों पर यह लक्ष्मी विराजमान थी।

दीपावली की एक कथा और भी है जो यहां मैं आपको सुनाने जा रही हूं। एक बार शौनकादि ऋषियों ने आकर सनत्कुमार जी से पूछा कि हे भगवन्! दीपावली के अवसर पर लक्ष्मी जी के साथ-

साथ अन्य देवी-देवताओं का पूजन क्यों किया जाता है? ऋषियों की इस शंका का उत्तर सनत्कुमार जी ने इस प्रकार दिया। हे ऋषियो, धोखे से जब असुरों के दैत्यराज बलि ने अपने बाहुबल से अनेक देवताओं को बन्दी बना लिया तो कार्तिक अमावस्या के दिन स्वयम् विष्णु भगवान् ने वामन का रूप धारण करके दैत्यराज बलि को बांध लिया और सब देवताओं को कारागार से मुक्त करा दिया। उसी दिन सभी प्रमुख देवों ने क्षीरसागर में लक्ष्मी जी सहित विश्राम किया। इसी कारण दीपावली के दिन लक्ष्मी-पूजन के साथ अन्य देवताओं की भी पूजा की जाती है।

ऋषियों ने पुनः प्रश्न किया — भगवन्! राजा बलि ने जब लक्ष्मी जी व देवताओं को अपने वश में कर लिया था तो फिर लक्ष्मी जी ने उनका त्याग कब किया और क्यों किया।

सनत्कुमार जी ने उत्तर दिया — हे ऋषियो! एक बार जब देवराज इन्द्र से डरकर दैत्यराज राजा बलि कहीं जा छिपा तो इन्द्र ने उसे ढूंढ़ने का प्रयत्न किया। ढूँढ़ते-ढूंढ़ते इन्द्र ने देखा कि राजा बलि एक खाली घर में गधे का रूप धारण कर समय व्यतीत कर रहा है। इन्द्र के वहां पहुंचने पर बलि से उनकी बातचीत होने लगी। राजा बलि ने दुःखी होकर इन्द्र को तत्त्वज्ञान का उपदेश देते हुए समय की महिमा बताई। उसी समय दैत्यराज के शरीर से आभायुक्त दिव्य रूप वाली स्त्री निकली। इन्द्र ने सोचा ये कौन है, आसुरी, मानवी या देवी? इन्द्र ने हाथ जोड़कर पूछा— देवी तुम कौन हो? दैत्यराज का परित्याग कर मेरी ओर क्यों बढ़ रही हो। मन्द-मन्द मुस्कुराती हुई यह शक्ति रूपा स्त्री बोली— शास्त्रवेत्ता मुझे दुःसहा, भूति और लक्ष्मी के नामों से पुकारते हैं। इन्द्र ने प्रश्न किया, हे देवी! जब इतने लम्बे समय तक आपने दैत्यराज के पास वास किया है तो फिर इनमें ऐसा कौन-सा दोष उत्पन्न हो गया है जो इनका परित्याग कर रही हो और मुझमें ऐसा कौन सा गुण देखा जो मेरी ओर अग्रसर हो रही हैं। लक्ष्मी जी ने उत्तर दिया कि—

हे आर्य! मैं जिस स्थान पर निवास कर रही हूँ वहां से मुझे धाता

विधाता भी नहीं हटा सकता। क्योंकि मैं सदा समय के प्रभाव से ही एक का त्याग कर दूसरे के पास जाती हूं, इसलिए तुम भी बलि का अनादर मत करना। इन्द्र ने फिर पूछा कि अब आप असुरों के पास क्यों नहीं रहना चाहतीं? लक्ष्मी जी बोलीं— मैं उसी स्थान पर रहती हूं— जहां सत्य, दान, व्रत, तप, पराक्रम और धर्म रहते हैं।

इस समय असुर इनसे पराङ्मुख हो गए हैं। पहले असुर सत्यवादी, जितेन्द्रिय तथा ब्राह्मणों के हितैषी थे। किन्तु अब ब्राह्मणों से द्वेष करने लगे हैं। अभक्ष्य भोजन करते हैं, साथ ही धर्म की मर्यादा तोड़कर विभिन्न प्रकार के मनमाने आचरण करते हैं। पहले प्रतिदिन सूर्योदय से पूर्व जागते थे और यथासमय सोते थे। अब ये निशाचर हो गए हैं। दीन-दुखियों, अनाथ, वृद्ध, रोगी और शक्तिहीन को सताने लगे हैं। गुरुजनों का अपमान करने लगे हैं। उत्तम भोजन बनाकर दूसरों से ना पूछकर अकेले ही खा लेते हैं। पहले ये प्राणिमात्र को समान समझते थे। इन में सरलता, चतुरता, सौहार्द, उत्साह, निरहंकार, सत्य, क्षमा, दया, दान, तप एवम् वाणी में मधुरता यह सब गुण विद्यमान थे किन्तु अब इनमें क्रोध की मात्रा बढ़ गई है और साथ में आलस्य, निद्रा, अप्रसन्नता, असन्तोष, कामुकता और विवेकहीनता आदि दुर्गुणों की प्रचुरता बढ़ गई है। इन सब कारणों से शरीर व चेहरे की कान्ति क्षीण हो रही है। परस्त्री-गमन और परस्त्री-हरण, जुआ, शराब, चोरी आदि दुर्गुण अधिक आ जाने से इनकी धार्मिक आस्था कम हो गई है, अतः मैं इनका परित्याग कर तुम्हारी ओर आ रही हूं।

हे इन्द्र क्योंकि अब तुम्हारे यहां धार्मिक भावना बढ़ गई है और मेरा जहां पर वास हो वहां आशा, श्रद्धा, धृति, शान्ति, जप, क्षमा-विनीति और संगीत यह 8 देवियाँ भी निवास करेंगी। इतना सुनकर इन्द्र ने उस शक्तिरूप लक्ष्मी का स्वागत किया। इसलिए हे ऋषियो बस उसी समय से संसार में धर्म तथा सुख-शान्ति की भावना भगवती लक्ष्मी की कृपा से जागृत हो गई है।

२६. वासना का दमन

न स स्वो दक्षो वरुण ध्रुतिः सा सुरा मन्युर्विभीदको अचित्तिः।
अस्ति ज्यायान् कनीयस उपारे स्वप्नश्चनेदनृतस्य प्रयोता॥

यह ऋग्वेद ७।८६।६ का मन्त्र है।

अर्थात् हे वरुण देव! जो मेरा अपना स्वरूप है, यह तो अनर्थ की ओर ले जाने वाला नहीं है। फिर क्या आपत्ति आ गई? अहो! यह मार्ग में पहाड़ बनकर खड़ी "ध्रुतिः" अर्थात् वासना है। इससे मेरी बुद्धि का ह्रास हो गया है, अपने मार्ग से भटक गया हूं। हे मेरे प्रियतम परमेश्वर वरुणदेव! मैं एक छोटा-सा, प्राणी हूं। रक्षक की भांति मेरा हाथ पकड़ और मुझे बचा ले। इस मन्त्र में ईश्वर को वरुण के नाम से पुकारा गया है। यह बार-बार वरुण शब्द क्यों आता है? वैदिक मन्त्रों में वरुण शब्द इसलिए आया है कि भक्त के मन में अब भक्ति की भावना जाग उठी है। भक्त के लिए ईश्वर से अधिक सुन्दर प्रेमी और कोई रहा ही नहीं। वरुण का अर्थ है— जिसे सर्वसुन्दर समझकर मनमोहक, महान् शक्तिशाली और सुख देने वाला समझकर वर लिया हो वह वरुण है। इसीलिये मन्त्र में कहा है— कब मिलोगे प्रियतम? कब?

श्रोतागणो, पिछली बार मैं आपको प्रभु-प्रेम और प्रभ-मिलन के विषय में बता रही थी कि गुरु और पिता के लिए जो प्रेम सन्तान के मन में उत्पन्न होता है उसे श्रद्धा कहते हैं। पति और पत्नी के अनुराग को प्रेम कहते हैं। माता-पिता और सन्तान के अनुराग को स्नेह कहते हैं और ईश्वर के लिए मानव हृदय में जो अनुराग उत्पन्न होता है उसे भक्ति कहते हैं। किन्तु यह भक्ति बहुत पुण्य-कर्म संचित किये हों तो मिलती है। भक्त बार-बार प्रभु से ही प्रभु-भक्ति की भिक्षा मांगता है किन्तु भक्त को प्रीतम मिलते नहीं। भक्त अपने मन में सोचता हुआ कहता है कि वह कौन-सी दीवार है जो तेरे और मेरे मध्य खड़ी है?

मैं तो आत्मा हूं। और यह आत्मा तो कभी अनर्थ की ओर ले जाता नहीं। फिर क्या बात है जो मुझे प्रभु के दर्शन नहीं होते। कौन है मेरा शत्रु जो मुझे आपसे दूर रखे हुए है। मन्त्र में उत्तर मिलता है "ध्रुतिः" अर्थात् बुद्धि को दूषित करने वाली यह वासना ही सब से बड़ी रुकावट है। फिर वही प्रश्न। फिर वही शब्द 'वासना'। यह शब्द 'वासना' क्या है? वासना वह है जो भावना बनकर सूक्ष्म शरीर में इच्छा का रूप धारण करके रहती है। इसलिए महर्षि वसिष्ठ ने योगवसिष्ठ में कहा है—

वासना द्विविधा प्रोक्ता शुद्धा च मलिना तथा।
मलिना जन्मनो हेतुः शुद्धा जन्मविनाशिनी॥

अर्थात् वासना का पूर्णरूपेण विनाश होने के पश्चात् ही वह भक्ति मिलती है, जिसे अज्ञान की मैल धोने के पश्चात् ज्ञानी लोग प्राप्त करते हैं। जैसे सर्दी की ऋतु समाप्त हो जाने के बाद पर्वत की बर्फ स्वयमेव पिघल जाती है, उसी प्रकार वासना के समाप्त हो जाने पर यह चित्त भी नष्ट हो जाता है जिसमें वासना रहती है। इस चित्त-वासना के कारण ही तो आत्मा को बार-बार यह शरीर मिलता है। जिस प्रकार मोतियों की माला मोतियों में पिरोये गए धागे के कारण ही स्थिर रहती है, इसी प्रकार यह शरीर भी वासना के कारण स्थिर है। यह वासना दो प्रकार की होती है, एक शुद्ध और दूसरी मलिन। मलिन वासना से बार-बार जन्म होता है और शुद्ध वासना से जन्म-मरण का बन्धन ही समाप्त हो जाता है। तो यह मलिन वासना जो जन्म-जन्म से आत्मा के साथ चलती हुई बार-बार नये-नये शरीर को धारण कराती हुई नये-नये बन्धन जगाती, नये जंजालों में फंसाती है, यही है सब से बड़ी रुकावट।

वासना का अर्थ है 'वास', वास कहते हैं बस जाने को। जो बस जाती है और बसा देती है उसे वासना कहते हैं। आप कुछ सुगन्धित फूलों को एक जगह रख दीजिये, कुछ देर पड़ा रहने दीजिये, फिर फेंक दीजिये। फूलों के दूर फेंकने पर भी फूलों की सुगन्ध उस जगह पर रह जाएगी। फूल तो चले गए किन्तु अपनी वास उस स्थान पर

छोड़ गए। उसी प्रकार यह कर्म अपनी एक वासना चित्त में छोड़ जाता है। उत्तम कर्म कीजिये तो एक सफेदी-सी कर्म के पश्चात् रह जाती है, उसे हम पुण्य कहते हैं। बुरा कर्म कीजिये तो एक स्याही-सी रह जाती है, उसे हम पाप कहते हैं। और यही पुण्य और पाप दोनों वासना बनकर चित्त में रहते हैं। जैसे सुगन्ध या दुर्गन्ध अपने जन्म के कारण का नाश होने के पश्चात् भी रहती है, उसी प्रकार कर्म का फल मिलने के पश्चात् वासना चित्त में बैठी रह जाती है। आत्मा, आप सभी जानते हैं कि स्थूल नहीं सूक्ष्म है। थोड़ी देर के लिए कल्पना कर लीजिए कि यह आत्मा स्थूल है तो यह बात और अच्छी तरह समझ में आजाएगी।

हम एक कर्म करते हैं उसका फल हमें मिलता है परन्तु उसके कर्म का अन्त तो नहीं हो पाता। कर्म और फल दोनों के कारण चित्त में एक रेखा सी पड़ जाती है और इसी रेखा के कारण, उसकी प्रेरणा से आत्मा फिर उसी कर्म को करना चाहता है। यह चाहना ही तो वासना है। इसके कारण ही फिर उसी कर्म को करता है, फिर फल को पाता है, चित्त की रेखा पहले से और अधिक गहरी हो जाती है। उसके कारण वासना और अधिक प्रबल हो उठती है। और इसी प्रकार कर्म और कर्म के फल पर जन्म और मृत्यु का चक्र चलता रहता है।

इस वासना के चार कारण हैं— हेतु, फल, आश्रय और आलम्बन। हेतु का अर्थ है वह कारण जिससे कर्म का जन्म होता है, चाहे वह शुभ हो चाहे अशुभ। आश्रय का अर्थ है वह स्थान जहां वासना रहती है। फल वह है जो कर्म के द्वारा प्राप्त होता है और आलम्बन का अर्थ है सहारा। और ये सहारे कौन हैं हमारी इन्द्रियों की विषय वासना। इन इन्द्रियों को ही लाठी बनाकर यह पंगु यानी कि लंगड़ी वासना आगे बढ़ती है जिससे कर्म का बन्धन और भी दृढ़ होता जाता है और यह जन्म-मरण का चक्र समाप्त होने में ही नहीं आता। अब सीधी-सी बात है यदि इस वासना को समाप्त करना है तो इन चारों कारणों को समाप्त कर दीजिये। आप कहेंगे कैसे अनहोनी बात कर दी है। वासना का सब से पहला कारण तो कर्म है। कर्म के बिना मनुष्य रहेगा

कैसे? आपका सोचना यथार्थ है क्योंकि कर्म के बिना कोई भी रहता नहीं। भगवान् कृष्ण ने भी अर्जुन के यह प्रश्न करने पर कि कर्म और संन्यास में कौन अधिक श्रेष्ठ है। श्रीभगवद् गीता में कृष्ण जी ने उत्तर दिया है—

संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ।
तयोस्तु कर्मसंन्यासात् कर्मयोगो विशिष्यते॥

अर्थात् संन्यास और कर्मयोग दोनों में अधिक कल्याणकारी, अधिक श्रेष्ठ कर्मयोग है। कर्म के बिना वास्तव में कोई रहता भी नहीं। इसलिए श्रीभगवद् गीता में आगे कहा है कि—

अन्नाद् भवन्ति भूतानि पर्जन्याद् अन्नसम्भवः।
यज्ञाद् भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः॥

अर्थात् ये सभी प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं और अन्न बादल से उत्पन्न होता है और बादल यज्ञ से उत्पन्न होते हैं और यज्ञ कर्म से उत्पन्न होता है। अब कर्म से तो छुटकारा वास्तव में है ही नहीं तब वासना के लिए इस सब से पहला कारण कर्म को समाप्त करें तो किस प्रकार। इसका भी उत्तर देते हुए भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में कहा—

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्याज्यमात्मशुद्धये॥

योगी लोग भी कर्म करते हैं, शरीर और इन्द्रियों से, बुद्धि से किन्तु अपनी आत्मा की शुद्धि के लिए संग को त्यागकर। इन्हीं की भांति तू भी कर्म कर। किन्तु यह 'संग' को त्यागना क्या है? इसका उत्तर भी श्रीकृष्ण जी ने दिया—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गो अस्त्वकर्मणि॥

अर्थात् कर्म करो अवश्य, परन्तु ध्यान रखो तुम्हारा अधिकार केवल कर्म करने पर है, उनके फल की चिन्ता करने में नहीं। अतः फल

की इच्छा से कर्म न करो। इसी बात को गीता में भगवान् कृष्ण ने फिर दोहराया है कि—

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा।
इति मां योऽभिजानाति, कर्मभिर्न स बध्यते॥

कर्म के फल की मुझे इच्छा नहीं इसीलिए कर्म मुझ में लिपट नहीं सकते। ऐसा जानकर जो कर्म करता है उसे कर्मों का बन्धन कभी बांधता नहीं। इसी कर्म के विषय में वेद भगवान् ने यजुर्वेद में कहा है—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतः समाः।
एवम् त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥

अर्थात् इस संसार में मनुष्य यदि वेद के बताए हुए निष्काम कर्मों को करता हुआ सौ वर्ष जिए तो भी कर्म उसे लिपटता नहीं। निष्काम शब्द का अर्थ है ऐसा कर्म जो आत्मभावना से नहीं किन्तु परमार्थ के लिए किया जाए। परमार्थ क्या है। वह कर्म जो सच्चे हृदय से फल की इच्छा के बिना दूसरों की भलाई के लिए किया जाए। जैसे—

तरुवर फले न आपको, नदी न पीवे नीर।
परमारथ के कारने, सन्तन धरा शरीर॥

जैसे महर्षि दयानन्द जी कर्म करते रहे। कर्म के विषय में महर्षि के जीवन की एक घटना आपको सुनाती हूं। घोर और कठिन तप के पश्चात् जब महर्षि दयानन्द जी के लिए मुक्ति का द्वार खुल गया तो उन्होंने सोचा कि अब इस शरीर को जीवित रखने का कोई लाभ नहीं। वह पहाड़ की ऊंची चोटी पर पहुंचे, इस इच्छा से कि चोटी से कूदकर प्राण त्याग देंगे, परन्तु तभी अन्तरात्मा की आवाज आई— "दयानन्द, यह क्या कर रहे हो? अपने लिए मोक्ष का द्वार खुल गया तो क्या इससे तुम्हें शान्ति मिल गई? नीचे जलते हुए इस संसार को देखो। ये अग्नि की लपटें, ज्वालाओं के समुद्र, क्या इन करोड़ों लोगों पर तुम्हें दया नहीं आती। क्या उनके सम्बन्ध में तुम्हारा कोई कर्तव्य नहीं? आगे बढ़ और इस अग्नि को शान्त करने का प्रयत्न कर। तभी हृदय की दूसरी आवाज ने सोचा— मैं एक छोटी-सी बूंद इस विशाल ज्वाला

को कैसे बुझा पाऊंगा, किन्तु फिर अन्तरात्मा की आवाज गरजी और
अधिकार से बोली— यह अग्नि बुझे या ना बुझे तुम्हारा कर्तव्य है इसे बुझाने का यत्न करो। भले ही ऐसा करते हुए राख हो जाओ।" यह है निष्काम कर्तव्य कर्म। परन्तु यह भावना उस समय जागती है जब हृदय में विश्वप्रेम की भावना जागृत हो— "वसुधैव कुटुम्बकम्" अर्थात् सारी पृथिवी को अपना ही परिवार मानो। संसार का दुःख तुम्हारा दुःख हो। संसार के आंसू तुम्हारी आंखों से बहें। जब ऐसा हो तो प्रभुदर्शन होते हैं अवश्य। क्यों वह तो कहीं दूर नहीं। वह तो सब से अधिक निकट है। हर ओर, हर समय, प्रत्येक स्थान पर है। इसलिए इस प्यार की भावना को जगाकर 'ओ३म्' का जाप करो। ओ३म् के अक्षर को अपनी भृकुटि में देखने का प्रयत्न करो। धीरे-धीरे वहां प्रकाश जागेगा। वह प्रकाश ही निरन्तर अभ्यास से उस परमानन्द को प्रकट करेगा, जिसको आज तक कोई वर्णन नहीं कर सका। जो अनुराग उत्पन्न होता है उसे प्रेम कहते हैं। सन्तान के लिए माता-पिता के हृदय में जो अनुराग जागता है उसे स्नेह कहते हैं। और ईश्वर के लिए मानव हृदय में जो अनुराग उत्पन्न होता है उसे भक्ति कहते हैं।

ईश्वर की सत्ता का अनुभव करने वाला उपासक किसी से डरता नहीं।

हमारे साथ है प्यारा हमारा, देखें हम औरों का फिर क्यों सहारा।
हमारे जीवन का है वो सहारा, हमारी मृत्यु में भी वह हमारा॥

हर इक गुल में तुझ को खिला देखते हैं।
चमकता सितारों में है नूर तेरा।
महो-खुर में तेरी जचा देखते हैं॥

नक्षत्रों में तेरी ही ज्योति चमकती है। सूर्य और चन्द्र में तेरा ही प्रकाश चमकता है।

सामवेद— **नि होता सत्सि बर्हिषि।**

जिस हृदय मन्दिर से पाप-वासना, अज्ञान और अन्धकार नष्ट हो गए हैं, उस मन-मन्दिर में प्रभु के दर्शन होते हैं। उसे बाहर जाकर ढूंढ़ने की आवश्यकता नहीं, अपने हृदय की गुफाओं में ढूंढ।

दिल के आईने में है तस्वीरे चार
जब ज़रा गर्दन झुकाई देखली॥

२७. प्रभु-कृपा किसको?

प्यारे श्रोतागणो! आज से **नवरात्र** का प्रारम्भ है, आप सब को इस शक्ति पुञ्ज नवरात्र की बहुत-बहुत बधाई हो।

पिछले लगातार कई प्रवचनों द्वारा मैं उपनिषद्ों के सन्देशों को आपको सुनाने का प्रयत्न कर रही थी। सम्पूर्ण उपनिषदों का सार और सन्देश यह था कि— ईश्वर को जाने बिना, उस परम ब्रह्म परमात्मा को पाये बिना यदि यह शरीर छूट गया तो अति विनाश की बात है। यह मानव शरीर ही वह शरीर है जिसमें ईश्वर को जाना जा सकता है। यदि वह छूट जाए तो फिर 84 लाख का चक्र आरम्भ हो जाता है। इसके बाद उपनिषद् से ही मैंने आपको बताया कि उस परब्रह्म का दर्शन तब तक नहीं होता जब तक कि वे स्वयं ही कृपा न करें। फिर यह भी बताया था कि किन लोगों को यह कृपा प्राप्त नहीं होती— वे लोग जिन्होंने बुरे चलन का त्याग नहीं किया, वे लोग जिन्होंने इन्द्रियों पर संयम नहीं किया, वे जिनके चित्त में एकाग्रता नहीं आई, वे जिन्होंने तृष्णा का त्याग नहीं किया और अन्त में वे जिन्होंने प्रज्ञान अर्थात् इन्द्र को, ज्ञान को, आत्मज्ञान को प्राप्त नहीं किया।

फिर उपनिषदों से ही मैंने आपको बताया था कि यह कृपा किनको मिलती है— उन्हें जो सत्य के मार्ग पर चलते हैं, जिनका आहार सत्य, व्यवहार सत्य, वचन सत्य, और आधार सत्य है। उन्हें जो तप के मार्ग पर चलते हैं, और जो द्वन्द्व अर्थात् सुख और दुःख में, सर्दी और गर्मी में सम्पत्ति और विपत्ति में, मान और अपमान में, फूलों की सेज पर अथवा कांटों की शय्या पर प्रत्येक अवस्था में धैर्यपूर्वक चलते हैं। गत शुक्रवार को एक सज्जन ने मुझे फोन किया और बोले कि आप जो रेडियो पर बोलती हैं कुछ-कुछ बातें हमारी समझ में नहीं आई हैं और कुछ शंकाएं भी हैं। मैंने उनसे पूछा— कौन-सी बात समझ में नहीं आई है तो वे बोले? 'तप' क्या है। यह बात अभी तक समझ में नहीं आई है। तो सुनिए, आपको बताती हूं कि तप का अर्थ क्या

है? तप का अर्थ है "सहनशीलता"। यदि कोई प्रशंसा करे तो फूलकर कुप्पा नहीं हो जाना और यदि गालियां दे तो सूखकर कांटा मत हो जाना। दोनों ही अवस्था में एक समान रहने का नाम है— सहनशीलता। और जिस व्यक्ति में यह सहनशीलता उत्पन्न हो जाती है उसके जीवन में एक अनोखी मिठास, एक अद्भुत सन्तोष और एक विचित्र प्रकाश आ जाता है। तब उस प्रकाश में हमें .वो ब्रह्मानन्द प्राप्त होता है जो स्व-रक्षा को प्रभु पर छोड़कर पर-रक्षा और दूसरे के परोपकार की बात पर आनन्द मिलने लगता है। कैसे सुनिये—वन में बैठे थे महाराज युधिष्ठिर प्रभु ध्यान में मगन थे। पास ही द्रौपदी भी बैठी थी। युधिष्ठिर जब ध्यान से उठे तो द्रौपदी ने उनसे कहा— "महाराज, इतना भजन आप भगवान् का करते हैं, घण्टों ही उसके ध्यान में बैठे रहते हैं, तो अपने उस भगवान् से क्यों नहीं कहते कि इन संकटों को दूर कर दे? जैसा कि आजकल कई लोग मुझ से भी यही कहते हैं। खैर, छोड़िये। द्रौपदी बोली— इतने वर्षों से. पाण्डव वन में भटक रहे हैं। इतना कष्ट होता है। इतना क्लेश। कहीं पथरों की शय्या पर सोना पड़ता है, कहीं कांटों की। कभी प्यास बुझाने के लिए पानी नहीं मिलता तो कभी भूख मिटाने को खाना नहीं। फिर आप अपने भगवान् से क्यों नहीं कहते कि इन कष्टों का अन्त कर दें? महाराज युधिष्ठिर बोले—

सुनो द्रौपदी, मैं भगवान् का भजन करता हूं तो सौदे के लिए नहीं। मैं भजन करता हूं केवल इसलिए कि भजन करने में आनन्द मिलता है। उस सामने फैली हुई हिम सुन्दर पर्वतमाला को देखो। उसे देखते ही मन प्रफुल्लित हो जाता है। हम उससे कुछ मांगते नहीं। हम उसे देखते हैं इसलिए कि देखने से हमें प्रसन्नता होती है। और इसी प्रसन्नता को पाने के लिए मैं भगवान् का भजन करता हूं, तप करता हूं।"

तप के विषय में दूसरी कथा सुनिये। आर्यसमाज के संस्थापक— यहां मैंने संस्थापक शब्द प्रयोग किया है— स्थापक नहीं। क्योंकि महर्षि दयानन्द जी ने आर्यसमाज की स्थापना संस्कृति और धर्म को ऊंचा उठाने के लिए की थी। उसे गिराने के लिए नहीं संसार भर के आर्यसमाजियों

को यह जानना चाहिये, क्योंकि इस सप्ताह में सारे विश्व के आर्यसमाज, आर्यसमाज स्थापना दिवस, मनाने वाले हैं। हां तो एक बार महर्षि दयानन्द फर्रुखाबाद गंगा के तट पर ठहरे हुए थे। उनसे थोड़ी ही दूर एक कुटिया में दूसरा साधु भी ठहरा हुआ था। वह साधु प्रतिदिन देव दयानन्द की कुटिया के पास आकर उन्हें गालियाँ देता था। एक-एक घण्टा उनके समक्ष खड़ा रहकर गालियां देता और देव दयानन्द सुनते रहते और केवल मुस्कुरा देते। कई बार दयानन्द जी के भक्तों ने कहा — महाराज आपकी आज्ञा हो तो इस दुष्ट साधु संन्यासी को सीधा कर दें। देव दयानन्द सदा कहते— नहीं वह स्वयम् ही सीधा हो जाएगा। एक दिन महर्षि के एक भक्त ने फलों से भरा हुआ टोकरा महर्षि के पास भेजा।

महर्षि ने टोकरे में से अच्छे-अच्छे फल निकाले और उनको एक कपड़े में बांधा। एक भक्त से बोले— ओ, ये फल उस साधु को दे आओ जो परली कुटिया में रहता है और जो प्रतिदिन यहां आकर कृपा करता है। वह भक्त बोला— किन्तु वह दुष्ट साधु तो आपको गालियां देता है। महर्षि बोले, हां हां, उसी साधु को दे आओ। वह भक्त फल लेकर साधु की कुटिया पर पहुंचा और बोला—साधु बाबा! ये फल स्वामी दयानन्द जी ने आपके लिए दिये हैं। साधु ने जैसे स्वामी दयानन्द का नाम सुना और क्रोध से बोला— अरे दुष्ट, यह प्रातःकाल किसका नाम ले लिया तूने? पता नहीं आज भोजन मिलेगा या नहीं। जा, चला जा यहां से। ये फल मेरे लिए नहीं किसी दूसरे के लिए भेजे होंगे, मैं तो प्रतिदिन सामने खड़े होकर गालियां देता हूं फिर मेरे लिए फल क्यों? भक्त ने लौटकर महर्षि दयानन्द को सारी बात सुनादी।

महर्षि दयानन्द उस भक्त से बड़े प्यार से बोले— भक्त नहीं। तुम फिर उस साधु के पास जाओ और उससे कहो कि साधु महाराज, आप जो प्रतिदिन यहां आकर गालियों रूपी अमृत की वर्षा करते हो उसमें आपकी मेहनत और पर्याप्त शक्ति लगती है। ये फल इसीलिए आपको भेजे हैं कि इन्हें खाइये, इनका रस पीजिये जिससे आपकी शक्ति बनी रहे, आपकी गालियों रूपी अमृत वर्षा में कमी न आ जाए।

साधु कुछ देर के लिए मौन हो गया, पांव तले से धरती खिसक गई, साधु के ऊपर घड़ों पानी पड़ गया। वह अपनी कुटिया से दौड़ता हुआ निकला और महर्षि के पास पहुंचा, उनके चरणों पर गिर पड़ा और गिड़गिड़ाते हुए बोला— महाराज, क्षमा करो मुझे। मैंने आपको मनुष्य समझा था परन्तु आप तो देवता हैं देवता। यह है सहनशक्ति का जादू, आत्मा का तप। इसीलिए महर्षि दयानन्द जी को देव दयानन्द के नाम से भी पुकारा जाता है।

यह तप, यह सहनशीलता की जादू की शक्ति बुरे से बुरे व्यक्ति को भी बदल देती है। श्रोतागणो सन्त सुकरात का नाम तो आपने सुना ही होगा। बहुत ही श्रेष्ठ उच्चकोटि के सन्त व महात्मा थे वह। दुर्भाग्य से एक ऐसी स्त्री के साथ उनका विवाह हो गया जो बड़ी ताड़का थी। सर्वदा क्रोधित रहती थी, माथे पर त्यौरियां आंखों में क्रोध की आग और होठों पर गालियों की बरसात। इतने अधिक बड़े सन्त सुकरात पर जुल्म करती थी कि घबराकर एक दिन सन्त सुकरात के शिष्यों ने कहा–गुरु जी ये कैसा महान् संकट आपने अपने पल्ले बांध रखा है?

इसे छोड़िये। हम आपका दूसरा विवाह करवा देते हैं। सन्त सुकरात ने गम्भीरता से उत्तर दिया— नहीं, ऐसी बात भविष्य में भूलकर भी मत कहना। यह मेरी परम प्रिय आदरणीय पत्नी तो मेरी परीक्षा का साधन है। यह मेरी उस परीक्षा का साधन है कि मैंने क्रोध पर नियन्त्रण पाया है कि नहीं। मेरे अन्दर सहनशीलता की अग्नि में तप करने की शक्ति है कि नहीं। यह पत्नी मुझे बहुत पसन्द है दूसरी नहीं चाहिए। एक दिन की बात है कि सन्त सुकरात बाहर से घर लौटे और प्रतिदिन की भांति वे अपने कमरे में गए और एक पुस्तक उठाकर पढ़ने लगे। पत्नी ने उन्हें पुस्तक पढ़ते देखा तो उसकी क्रोधाग्नि भड़क उठी। गुस्से में बड़बड़ाती हुई बोली— बस, बाहर से आते ही पुस्तक उठाकर बैठ गए, जैसे मुझ से नहीं इस किताब से ही आपका विवाह हुआ है। दो–चार गालियां भी दीं पत्नी ने। सन्त सुकरात ने कोई उत्तर नहीं दिया, शान्ति से पुस्तक पढ़ते रहे। किन्तु इस शान्ति से तो देवी जी का पारा

और चढ़ गया। दनदनाती हुई कमरे में पहुंची, पुस्तक छीनी और परे फेंक दी। सन्त सुकरात फिर भी कुछ नहीं बोले। उन्होंने दूसरी पुस्तक उठाई और पढ़ने लगे। देवी जी ने जब यह देखा तो गालियों के बांध का द्वार खोल दिया। गालियों की हरहराती हुई बाढ़ गंगा बह निकली, परन्तु सन्त सुकरात फिर भी चुप रहे जैसे कि कुछ सुना ही नहीं। देवी जी ने फिर दूसरी पुस्तक को पकड़ा और उठाकर बाहर फेंक दिया। फिर भी सन्त सुकरात मुस्कुराते रहे, किया कुछ भी नहीं। अब तो पत्नी का पारा 106-107 डिग्री तक पहुंच गया।

वह बाहर गली में गई। वहां सड़ा हुआ कीचड़ पड़ा था उसे उठा लाई। पानी में कीचड़ घोला और तीव्रता से यह सारा कीचड़ भरा पानी सन्त सुकरात के ऊपर उंड़ेल दिया। तब महात्मा सुकरात ने हंसकर कहा— पत्नी जी, हम ने तो पढ़ा और सुना था कि जो गर्जते हैं वो बरसते नहीं, किन्तु आज तो आपने यह दिखा दिया कि गर्जने वाले बरसते भी हैं। देवी जी ने जब यह सुना तो उसकी आंखें खुल गईं। महात्मा के चरणों पर गिर पड़ी। बोली — महात्मन्, मुझे क्षमा करो। मैंने आज तक आपको पहचाना नहीं था। देखा, जादू है जादू यह सहनशीलता। इससे वह लोग भी बदल जाते हैं जो किसी उपदेश से नहीं बदलते। जिन परिवारों में सहनशीलता है, वहां दुःख और निर्धनता होने पर भी स्वर्ग बना रहता है और जहां यह सहनशक्ति नहीं है वहां स्वर्ग भी नरक में परिवर्तित हो जाता है। यह है तप की बात, उसका अर्थ और भाव।

किन्तु इसके विरुद्ध यदि आप तृष्णाओं की भीड़ लेकर भगवान् के दरबार में पहुंच जाएं तो भगवान् तो अर्न्तयामी है न, वह समझ जाता है और सोचता है आ गए भिखारी भीख मांगने के लिए। भक्त भजन, फल-पुष्प की रिश्वत देने आया है यह मुझे। इसे मुझ से प्यार नहीं है। ऐसी दशा में भगवान् क्या कृपा करेंगे। और कृपा न होगी तो वह आनन्द ब्रह्मानन्द कैसे मिलेगा, जो केवल उनकी कृपा से मिलता है।

२८. प्रेम की महिमा

प्यारे श्रोतागणो! गत मंगलवार को मैं आपको प्रेम के विषय में बता रही थी। आज उस विषय का अन्तिम भाग आपके सामने प्रस्तुत कर रही हूं। प्रेम कई प्रकार का होता है, स्व-प्रेम, पर-प्रेम समाज-प्रेम, देश-प्रेम, विश्व-प्रेम, धर्म-प्रेम। इन सब प्रेम के शब्दों के अलग-अलग अनुभव व अहसास हैं। जैसे— प्यार, स्नेह, मोह, अनुकम्पा, अनुराग और भक्ति। सब प्रकार के प्रेम की महिमा को आज तक विज्ञान एवम् संसार सिद्ध कर चुका है किन्तु धर्म-प्रेम अर्थात् भक्ति की अन्तिम सीढ़ी तक अभी तक किसी बुद्धिमान् व किसी वैज्ञानिक ने कदम नहीं रखा। बड़े-बड़े बुद्धिमान् व वैज्ञानिक चकित हैं कि वह प्रभु कितना महान् है, कितना अद्भुत है। किन्तु बुद्धि में वह प्रभु समाए भी कैसे? बुद्धि है सीमित और प्रभु है असीम। इसलिए ऋषि-मुनि उसे नेति-नेति कहकर पुकारते हैं। वैज्ञानिक भी चुप हो जाते हैं उसकी महिमा देखकर।

हजार साईन्स रंग लाएं हजार कानून हम बनाएं।
खुदा की कुदरत वही करेगी, हमारी हैरत यही रहेगी॥

वेद परमात्मा की अपनी वाणी है। इसलिए वेद से बढ़कर परमात्मा की कथा का वर्णन और कौन कर सकता है? यजुर्वेद में वेद ने स्वयम् कहा है—**पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।**

अर्थात् इस पुरुष परमेश्वर का सम्पूर्ण भूमण्डल यानि कि पृथिवी एक पांव है। सारा आकाश दूसरा पांव है, अर्थात् ईश्वरीय सृष्टि में प्रकाश्य जगत् एक गुणा है और प्रकाशक उसमें तीन गुणा है। और उस तीन गुणा प्रकाशक जगत् से भी ऊपर वह विष्णु सर्वव्यापक नारायण विराजमान है। यूं कहो कि वह असीम है। परन्तु मानव तो जमीन पर ही रहता है, तब इतनी ऊंची बातों से क्या लाभ? किन्तु प्रभु की महाशक्ति का पता कैसे लग सकेगा?

यह माना कि प्रभु के हुस्न का जलवा जमीं से आसमां तक है।
मगर देखना है मैंने कि मेरी नज़र कहां तक है?

तो आओ उस महान् प्रभु की गाथा अपनी सामर्थ्य के अन्दर ही सीमित रहने दें। भगवान् वेद इस नारायण के सम्बन्ध में ऋग्वेद में कहते हैं—

यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरम् उतेमाहुर्नैषो अस्तीत्येनम्।
यो अर्यः पुष्टीर्विज इवामिनाति श्रदस्मै धत्त स जनास इन्द्रः॥

अर्थात् जिसके विषय में यह भयंकर बात पूछते हैं कि वह कहां है। और निसंदेह कहते हैं कि वह नहीं है, वह शत्रु की पुष्टियों को खेल के शर्त की तरह जीत लेता है। उसके लिए प्रेम का वह रूप अपनाया जिसे श्रद्धा कहते हैं। हे मानव, वहीं शक्तिशाली नारायण है। ऋग्वेद में जिसे— "**येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि**" जिसने ये सब लोक गतिवाले बनाए हैं। और ऋग्वेद में फिर कहा है— "**यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद् यः पर्वतान् प्रकुपिताँ अरम्णात्।**" जिसने इस हिलती हुई पृथिवी को दृढ़ कियां, जिसने जोश में आए हुए पर्वतों को आराम दिया, जिसने सारे अन्तरिक्ष को नापा है, जिसने आकाश को सहारा दिया हुआ है। हे जनो वह ही इन्द्र है। ऐसा महान् प्रभु हमारी रक्षा करता है। वही सच्चे हृदय से निकली प्रार्थना को सुनता है, वह वरुण दुखियों की पुकार सुनकर उनके कष्ट हरता है। सामवेद के 346वें मन्त्र में कहा है— "**ओं श्रुधी हवं तिरश्च्या इन्द्र यस्त्वा सपर्यति।**" जो अपने आपको परमात्मा इन्द्र नारायण को अर्पण कर देता है और सिर्फ उसी की पूजा करता है। प्रभु अन्तर्ध्यान हुए उस भक्त की प्रार्थना को अवश्य ही सुनते हैं। ऋग्वेद २।२३।४ में यह आदेश है कि—

सुनीतिभिर्नयसि त्रायसे जनं यस्तुभ्यं दाशान्न तमंहो अश्नवत्।
अर्थात् हे बृहस्पति परमात्मा, नारायण! आप भक्तों-मनुष्यों को ठीक रास्ते पर और ठीक नीति पर ले जाते हो और उनकी रक्षा करते हो। जो भक्त अपने आपको आपके प्रति समर्पण करता है, उस भक्त को पाप छू नहीं सकता। ब्रह्मद्वेषियों को तू मन्यु से ठीक करता है, तेरी

महिमा अपार है। चारों वेद उसी नारायण की गाथा सुनाते हैं। किन्तु पूरी गाथा तो वेद के स्वाध्याय से ही सुनी जा सकती है। अब सुनिये, उपनिषत् के उन ऋषियों ने जिन्होंने उस नारायण के दर्शन पाए उनके अनुभव इस प्रकार हैं। कठोपनिषत् का ऋषि यह उपदेश देता है कि—

सारे संसार को वश में करने वाला वह "वशी" नारायण ही है। सब भूतों का अन्तरात्मा वही है। एक रूप को अनेकों में बसाने वाला वही है। वही आत्मस्थ है। आत्मा में बैठे हुए उस ब्रह्म प्रभु नारायण की जो छवि लोग देख लेते हैं उन्हें निरन्तर सुख प्राप्त होता है दूसरों को नहीं। नित्यों में वही एकमात्र नित्य है, चेतनों में वहीं चेतन है, अनेकों में वही एक है। एक होता हुआ भी सब की कामनाओं को पूर्ण करता है। किन्तु इसी कठोपनिषत् की दूसरी वल्ली में ऋषि बतलाता है कि उस नारायण का नाम क्या है। जिस पद का वेद बार-बार वर्णन करते हैं, तपस्वी जिसके लिए तप करते हैं, जिसकी चाहत में ब्रह्मचर्य धारण करते हैं संक्षेप में यह शब्द तुझे बताता हूं वह "ओ३म्" है। यह ओ३म् का अक्षर है किन्तु यही ब्रह्म है, यही सब से परे है, इसी अक्षर को जानकर जो कोई भी इच्छा रखता है वह पूर्ण होती है। इसलिए यह ओ३म् सब से श्रेष्ठ व सब से अन्तिम सहारा है। इसी सहारे को जानकर ब्रह्मलोक में मनुष्य महान् हो जाता है।

श्वेताश्वतरोपनिषद् में ऋषि नारायण का अनुभव स्पष्ट रूप से बताते हैं कि—संसार के मायाजाल को बिछाने वाला वही नारायण है, अपनी शक्तियों का, इस माया-जाल का वही स्वामी है, अपनी शक्तियों से सब लोकों का भी वही स्वामी है। संसार को उत्पन्न करने और स्थिति में वही एक कार्य कर रहा है, जो यह जान जाते हैं वह अमर हो जाते हैं। उसका कोई रूप नहीं, जो आंखों के सामने ठहरे। इसलिए श्री सत्यनारायण का व्रत लेने का मतलब यही है कि पूरे आस्तिक बनकर, प्रभु-आज्ञाओं का पालन करते हुए, उसी को अपना मित्र बनाकर, जीवन कर्तव्य पूर्ण किये जायें। परमात्मा ही एकमात्र सहारा है जो कभी धोखा नहीं देता। हर समय मानव यात्री के संग-संग रहता है। उसी

को अपनाने का व्रत यदि दुनिया के लोग ले लें तो निःसन्देह मानव दुःखों से बचा रहेगा। आज की दुनिया के कष्ट-क्लेशों का कारण यही है कि आज का मानव परमात्मा से विमुख हो गया है, केवल शरीररूपी माया ही उसके सामने रह गई है। श्री नारद जी को नारायण ने यही बताया था कि यदि दुनिया के लोग सत्यनारायण परमात्मा का व्रत ले लें तो सुख चैन की सांस लेने लगें। इसके बिना तो मानव जीवन नष्ट ही होता रहेगा।

किन्तु प्यारे श्रोतागणो, आप आजकल देखते हैं कि परमात्मा के भक्त ही आजकल अधिक दुःखी दिखाई देते हैं। मैं स्वयम् अपनी ही कहूं कि जितना अधिक भजन करती हूं, उतने ही कष्ट बढ़ते जाते हैं। आप पूछेंगे ऐसा यह क्यों? किन्तु जरा आप सोचिये, बिना कारण के तो कोई कार्य होता नहीं। सब से पहली बात तो है कि भोग तो सब को भोगने पड़ते हैं। भगवान् राम को भी 14 वर्ष जंगल में भटकना पड़ा था। सीता माता को भी रावण की कैद में रहना पड़ा। बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भी शारीरिक यातनाएं सहन करते रहे किन्तु इस भक्ति से सहनशक्ति आ जाती है, जो कष्ट और क्लेशों को सुगम बना देती है। और दूसरी बात यह है कि हम भक्ति नहीं दुकानदारी करते हैं। जो दुकानदार है, उसे यदि लाभ होता है तो उसे घाटे के लिए भी तैयार रहना चाहिए। इसी प्रकार कभी प्रभु-भजन से सुख मिल गया और कभी दुःख भी। तीसरी बात यह है कि हमारी भक्ति अनन्य भक्ति नहीं होती। नाम तो प्रभु का रटा जा रहा है वृत्ति कहीं और है। भक्ति तभी सफल होती है जब भक्त अपनी सुध-बुध खोकर तन्मय हो जाए। इस सम्बन्ध में आज आपको मैं इतिहास की एक सच्ची घटना सुनाती हूँ।

एक बार अकबर बादशाह दिन-भर यात्रा करते-करते दूर निकल गए। चलते-चलते नमाज का समय हो गया। तब मार्ग ही में एक ओर नमाज़ का वस्त्र बिछाकर दो-जानु हो गए। तभी उधर से एक नवयुवती अपने पतिदेव को खोजती आ रही थी। उसके पतिदेव प्रातः

के घर से [illegible] लौटे नहीं थे? वह सच्ची पतिव्रता देवी पति वियोग में उन्मत्त इधर-उधर दृष्टि डालती जा रही थी। अपने विचारों में इतनी मस्त कि उसे नमाज़ का कपड़ा भी नहीं दिखाई दिया। उसी पर पांव रखती हुई आगे बढ़ गई। अकबर बादशाह को उसकी इस गुस्ताखी पर बहुत क्रोध आया किन्तु नमाज पढ़ रहे थे इसीलिए चुप्पी साधे रहे। थोड़ी ही देर में जब वह युवती अपने पतिदेव के साथ लौट रही थी तब अकबर बादशाह उस पर क्रोधित होते हुए कहने लगे—तुझे दिखा नहीं मैं नमाज में अर्थात् प्रभु-भक्ति में था। तेरी जाए नमाज़ पर भी नज़र नहीं पड़ी और वहीं पर पांव रखती हुई चली गई।

युवती ने सुना और बड़े धैर्य से अकबर बादशाह को एक दोहा सुनाया—

नर-राची सूझी नहीं, तुम कस लख्यो सुजान।
कुरान पढ़त बौरे भयो नहिं राच्यो रहमान॥

अर्थात् हे अकबर बादशाह, मैं तो अपने पतिदेव की खोज में मगन थी, मुझे तो कुछ सूझता नहीं था। परन्तु तुम तो प्रभु-भजन में थे, तुमने मुझे कैसे देख लिया? मालूम होता है कि कुरान पढ़कर ही बौरा गए हो। भगवान् से अभी प्रीति नहीं हुई है। अकबर युवति का यह उत्तर सुनकर अवाक् चकित रह गया। और कहा जाता है कि अकबर बादशाह अक्सर लम्बी सांस लेकर बार-बार यही दोहा दोहराया करते थे। यदि ऐसे लोगों को कष्ट में देखा जाए तो आश्चर्य क्यों?

प्यारे श्रोतागणो! मैं सोच रही थी कि यह विषय आज ही समाप्त हो जाएगा किन्तु समय तो हर चीज का रहता है उसी प्रकार मेरा भी आज का समय समाप्त हो रहा है। अगले मंगलवार को इसी प्रवचन का शेष भाग एक नये रूप में प्रस्तुत करूंगी। तब तक के लिए अर्चना विद्यालंकार को आज्ञा दीजिये। आप सब को मेरी नमस्ते।

२९. मन की अवस्थाएँ

आप सब मेरी तरफ से नव-वर्ष की शुभ मंगल-कामनाएं स्वीकार करें। बीते हुए वर्ष में एक नई कड़ी जुड़ गई है वह है नया साल। इसी प्रकार पिछले साल मैं आपको मन के विषय को बता रही थी कि यह मन क्या है? उसी में नव-वर्ष की नई कड़ी जोड़ते हुए आपको बता रही हूं कि इस मन की कितनी अवस्थाएं हैं?

इस मन की 5 अवस्थाएँ हैं, **क्षिप्त, विक्षिप्त, मूढ़, एकाग्र और निरुद्ध।**

क्षिप्त अवस्था में यह मन संसार के धंधों में फंसा रहता है। मूढ़ अवस्था में वह मन मूर्ख व्यक्ति की भांति यह भूल जाता है कि उसे क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए? एकाग्र अवस्था में मन एक विन्दु पर जाकर एकाग्र हो जाता है। निरुद्ध मन की वह पांचवीं अवस्था है जब उसकी सभी वृत्तियां एक केन्द्र पर आकर रुक जाती हैं। वहां कोई हलचल नहीं रहती, कोई अशान्ति नहीं रहती। महर्षि पतञ्जलि ने मन की इस अवस्था को ही 'योग' कहा है। महर्षि पतञ्जलि नें योगदर्शन में लिखा है— **"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।"** अर्थात् चित्त की वृत्तियों को रोक देना ही योग है। ये है चित्त अर्थात् मन की पांच अवस्थाएं।

अब चित्त का स्वभाव सुनिये कि क्या है? चित्त का पहला स्वभाव है "प्रख्या" इसका अर्थ है कि देखी-सुनी बातों का बार-बार चिन्तन करना। इसका दूसरा स्वभाव है "प्रवृत्ति" अर्थात् देखी सुनी बातों के सम्बन्ध में बार-बार सोचने से उनकी ओर झुकाव हो जाना। और इसका तीसरा स्वभाव है "स्थिति" अर्थात् जिस बात की ओर झुकाव हुआ उसी में लगाव हो जाना, टिक जाना और ठहर जाना। किन्तु बीती बातों को बार-बार याद करना तो अच्छी बात नहीं है। ऐसे लोगों से आप मिलिये तो वे आपको अपने दुःख की कहानियाँ सुनायेंगे। वास्तव में

वह दुःख तो समाप्त हो चुका, परन्तु लोग उसे समाप्त होने देना नहीं चाहते। बार-बार उसकी कहानी दोहराते हैं, स्वयं भी दुःखी होते हैं दूसरों को भी दुःखी करते हैं। इसलिए उन लागों के लिए हमारे ऋषियों ने कहा है कि याद ही करना है तो भगवान् के किसी नाम को बार-बार याद करो। 'ओ३म्' का जाप करो। उसकी बातें सोचो जो सब को बनाने वाला है। इसलिए वेद भगवान् ने यजुर्वेद में कहा है कि "ओ३म् क्रतो स्मर।" अर्थात् हे कर्म करने वाले आत्मा ओ३म् को याद कर। चित्त के इस प्रख्या स्वभाव को बदल दीजिये तो यह ठीक मार्ग पर चलेगा। ठीक बात में इसकी स्थिति होगी उसमें यह टिकेगा। इस चित्त में जो वासना रहती है इसको बदल दीजिये। ऐसा बना दीजिये। कि इसमें कोई बुरी बात न रह सके तो बुरी वासना के लिए इसमें रहना असम्भव हो जाएगा। इसके सम्बन्ध में एक और बात भी आवश्यक है। व्यास मुनि जी ने चित्त का वर्णन करते-करते हुए कहा है कि **"एकमनेकार्थ मवस्थितं चित्तम्।"** अर्थात् यह मन एक होने पर भी अनेक बातों में चला जाता है। आप जाप तो कर रहे हैं "ओ३म्" का और यह मन महाराज चल पड़ते हैं कहीं और। यह मन तो है ही ऐसा बन्दर की भांति चंचल, परन्तु ऐसा होना नहीं चाहिए। क्योंकि—

माला तो कर में फिरे जीभ फिरे मुख मांहि।
मनीराम चहुं दिश फिरे, यह तो सुमिरन नाहीं॥

सचमुच यह तो भगवान् का स्मरण नहीं है। हाथ में प्रभु के नाम की माला के मोती फिसल रहे हैं और जिह्वा प्रभु का नाम कह रही है और यह मन महाराज Centrum में चक्कर लगा रहे हैं। इस प्रकार स्मरण नहीं होता, बहुत बड़ी रुकावट है यह, बहुत बड़ी हानि। परन्तु इस चित्त को रोकें किस प्रकार? इसका उत्तर भी महर्षि पतञ्जलि ने दिया है कि— **"तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः।"** इस रुकावट को हटाने के लिए एक तत्त्व का अर्थात् ब्रह्मतत्त्व का अभ्यास करो। लगातार ओ३म् का जाप करो। किसी भी प्रकार से करो। निरन्तर जाप करने से अन्त में कृपा होगी अवश्य—

ओम् का स्मरण नित्य कर, जिस विधि सिमरा जाय।
कभी तो दीनदयाल जी, बोलेंगे मुसकाय॥

उसकी कृपा अपार है, उसकी ओर से निराश न होओ। जो इतने बड़े संसार को उत्पन्न करता है, करोड़ों-अरबों सूर्य मण्डलों को बनाता है, जो प्रकाश देता है, वृष्टि करता है, पृथिवी की छाती में अन्न देता है, फलों में रस देता है, वह निश्चित रूप से तुम्हारी पुकार को भी सुनेगा। तुम पर भी कृपा करेगा। फल मिलेगा अवश्य—

तुलसी अपने राम को रीझ भजो या खीज।
भूमि पड़े उपजेंगे ही उलटे सीधे बीज॥

अर्थात् खेत में उल्टे-सीधे किसी भी प्रकार के बीज बोइये आखिर में उपजेंगे अवश्य। भृकुटि में, माथे में, नाक के ऊपर, दोनों आंखों के मध्य "ओ३म्" को देखने का प्रयत्न करो। उपनिषत् कहता है कि ईश्वर का कोई रूप रंग नहीं इसलिए ओ३म् के रूप में उसे भृकुटि में देखने का प्रयत्न करे। निरन्तर अभ्यास करने से यह चित्त रुकता है अवश्य। प्रभु-दर्शन के लिए मन की पहली रुकावट है वासना। इस वासना के विषय की कथा मैं आपको पहले ही सुना चुकी हूं कि नारद जी एक कन्या को देखते ही उसके रूप पर मोहित होकर किस प्रकार वासना के जाल में उलझते गए और अन्त में उन्हें मिला केवल विनाश। यह वासना जो आत्मा और परमात्मा के मध्य दीवार बनकर खड़ी हो जाती है। इससे जहां तक हो सके बचना चाहिए, क्योंकि यह वासना चित्त में बैठकर, इन्द्रियों का सहारा लेकर इस बेचारी आत्मा को जन्म-मरण के चक्र में घुमाती ही रहती है। बहुत भयानक है, मीठा जहर है यह। जब तक इसका नाश नहीं होगा दुःखों का नाश भी नहीं होगा। परन्तु यह स्वयम् तो समाप्त नहीं होती। इसकी भी तीन अवस्थाएं हैं जिनसे होकर बाहर निकलना पड़ता है।

पहली अवस्था है 'तत्त्वज्ञान' अर्थात् यह जानना कि ब्रह्म क्या है? प्रकृति क्या है? प्रकृति की ओर से हटकर ब्रह्म की ओर जाना। दूसरी अवस्था है 'मनोनाश' मन में उठते हुए संकल्प और विकल्प

को जहां से वे उत्पन्न हों वहीं समाप्त कर देना और तीसरी और अन्तिम अवस्था है— 'वासना-क्षय', किन्तु पहली दो अवस्थाओं को पार किये बिना वासना का अन्त कभी नहीं होता। ऋग्वेद में इस वासना को शराब कहा तो इसलिए कि शराब जिस प्रकार मस्तिष्क को खराब कर देती है उसी प्रकार यह वासना बुद्धि को भ्रष्ट कर देती है। उसे सात्त्विक बुद्धि कभी बनने नहीं देती। सदा कुबुद्धि बनाए रखती है।

शराब का अर्थ है— नशा, यह नशा केवल अंगूर के सड़े हुए रस में, भांग में, अफीम में ही नहीं अन्य वस्तुओं में भी होता है। किसी को जवानी का नशा है, किसी को धन का नशा है, किसी को राजगद्दी का नशा है, किसी को रूप और यौवन का नशा और किसी को कोरे ज्ञान का और यूनिवर्सिटी की डिग्रियों क़ा नशा है। पता नहीं डी० लिट्, डॉक्टरेट आदि कितनी ही डिग्रियां हैं। परन्तु यह सब के सब नशे बुद्धि को भ्रष्ट करने वाले हैं। इनसे अभिमान उत्पन्न होता है और इस अभिमान के उत्पन्न होते ही व्यक्ति डूब जाता है कि मैं बड़ा धनी हूँ। मैं बड़ा ज्ञानी हूँ। चाहे शब्दाडम्बरों के अतिरिक्त और कुछ न हो, फिर भी अभिमान। यह अति भयंकर है—

लेने को हरी नाम है, देने को कुछ दान।
तारन को है नम्रता, डूबन को अभिमान॥

प्रत्येक वस्तु अभिमान के नशे को उत्पन्न करती है। धन या सोने के सम्बन्ध में महाकवि बिहारी जी ने अति सुन्दर बात कही है कि—

कनक कनक ते सौ गुनी मादकता अधिकाय।
वह खाए बौरात है, यह पाये बौरात॥

यहां दो बार कनक शब्द आया है एक कनक सुवर्ण को कहते हैं और दूसरा कनक धतूरे को। अर्थात् धतूरे को खाने के बाद मनुष्य पागल हो जाता है। यह सम्पत्ति ऐसा अभिमान उत्पन्न करती है कि धन के अतिरिक्त फिर और कुछ सूझता ही नहीं। आत्मा भी कुछ है, ईश्वर भी कुछ है, यह उसे स्मरण ही नहीं रहता। यहां तक कि धन के नशे में वह अपनी मनुष्यता भी खो बैठती है—

जफर आदमी उसको न जानियेगा।
वो हो कैसा ही साहबे फ़हमो ज़क॥
जिसे ऐश में यादे-खुदा न रही।
जिसे तैश में खौफे खुदा ना रहा॥

अतः सम्पत्ति में विलासिता होती है, क्रोध होता है। अभिमान के कारण प्रभु-स्मरण नहीं हो पाता। इसलिए ये 'दौलत' है दो लातों वाली। जब आती है तो एक लात मनुष्य की छाती पर मारती है और वह इस प्रकार अकड़ जाता है कि अपने अतिरिक्त उसे कुछ दिखाई नहीं देता। जब जाती है तो दूसरी लात पीठ पर मारती है और मनुष्य इस प्रकार झुक जाता है जैसे उसकी कमर टूट गई है। संसार ही समाप्त हो गया है, किन्तु दौलत के आने-जाने से संसार समाप्त नहीं हो जाता। दौलत को ही संसार का सुख समझने वाले लोग उस यात्री की भांति हैं जो डूबती नौका में बैठा हो। जैसे—

कोई सोता हो डूबती किश्ती के तख्ते पर।
अगर कुछ है तो बस इतनी ही इस दुनिया में राहत है॥

हां, उन व्यक्तियों के संसार का सुख केवल सम्पत्ति ही है अन्यथा आत्मा का संसार बहुत विशाल है, किन्तु प्रकृति के जाल में फंसा मनुष्य उसे समझ नहीं पाता। उसकी दशा यह है कि—

सुनी हिकायते हस्ती तो भरमियां से सुनी।
न इब्तिदा की खबर है, न इन्तहा मालूम॥

किन्तु इस मन के एक शत्रु तो नहीं। प्रभु-दर्शन में दूसरी सब से बड़ी रुकावट है क्रोध जो गलत स्थान पर प्रयोग किया गया हो। आप कितना भी जप कर लीजिये, तप कर लीजिये परन्तु यदि अपने क्रोध पर आपका नियन्त्रण नहीं तो फिर यह जप, तप, योग, ध्यान सब व्यर्थ हैं। क्रोध करने वाला क्या करता है ज़रा ध्यान से सुनिये। एक कमरा है। आपने उसे बड़े यत्न से साफ किया और प्रयत्न से उसे सजाया। एक सुन्दर सुनहरा सोफा रख दिया, जमीन पर काश्मीर का कार्पेट बिछा दिया। खिड़कियों पर कोमल रेशम के पर्दे लटका

दिये। दीवारों पर बहुमूल्य चित्र सजा दिये। फूलों के सुगन्धित गुलदस्ते रख दिये। एक-एक स्थान को आपने घूर-घूरकर देखा कि कहीं कोई धूल तो नहीं रह गई है। इतने खूबसूरत सुसज्जित कमरे में बाद में अपने ही हाथ से आग लगा दी तो क्या होगा कि जो कुछ आपने परिश्रम किया सब व्यर्थ गया। यह क्रोध भी वह अग्नि है जो सारे जप, तप, ज्ञान, ध्यान और योग-साधन को जलाकर राख कर देती है। क्रोध की अग्नि मस्तिष्क के उन सूक्ष्म तन्तुओं को जला देती है, जो सारे शरीर को चलाते हैं। जब कण्ट्रोलर का ऑफिस ही जल गया तब नगर का क्या होगा? इसलिए क्रोध से बचो। आजकल विज्ञान ने खोज की है जो व्यक्ति निरन्तर क्रोध करता है उसके रक्त में एक भयानक विष उत्पन्न हो जाता है जिससे त्वचा की बहुत-सी बीमारियां हो जाती हैं। इसलिए कहा है—

जल से पतला ज्ञान है पाप भूमि से भारी।
क्रोध अगन से तेज़ है और कलंक काजल से कारी॥

परन्तु आप सोच रहे होंगे मैं आपसे कह रही हूं क्रोध से बचो किन्तु वेद तो कहता है कि— भगवान्, तू हम को क्रोध दे, क्रोध दे। मन्त्र है—

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि, वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि।
बलमसि बलं मयि धेहि, ओजोऽसि ओजो मयि धेहि।
मन्युरसि मन्युं मयि धेहि। सहोऽसि सहो मयि धेहि॥

वेद ने कहा— तू मन्यु है, क्रोध है, मुझे क्रोध दे। परन्तु मन्त्र में यह क्रोध मांगा किसलिये? क्या अपना घर जलाने के लिए? नहीं, अन्याय के लिए, अत्याचार के लिए, पाप के लिए, अनाचार के लिए किया गया क्रोध अति उत्तम है जो कि धमनियों में बहते हुए पानी को भी उचित क्रोध से रक्त बना देता है। एक छोटी-सी घटना सुनाती हूं। जब भारत आजाद हुआ, पाकिस्तान बना तो हैदराबाद जो भारत के पश्चिमी प्रान्त में है उसका निजाम कहने लगा कि मैं भारत में सम्मिलित होता हूं। बाद में कुछ लोगों के कहने पर निजाम और क़ासिम

रिज़वी दिल्ली के लाल किले पर झण्डा लहराने का स्वप्न देखने लगे। जब शान्ति से, प्यार से, प्रेरणा से, किसी भी विधि से निज़ाम सीधे रास्ते पर नहीं आया तो तब भारत के लौह पुरुष वल्लभभाई पटेल का क्रोध जागा और आज्ञा दी कि पुलिस (Action) कर दो। तभी वहां के भारतीय (Captain) महाजन बोले कि वह कल भारतीय सेना लेकर हैदराबाद पर आक्रमण करेंगे।

उन्होंने महात्मा आनन्द स्वामी महाराज को बुलाया कि आप वेद मन्त्र पढ़िये। स्वामी जी के वेद मन्त्रों के पाठ के बाद कैप्टन महाजन बोले कि अब आक्रमण करो, ईश्वर हमारे साथ है। वह हमारे देश को विजय देगा। आरम्भ हो गई चढ़ाई, कहीं कोई रुकावट नहीं। भारतीय सेना जब हैदराबाद पहुंची तो वहां के निजाम फूलों की माला लिये उनका स्वागत करने आ गए और बोले— मैं तो आप ही की प्रतीक्षा कर रहा था। हैदराबाद तो भारत का ही अंग है जैसा आप कहेंगे वैसा ही मैं करूंगा। यह है उचित क्रोध, देश की रक्षा के लिए, धर्म जाति की रक्षा के लिए किया जाए। यह क्रोध प्रभु-दर्शन के मार्ग में रुकावट नहीं है। आत्म-दर्शन के मार्ग में रुकावट है, वह क्रोध जो घर में किया जाए, अपने स्वार्थ के लिए किया जाए। ऐसा क्रोध घर का, परिवार का, जाति का, देश का, सब का नाश कर देता है। ऐसा क्रोध बुद्धि को नष्ट करता है। बुद्धि के नाश होने से सर्वनाश होता है— **विनाशकाले विपरीतबुद्धिः**। विनाश का समय जब आता है तो बुद्धि मारी जाती है और तब यह क्रोधरूपी शराब भक्त और भगवान् के मध्य दीवार बनकर खड़ी हो जाती है। वेद ने क्रोध की इस दशा को विभेदक कहा है। यह तप और साधना के महल को जलाकर राख कर देता है।

तो प्यारे श्रोतागणो, मेरे इस प्रवचन को बकवास समझकर आप भी क्रोधित मत हो जाना। इसलिए प्यार से यह प्रवचन आज यहीं समाप्त करती हूँ। अगले मंगलवार को पुनः आपकी सेवा में उपस्थित होऊंगी। तब तक के लिए अर्चना को आज्ञा दीजिये। धन्यवाद।

३०. यजुर्वेद का महामृत्युञ्जय मन्त्र

त्र्यम्बकम् यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनात् मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्। त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धि पतिवेदनम्। उर्वारुककिव बन्धना दितोमुक्षीय मामुतः ।।

इस मन्त्र में त्र्यम्बकम् का अर्थ है— पृथ्वी, अग्नि और जल सुगन्धि का अर्थ— वाहन वायु है।

पुष्टि—आकाश तत्त्व हैं।

और उर्वारुक इन पञ्च तत्त्वों से बनने वाली कोई भी वस्तु है। वह मानव शरीर भी हो सकता है। इसीलिए इस मन्त्र में प्रार्थना की गई है कि जिस प्रकार उर्वारुक अर्थात् खरबूज़ा (Melon) पककर बन्धन से टूट जाता है उसी प्रकार हे परमात्मा, तू मुझे इस मृत्युरूपी बन्धन से मुक्त कर, पर अमृतत्व से नहीं। मृत्यु में मृत् शब्द का अर्थ अज्ञान है। इसलिए मन्त्र में कहा है— हमें अज्ञान व मोह आदि से मुक्त करो पर ज्ञान से कभी विमुख ना करो।

मृत्यु को यम भी इसीलिए कहा गया है कि वह आचार्य बनकर अज्ञान को दूर करने व ज्ञान के मार्ग पर चलने में समर्थ होता है। उपनिषद् में आचार्य यम ने पुत्र नचिकेता को प्रेय मार्ग से हटाकर श्रेय मार्ग की ओर प्रवृत्त किया। और त्रिणाचिकेत अग्नि को दिया और अग्नि ने नचिकेता को परमात्मा का ज्ञान कराया।

यह संसार नश्वर है और जब संसार ही नश्वर है तो इस सारे संसार की प्रत्येक वस्तुएं नश्वर हैं। और इस संसार में मानव शरीर को बहुत ही अमूल्य वस्तु माना गया है। वेद में इस शरीर के महत्त्व को पूरी तरह स्वीकार किया गया है। इसे देवताओं की पुरी अयोध्या कहा गया है। क्योंकि इस संसार का कोई भी कार्य इस शरीर के बिना नहीं हो सकता । आज मैं आपके सामने उपस्थित हूं। किस माध्यम से, इस शरीर के माध्यम से। लेकिन यह शरीर अमीर हो या गरीब

राजा हो या रंक, सांसारिक झमेलों में फंसा रहता है। किन्तु अमीर इस संसार में भौतिकवादी होकर जीता है और गरीब आध्यात्मवादी होकर किन्तु जब इस शरीर से यह आत्मा निकल जाता है यह शरीर न राजा है न रंक, न अमीर है ना गरीब, न भारतीय है न सूरीनामी, न आर्यसमाजी है ना सनातनी, यह केवल मिट्टी है। इसलिए वेद कहता है जब तक जीयो इस शरीर की रक्षा करते रहो किन्तु उसके इसमें स्थित राजारूपी आत्मा को भी पहचानो, जिसके कारण यह शरीर टिका हुआ है। वेद में कहा है—

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम् आदित्यवर्णं तमसणः परस्तात्।

मैं जानता हूं उस महान् पुरुष को जो सूर्य की तरह चमकता है जिसके चारों ओर अरबों सूर्य घूमते रहते हैं। जो अन्धकार से परे है। उसे जानने के बाद ही मनुष्य मृत्यु के पार जाता है। और मृत्यु का क्या अर्थ है। केवल आत्मा का शरीर से अलग हो जाना ही मृत्यु नहीं है। इस संसार में प्रत्येक विपत्ति— दुःख, कष्ट, क्लेश, बीमारी, गरीबी, भूख, दर्द, अपमान, वियोग सब मृत्यु के प्रतीक हैं। और जब तक मनुष्य इस अन्धकार और अज्ञानता से ऊपर नहीं उठता तब तक उसे मृत्यु से छुटकारा नहीं मिल सकता।

इसलिए इस शरीर को खिलाओ, पिलाओ, नहलाओ, धुलाओ, सजाओ, किन्तु यह मत भूलो कि एक दिन यह शरीर और इससे सम्बन्ध रखने वाली सब वस्तुएं समाप्त हो जाती हैं।

कबीर नौबत आपनी, दिन दस लेहु बजाई।
यह पुर पट्टन यह गली, फिर नहीं देखन आई॥

थोड़े दिन की बात है फिर यह नगर, यह गलियां, यह देश, बाज़ार, मकान सब आत्मा के जाने के बाद न होने के बराबर हो जायेगा। आप, हम मिट्टी को कूट-कूट कर, पीस-पीस कर, रौद-रौंद कर, ऊंची-ऊँची दीवारें खड़ी करते हैं। किन्तु जब

माटी कहे कुम्हार से तू क्या रौंदे मोहे।
इक दिन ऐसा आएगा मैं रौंदूगी तोहे॥

सब कुछ बनावाओ किन्तु यह भी याद रखो कि यह सब कुछ साथ जाने वाला नहीं है। धन-सम्पत्ति, संगी-साथी, पत्नी-बच्चे कुछ भी तो नहीं—क्योंकि

इक दिन ऐसा आएगा कोई काहू का नाहीं।
घर की नारी को कहे तन की नारी नाहीं॥

और जब अपनी चलती ही सांस ही अपने शरीर का साथ छोड़ देती है तो दूसरे की बात कौन कहे। जो बनता है वह टूटता है, जो आता है वो जाता भी है। जो आए हैं वे जायेंगे।

राजा हो या रंक, गृहस्थी हो या संन्यासी, मोह-माया की जंजीर में बंधा अभागा या आत्मदर्शन के सिंहासन पर बैठा योगी, रहना तो इस संसार में किसी को नहीं है। यह संसार चलती चक्की है, दाने पिसते चले जाते हैं किन्तु यह चक्की रुकती नहीं। माली फूल तोड़ लेता है किन्तु कलियों का चीखना कोई नहीं सुन पाता।

माली आवत देखकर कलियां करें पुकार।
फूली-फूली चुन लई काल्ह हमारी बार ॥

कौन जानता है कब जाना पड़े, कोई भरोसा है इस जीवन का?

यह तन काचा कुम्भ है लिये फिरे तू साथ।
धक्का लागी टूटि है, कछु न आए हाथ॥

यह शरीर तो कच्चा घड़ा है, इधर धक्का लगा उधर टूटा। इसलिए हम सब जीवन में थोड़े समय प्रभु का भजन कर इसक़ा सदुपयोग कर लें।

बार-बार नहीं पाइये सुन्दर मानुष देह।
प्रभुभजन सेवा सुकृत यह सौदा करी लेय॥

जब शरीर स्वस्थ होगा और मन प्रसन्न रहेगा तो दीर्घ आयु स्वयं प्राप्त होगी।

३१. वैदिक साहित्य में नारी का स्थान

आदरणीय अभ्यागत सभ्य समाज, एवम् अन्य श्रोतावृन्द-

मेरे आज के प्रवचन का विषय है वैदिक साहित्य में नारी का स्थान।

"वैदिक साहित्य में नारी का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वेद के अनुसार पुरुष और नारी समाज-रूप और राष्ट्र-रूप रथ के दो चक्र हैं। जैसे एक चक्र से रथ नहीं चल सकता वैसे ही अकेले पुरुष या अकेली नारी से समाज और राष्ट्र आगे नहीं बढ़ सकता। नर और नारी कहीं भाई और बहिन के रूप में, कहीं पुत्र और माता के रूप में, कहीं पति और पत्नी के रूप में, कहीं प्रचारक व प्रचारिका के रूप में, कहीं लेखक और लेखिका के रूप में, कहीं पण्डित और पण्डिता के रूप में समाज में अपने-अपने कार्यकलापों को करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं।

किन्तु फिर भी हम नारी को नारी के स्थान पर ही रखते हैं, पर वैदिक साहित्य में नारी को पुरुष से भी ऊंचा स्थान प्राप्त है। वसिष्ठ सूत्र में कहा है कि—

उपाध्यायाद् दशाचार्यः आचार्याणां शतम् पिता।
पितुर्दशशतं माता गौरवेणातिरिच्यते॥

अध्यापक से दस गुणा अधिक आचार्य का, आचार्य से सौ गुणा अधिक पिता का और पिता से हज़ार गुणा अधिक माता को गौरव प्राप्त है। जन्म से 5 वर्ष माता, 5-12 वर्ष पिता, मातृमान् भव, पितृमान् भव, आचार्यवान् भव।

शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरञ्जनोऽसि।
संसार माया परिवर्जितोऽसि॥ गार्गी
माता भूमिः पुत्रोऽहम् पृथिव्याः। अथर्ववेद
न गृहम् गृहमित्याहुः।
गृहिणी गृहमुच्यते— महाभारत में व्यास
बिन घरनी घर भूत का डेरा।

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।

अशुभ घड़ी। मध्यकाल में पर्दाप्रथा, दासता। स्व- स्वामी भाव।

बाल-विवाह, स्त्री-शिक्षा का अभाव।

ढोल गंवार शूद्र पशु, नारी ये सब ताड़न के अधिकारी।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः। मनु

स्त्रीशूद्रौ नाधीयाताम्। इमं मन्त्रं पत्नी पठेत्।

वेदों द्वारा नारी-चरित्र का वर्णन—

साम्राज्ञी श्वशुरे भव, साम्राज्ञी श्वश्र्वां भव, ननान्दरि साम्राज्ञी भव, साम्राज्ञी अधिदेवृषु।

प्रबुध्यस्व, सुबुधा बुध्यमाना। अथर्व—

नववधू प्रबुद्ध-सुबुद्ध जागरूक रह।

बाल विवाह का खण्डन

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्। अथर्व-

अबला नहीं सबला।

अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।
आंचल में है दूध आंखों में है पानी।।

अहम् केतुरहं मूर्धा, अहम् उग्रा विवाचनी। ऋग्वेद—

मैं राष्ट्र की ध्वजा हूं, समाज का सिर हूँ। मेरी वाणी में बल है।

मम पुत्रा शत्रुहणोऽथो मे दुहिता विराट्। ऋग्वेद—

मेरे पुत्र शत्रुहन्ता हों और मेरी पुत्री विशेष तेजस्विनी हो।

यथा यशः कन्यायाम्। अथर्व—

इन्द्रश्च चिद् घा तदब्रवीत् स्त्रिया अशास्यं मनः। ऋग्वेद—
उतो अह क्रतुं रघुम।।

अर्थ— यहाँ स्वयम् इन्द्र ने कहा है कि नारी के मन पर शासन नहीं किया जा सकता उसकी बुद्धि तुच्छ होती है।

अर्थ-स्त्री के मन पर शासन या अंकुश नहीं रखना चाहिये पुरुष के समान उसे भी विचारों में स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए। उसके अन्दर जो वैचारिक शक्ति है उसका परिवार समाज और राष्ट्र को भी लाभ मिलना चाहिए।

३२. होलिका (होली)

आप सभी जानते हैं कि आने वाले रविवार यानि कि इतवार को होली का उत्सव है। आप सभी को मेरी तरफ से होली के इस शुभ पर्व पर बधाई हो।

प्यारे श्रोतागणो! हमारे हिन्दू त्यौहार प्रकृति और मौसम के बदलने के साथ-साथ आते-जाते रहते हैं। इस प्रकार होली का पर्व भी वसन्त ऋतु के साथ ही आता है। वसन्त ऋतु को ऋतुराज अर्थात् ऋतुओं का राजा भी कहा जाता है। ऋतुराज वसन्त का आविर्भाव हो चुका है। वसन्त ऋतु के साथ-साथ प्रकृति की छटा में भी परिवर्तन आ गया है। उसका रूप दिन-प्रतिदिन रम्य से रम्यतर होता जा रहा है। आज वसन्त भी अपने पूर्ण यौवन पर है। वनोपवन में, शहर और गांवों में, सर्वत्र नयनाभिराम विकास मन को मोद से भर रहा है। चराचर जगत् ने भी इसी आनन्द से प्रफुल्लित होकर नवीन बाना बदल लिया है। उद्यानों में नवविकसित कुसुमों की बहार है और खेतों में परिपक्व यव और गोधूम के शस्यों की सुनहरी सरिता तरंगित हो रही है। पशुओं ने नवीन रोमावली के चित्र-विचित्र अभिनव परिधान धारण किये हैं। पक्षी-समूह ने भी पुराने पंख झाड़कर नूतन पक्षावली का परिधान पहना है। पक्षियों की चारु चहचहाट से सुन्दर सरसता का संचार हो गया है। कलकण्ठा कोकिला कोयल की कूक, मयूर की केका, तरुण तीतर का तारस्वर तथा कपोत का कलरव या कबूतरों की गुटरगूं, वायुमण्डल को मधुरिमा से परिपूर्ण कर रहा है। मलयाद्रि का धीर सुगन्ध समीर अठखेलियां करता हुआ चल रहा है।

ऐसे उदार और मनोहर सुसमय में आषाढ़ी शस्य के शुभागमन की शुभाशा जनता और किसानों के मन में मोद, मौज-मस्ती और उल्लास भर देती है। इस मास की फसल भारत की सब फसलों में सर्वश्रेष्ठ और सिरमौर गिनी जाती है। ऐसे जीवनाधार सर्वपालक शस्य फसल की अवाई पर कृषकों का मन बल्लियों उछलने लगता है। ऐसे सुखद

अवसर पर आनंदोत्सव और रंगरेलियां मनाना स्वाभाविक ही है। यह केवल भारत की ही विशेषता नहीं किन्तु सूरीनाम में भी नव शस्य के प्रवेश पर उत्सव मनाया जाता है। किन्तु यह भारतीय होली का उत्सव केवल आमोद-प्रमोद का ही साधन नहीं है। धर्मपरायणता का भी है क्योंकि हिन्दुओं की प्रत्येक बात में धार्मिकता और वैज्ञानिकता जुड़ी हुई है। शीतकालीन वर्षा के अनन्तर आवासों की परिष्कृति के लिए तथा वसन्त की नई ऋतु बदलने पर अस्वास्थ्य के प्रतिरोध के लिए हवन से वातावरण को शुद्ध करने का अभिप्राय भी है।

संस्कृत भाषा में होलक अग्नि में भूने हुए अर्ध-पके अन्न को कहते हैं। हिन्दी का प्रचलित होला शब्द होलक का ही अपभ्रंश है। आषाढ़ी नवान्नेष्टि में नवागत अधपके यवों के होम के कारण उसको होलकोत्सव भी कहते हैं। होलकोत्सव होलों के बने हुए सत्तू इस ग्रीष्म ऋतु का विशेष आहार भी हैं।

वैदिक धर्मावलम्बियों में प्राचीन काल से यह प्रथा चली आ रही है कि नवीन वस्तुओं को देवों को समर्पण किये बिना उपयोग में नहीं लाया जाता। जिस प्रकार मानवों में ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ है, उसी प्रकार भौतिक देवों में अग्नि देव सर्वप्रधान है। यह अग्नि विद्युत् रूप में ब्रह्माण्ड में व्यापक है और भूतल पर साधारण अग्नि। जल में वडवानल अग्नि, सूर्य के तेज में प्रभानल, वायु में प्राणापानानल और सर्व प्राणियों में वैश्वानर के रूप में वास करता है। श्रीभगवद् गीता में श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं—

अहम् वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्॥

अर्थात् मैं प्राणियों में वैश्वानर रूप होकर देह के आश्रय रहता हूं और प्राणापान वायु के साथ मिलकर चार प्रकार के अन्न, भक्ष्य, भोज्य, लेह्य और चोष्य को पकाता हूं। देवयज्ञ का प्रधान साधन भौतिक अग्नि ही है क्योंकि वह देवों का दूत है। वेदों में उसको अनेक बार 'देवदूत' कहा गया है। वही सब देवों को होमे हुए द्रव्य पहुंचाता है।

इसलिए नवागत अन्न सर्वप्रथम अग्नि को ही अर्पण किए जाते हैं और उसके बाद मानवदेव ब्राह्मणों को भेंट करके अपने उपयोग में लाए जाते हैं। इसलिए श्रुति कहती है कि **"केवलाघो भवति केवलादी"** अर्थात् अकेला खाने वाला केवल पाप खाने वाला है। मनु महाराज भी इसी बात का समर्थन इस प्रकार करते हैं—

अघं स केवलं भुङ्क्ते यः पचत्यात्मकारणात्।
यज्ञशिष्टाशनं ह्येतत्सतामन्नं विधीयते॥

अर्थात् जो पुरुष केवल अपने लिए भोजन पकाता है वह पाप का भक्षण करता है। यज्ञशेष वा हुतशेष ही सज्जनों का अन्न विधान किया गया है। इसीलिये अब तक भी जन-साधारण में यह प्रथा प्रचलित है कि जब तक नये अन्न व फलों को पूजा के उपयोग में न लाया जाए वह अछूते ही रहते हैं। इसके अनुसार आषाढ़ी की नवीन फसल आने पर नये यवों को होमने के लिए इस अवसर पर प्राचीन काल में नवसस्येष्टि होलकेष्टि वा होलकोत्सव होता था। वर्तमान समय में लकड़ी और गोबर के उपलों को ढेर रूप में जमा करके होली जलाने की प्रथा है। आजकल होली के उत्सव पर देवयज्ञ और पूजा के बाद गान-वाद्य द्वारा आमोद, प्रमोद, हर्षोल्लास, इष्टमित्रों से सप्रेम सम्मेलन आज की होली के उत्सव का लौकिक अंग है। होली का समय हमारे लिए वर्ष भर तक के अन्न प्रदान करने की व्यवस्था करता है, उसको मंगल मूल व सौभाग्य सूचक समझकर उस पर परमेश्वर के गुणानुवाद पूर्वक आनन्दोत्सव मनाना स्वाभाविक भी है। परस्पर प्रेम बढ़ाने का यह बड़ा उपयुक्त अवसर है।

होली के इस शुभ पर्व पर सब लोग ऊंच-नीच और छोटे-बड़े का भेदभाव भुलाकर स्वच्छ एवम् पवित्र हृदय से आपस में मिलते हैं। यदि किसी कारण वश पूरे वर्ष में वैर और द्वेष से मन पूर्ण तथा भरा हुआ है तो इस होली के अवसर पर यह मन की मैल अग्निदेव को साक्षी रखकर भस्म कर देनी चाहिए। अतः होली प्रेम-प्रसार का पर्व है। यह दो फटे हुए हृदयों को मिलाती है और एकता का पाठ

पढ़ाती है। आज के दिन घर-घर में मिलाप है, आज के दिवस पर बाल और वृद्ध वनिताओं की उछाहभरी उमंगें कलह-कालुष्य और वैमनस्य के विकारों को समाप्त कर देती है। इस अवसर पर प्रत्येक हिन्दू के हृदय में हर्ष की कल्लोल मालाएं उठती हैं। होली का पवित्र पर्व प्राचीन काल में वस्तुतः आनन्द और उल्लास का महोत्सव था, किन्तु काल की कराल गति से आजकल उसमें कुछ अभद्रता तथा अज्ञानता का प्रवेश हो गया है। आजकल जो होली में नकली रंग और कला के नाम पर ऊंटपटांग, बकवास और अश्लील शब्दों का उच्चारण करते हुए इन्हें देखकर या सुनकर क्या कोई हमें कह सकता है कि हम उन ब्राह्मणों और ऋषियों की सन्तान हैं जिन्हें देखकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड विस्मित है। आज के दिन मातृशक्ति समान नारी के रिश्तों को भूलकर मानव उसका कुछ और ही अर्थ समझ बैठा है। रामायण के किष्किन्धाकाण्ड सर्ग 6 श्लोक 125 से 132 तक सुग्रीव द्वारा दुपट्टे में बंधे हुए सीता माता के कुछ आभूषणों का वर्णन है। भगवान् राम के आग्रह पर सुग्रीव जब वह आभूषण शोकसन्तप्त रघुकुलनायक, मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र जी के प्रिय भ्राता श्री लक्ष्मण जी को पूछते हैं कि हे भ्राता, देखो तो यह चीर और आभूषण क्या तुम्हारी पूजनीय भाभी के ही हैं? तब श्री लक्ष्मण उत्तर देते हैं कि—

नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले।
नूपुरे तु विजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात्॥

अर्थात् भैया राम, मैं इन अन्य कर्ण कुण्डल आदि आभूषणों को तो नहीं पहचानता। हां, किन्तु मैं इन नूपुरों अर्थात् पायल को अवश्य पहचानता हूं कि मैं नित्यप्रति मां समान भाभी के चरण-स्पर्श करता था। और दूसरी बात है आजकल होली के अवसर पर जो आर्य सन्तान मद्य भांग पीकर उन्मत्त होते हैं उनकी बुद्धि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को देने वाले उत्तम पदार्थ दुग्ध का नाश करके ईश्वर के अपराधी बनते हैं। जबकि आज के दिन वैदिक धर्मी लोग गायत्री मन्त्र द्वारा बुद्धि की शुद्धि और बुद्धि को बढ़ाने की परम पिता प्रभु से प्रार्थना करते

हैं। इसलिए महाराज मनु ने भी मद्य के लिए प्रायश्चित्त बताया है कि—

सुरां पीत्वा द्विजो मोहादग्निवर्णां सुरां पिबेत्।
तथा स काये निर्दग्धे मुच्यते किल्विषात्ततः।।

अर्थात् मद्य पीने वाला पापी अग्नि से तपाई हुई मद्य पीकर स्वशरीर को नष्ट कर देता है। कई मद्य पीने वाले कहते हैं कि मनु महाराजा ने तो मद्य शब्द का प्रयोग किया किन्तु ऐसा प्रश्न करने वालों को सुश्रुताचार्य यह कहते हैं— **बुद्धिं लुम्पति यद्द्रव्यं मदकारि तदुच्यते।** अर्थात् जो पदार्थ बुद्धि का नाश करे उसको मद्य कहते हैं।

आजकल गुलाल व अन्य प्रकार के रंगों से होली खेली जाती है, यह प्राचीन काल के रंग का विकृत रूप है। प्राचीन काल में इस आमोद-प्रमोद के अवसर पर कुसुमासार यानि कि इत्र आदि सुगन्धित द्रव्य परस्पर प्रयोग किये जाते थे। सम्मिलित मित्र मण्डली पर गुलाब जल की पिचकारी छोड़ी जाती थी। इस वसन्त ऋतु के अवसर पर जिस वसन्ती परिधान का प्रचलन है वस्तुतः वह वस्त्र केशर घुले हुए गुलाबजल का छिड़काव है। प्राचीन काल में होली के अवसर पर शिक्षाप्रद नाटकों का प्रचलन था और लोक संगीत इस दिन का कर्णप्रिय साधन माना जाता था।

पौराणिकों में होली के विषय में यह कथा प्रचलित है कि इस अवसर पर अत्याचारी दैत्यराज हिरण्यकश्यप ने अपने परमेश प्रेमी पुत्र प्रह्लाद को जीवित अग्नि में जलाने के लिए अपनी मायाविनी बहिन होलिका द्वारा चिता रचाई थी। हिरण्यकश्यप ने सोचा था कि होलिका अपनी राक्षसी माया द्वारा भक्त प्रह्लाद को जलाकर स्वयम् सुरक्षित निकल आएगी। किन्तु परमात्मा की असीम भक्तवत्सलता के कारण भक्त शिरोमणि सत्याग्रही प्रह्लाद का बाल भी बांका नहीं हुआ। और राक्षसी होलिका उस चिता में स्वयम् भस्म हो गई। इसलिए उस दिन से होलिका राक्षसी के दाह और भक्त प्रह्लाद के सुरक्षित रहने के उपलक्ष्य में होलिकोत्सव का प्रचलन हुआ। इस पौराणिक कथा से हमें सत्य दृढ़ता की शिक्षा लेनी चाहिए कि चाहे संकटों का सागर उमड़े, आपत्तियों की आंधी

चले, लोकनिन्दा की नदियां बहें, चाहे स्तुति का पहाड़ खड़ा हो परन्तु एक सत्यव्रती का कर्तव्य है कि वह अपने निश्चित पथ से कभी विचलित न हो।

अतएव होली हम को सत्याग्रह के विजय का भी स्मरण दिलाती है। सत्यता के द्वारा जनता में नई उमंगें, अपूर्व आशा एवम् असीम आह्लाद का आविर्भाव होता है। अतः होली उमंग भरा, अनूठे रंगों भरा, विनोद की लहरों भरा, मोहक भावों भरा, रसीला, सरस रुचिर परस्पर प्यार भरा, एकता के सन्देश से भरा, समता और ममता भरा, उत्सव प्रेम-धाराओं से भरा, हिन्दुओं की कीर्ति पताका को ऊंचा रखने वाला रंगीन त्यौहार है। किन्तु मुझे बहुत ही दुःख के साथ यह कहना पड़ रहा है आज पूरे विश्व में इस होली के कुछ और ही रंग देखने को मिल रहे हैं। आज एक दूसरे के खून से हम तैयार हैं होली खेलने को। जब परस्पर गले मिले रहे हैं तो एक दूसरे के पीठ पर छुरा भौंककर होलिका दहन के साथ जीते जी मानव को भी जलाया जा रहा है। सुगन्धित रंग पानी की जगह आज एक दूसरे पर ज़हर भरे रंग फेंके जा रहे हैं।

३३. ब्राह्मण और साधु

आप सब के लिए मेरे आज के प्रवचन का विषय है ब्राह्मण और साधु। वैदिक साहित्य और वेदों के अनुसार ब्राह्मण किसी विशेष जाति को नहीं माना गया है। ब्राह्मण शब्द में दो शब्द छिपे हुए है, पहला शब्द है ब्रह्म और दूसरा शब्द है ऋण अर्थात् मतलब यह हुआ कि जो परमात्मा अर्थात् ब्रह्म के ऋण से उऋण होने के लिए निरन्तर प्रभु-भक्ति में लीन रहे। प्रभु के चरणों का दास बनकर जो भी काम करे वह सिर्फ मानव मात्र की भलाई के लिए करे और उस परमविन्दु ब्रह्म को अपने जीवन का केन्द्र-विन्दु बनाए रखे, उसे ब्राह्मण कहते हैं। दूसरे शब्दों में ऐसा व्यक्ति जो विद्वान् है और जिसने अपनी सारी विद्या ईश्वर तथा उसके पुत्रों की सेवा में समर्पित कर दी है। भक्ति ही जिसका धन है, जन-सेवा ही जिसकी तपस्या है, तपस्या ही जिसका आनन्द है। सरलता ही जिसका आभूषण है, सत्य ही जिसका राज्य है और भगवान् से डरना ही जिसकी वीरता है। ऐसा व्यक्ति ही ब्राह्मण कहलाने योग्य है। अथर्ववेद में एक मन्त्र ५।१८।३ आता है—

ये ब्राह्मणं प्रत्यष्ठीवन् ये वास्मिन् शुल्कमीषिरे।
अस्नस्ते मध्ये कुल्यायाः केशान् खादन्त आसते॥

इसका अर्थ है कि जो ब्राह्मण पर थूकते हैं, जो जूठा आरोप लगाते हैं, वे लोग रक्त की नदी में बालों को खाते हुए दिन व्यतीत करते हैं। अर्थात् तपस्वी ब्राह्मण से कर के रूप में धन लेना भी पाप है। इतना ही नहीं अगले मन्त्र में फिर कहा है कि—

"यो ब्राह्मणं मन्यते अन्नमेव स विषस्य पिबति तैमातस्य" अर्थात् जो ब्राह्मण को किसी भी रूप में अपना ग्रास अथवा भोजन बनाता है वह हलाहल विष को पीता है। वैदिक राज्य के विषय में वेदों में बहुत ही सुन्दर ढंग से लिखा है कि राष्ट्र एक गौ अर्थात् गाय है। राजा के पास यह राष्ट्ररूपी गाय धरोहर के रूप में रखी है। ब्राह्मण

इसके स्वामी है। वे तपस्वी ब्राह्मण जिन्होंने अपनी इच्छा से दरिद्रता का जीवन स्वीकार किया है और ब्राह्मण पूरे राष्ट्र का रक्षक है। ब्राह्मण प्रजा रक्षक है। ब्राह्मण चाहे तो अत्याचारी राजा को उसके सिंहासन से प्रजा की रक्षा के लिए हटा सकता है। इसके लिए अथर्ववेद का मन्त्र है कि—

देवा वशामयाचन् मुखं कृत्वा ब्राह्मणम्।
तेषां सर्वेषामददद्धेडं न्येति मानुषः॥

इसका अर्थ है जो ब्राह्मण को वाणी बनाकर देवताओं ने गाय मांगी और राजा ने देने से इन्कार किया तो वह पापी उन सब के लिए क्रोध का भागी होता है। जो व्यक्ति अपना जीवन जनता की सेवा के लिए अर्पित कर देते हैं वे सब देवता हैं। वह ब्राह्मण जो अपनी विद्या, वह क्षत्रिय जो अपनी वीरता, वह वैश्य जो अपना धन जनहित में लगाता है वह देवता है। इसलिए मनुष्य का सारा जीवन ही एक यज्ञ है सब मनुष्यों को अपने सामर्थ्य के अनुसार इसमें अपनी आहुति देनी चाहिए। ब्राह्मण अपना सर्वस्व होम देने वाला जनता का प्रतिनिधि होता है। अथर्ववेद के 12वें काण्ड में 4 अध्याय के 33, 34, 36वें मन्त्रों में लगातार कहा है। वशा अर्थात् राष्ट्र राजा की माता है। और जो गौ ब्राह्मण को दी जाती है वह दान नहीं, क्योंकि इस गौ को लेने में ब्राह्मण का कोई स्वार्थ नहीं है। जैसे चम्मच में डाली हुई घी की आहुति हमें अग्नि की ओर ले जाती है। उसी प्रकार राजा ब्राह्मण को दान देता हुआ अपने को यज्ञ की अग्नि को ओर ले जाता है अर्थात् राजा अपने आपको परमेश्वर को अर्पण करता है। इसलिए पूरे राष्ट्र को ब्राह्मण का आदर सम्मान करना चाहिए। वो व्यक्ति जो शत्रु से मेल-मिलाप बढ़ाता है, मित्र और जनता को कष्ट देता है, वह आयु में बड़ा होकर भी मूर्ख है। हिन्दी कवि ने इसे ऐसे कहा है—

अज्ञो भवति वै बालः पिता भवति मन्त्रदः।-मनुस्मृति

अथर्ववेद २।१४।३ में लिखा है कि—

असौ यो अधराद् गृहस्तत्र सन्त्वराय्यः।

इसका अर्थ है कि लोभ अत्याचार, धोखा इन सब दुर्गुणों का नाश होना चाहिए। दूसरे शब्दों में यह कि इन दुर्गुणों का समाज में सम्मान नहीं होना चाहिए। अथर्ववेद में फिर एक बार कहा है कि प्रेम के जादू से भरे वश में आए हुए मेरे शत्रु साथियों सहित दीन-दुःखी दयनीय अवस्था में आजायेंगे। इस अथर्ववेद के मन्त्र का उर्दू में इस प्रकार अर्थ है—

जुबां खोलेंगे मुझ पर बदजुबां क्या बदशिमारी से।
कि मैंने खाक भर दी उनके मुंह में खाकसारी से॥

इसलिए हे इन्सान, तू भय मत कर क्योंकि आत्मा तो अनश्वर है, वह मरेगी नहीं। और यज्ञ ब्राह्मण द्वारा जहाँ किया जाता है वहां जीवन में हर स्थिति में सुख ही सुख रहता है। जहां ईश्वर अर्पित भक्त निवास करते हैं वहां मनुष्य तो मनुष्य पशु भी नव-जीवन को प्राप्त करते हैं। पूजा-अर्चना तथा दान का वातावरण चेतन और अचेतन सब पर अपना आत्मिक, आध्यात्मिक आशीर्वाद का प्रभाव डालता है।

इस प्रकार जिस तरह ब्राह्मण बनना आसान नहीं है उसी प्रकार साधु-संन्यासी बनना भी आसान नहीं है। बाह्मण से भी अधिक साधु बनना बहुत ही कठिन है। क्योंकि जब कोई ब्राह्मण साधु बन जाता है तो जीवन में वही बात हो जाती है जैसे कि सोने में सुहागा। साधु सब से पहले कई साल की तपस्या के बाद मन से साधु बनता है फिर तन पर गेरुए वस्त्र धारण करता है। एक छोटा-सा पत्थर बहुत छोटा होता है, उसमें कोई बड़प्पन नहीं, अभिमान नहीं होता। सन्त कबीरदास जी से किसी ने पूछा— कबीर जी, साधु क्या कंकर बन जाए, रोड़ा बन जाए। तब सन्त कबीर जी ने उत्तर दिया—

रोड़ा भया तो क्या भया पंथी को दुःख दे।
साधु ऐसा चाहिये ज्यों पैंडे की खेह॥

साधु को तो ऐसा होना चाहिए जैसे धूल होती है। तब फिर से कबीर जी ने अपने अगले दोहे में कहा कि—

खेह भया तो क्या भया, उड़ उड़ लागे अंग।
साधु ऐसा चाहिये जैसे नीर उपंग॥

साधु संन्यासी को ऐसा होना चाहिए जैसे निर्मल जल। पवित्रता दे दूसरों को कष्ट न दे। अपने लिए नहीं दूसरे के लिए जिये—

उदर समाता अन्न ले, तन ही समाता चीर।
अधिक नहीं संग्रह करे, ताका नाम फकीर॥

अर्थात् जितनी भूख है उतना भोजन करे, जिससे तन ढक जाय उतना कपड़ा पहनना चाहिए। किन्तु सब कुछ उस स्थिति का ठीक से वर्णन करना जिससे साधु को गुज़रना पड़ता।

"पग-पग **औरवी** घाटियाँ छिन-छिन मरना होय।" वाली बात होती है साधु के साथ में क्योंकि साधु को अपने आपको क्षण-क्षण में मारना पड़ता है। खाने-पीने में, सोने में, विद्या में, सामाजिक कार्यों में, जीते जी उसे मरना पड़ता है।

एक-एक क्षण में अपने मन को, अपनी इच्छाओं को, अभिलाषाओं को, अभिमान को, मोह को, ममता को, क्रोध को, अहंकार को मारना पड़ता है। साधु को साधना के लिए भी उस स्थान पर बैठना पड़ता है जहां हजारों तपस्वियों ने तपस्या द्वारा धर्म की बलिवेदी पर अपने आपको कुर्बान कर दिया है। अन्त में साधु के मन में तपस्या की जलती हुई अग्नि में केवल उस परम पुरुष प्रभु प्रियतम के सिवा किसी और का ध्यान ही ना रहे। ऐसी ही एक क़हानी है— ऋषिकेश में जहां पवित्र गंगा का पावन धाम है वहां पर स्वामी रामतीर्थ की याद में एक 'राम आश्रम' बना है।

पहले घर में रहकर तैयारी करो, प्रतिदिन अपने घर के भीतर किसी एकान्त शान्त स्थान पर बैठ प्रभु-चिन्तन और आत्म-चिन्तन करो।

३४. नारी की प्रगतिशीलता

प्यारे श्रोतागणो! आप सभी को मेरी तरफ से एक बार फिर से नव-वर्ष की बधाई एवम् शुभकामनाएं मिलें। आज का दिन इस वर्ष की पहली भेंट है। अतः परमपिता का मंगलमय आशीर्वाद आप सब पर फूलों की तरह बरसता रहे। आप सभी परिवारों के पक्षियों की खिलखिलाहट चहकती रहे और आप सभी के घरों में आध्यात्म का सूर्य उगता रहे और धर्म की मशाल जलती रहे। आज का मेरा विषय है, बीते हुए 1995 में नारी की प्रगतिशीलता।

न जमीं आसमाँ की परवाह है हमें,
न तान-ओ तशनी की फिक्र है हमें।
जिस ज़मीं पर हम पैदा हुए वह सारी-
वो सारी ज़मीं हमारी है, सारा आकाश हमारा है।।

यह प्रगति, उन्नति और विकास और विचार है, आज के युग की प्रगतिशील नारी है। उस नारी को जो युगों-युगों से ना जाने कितने ही नामों से जानी एवं पुकारी जाती रही है।

संस्कृत के शास्त्रों एवम् हिन्दी साहित्य के शास्त्रों में—
नारी को आदर्श कहा गया है।

सृष्टि के रचयिता ब्रह्मा की महान् रचना कहा गया है। कभी संस्कृत एवम् हिन्दी कवियों ने नारी के मधुर रूप की कल्पना कोमल तन, श्यामल रंग और मृगनयनी के रूप में की। वेदों में नारी को शक्तिमयी, ज्ञानमयी, स्नेहमयी, मायाविनी, श्रद्धा, शक्ति, मां, ममता, सागर-सी विशाल हृदया सरस्वती के ज्ञान की गंगा, ऊषा की वेला, दिन की उजली धूप, शाम की गोधूलि की छाया और शास्त्रों ने धरती का वरदान कहा है इस महानतम नारी को।

इतने सारे नामों के उपहार पाने के पश्चात् भी कहीं-कहीं आज अपनी पहचान बना रही है नारी, कहीं अपनी पहचान खो रही है।

किन्तु फिर भी आज की नारी के उन्नति की ओर उठते हुए कदम अपने लिए हर क्षण राह तलाशने का प्रयत्न कर रहे हैं। इस धरती वा जमीं का कोई भी हिस्सा ऐसा नहीं बचा, जहां उसके कदमों के निशां तारीख न बन गए हों। कितने ही नाम जगमगा रहे हैं नारी के विकास के अध्याय में। आज फिर एक रामायण की रचना या फिर से ग्रन्थ व महाकाव्य लिखे जा सकते हैं। काश कोई विद्वान् लेखक, कवि, भक्त लिखना तो शुरू करे नारी विकास पर। एक नहीं हज़ारों ग्रन्थ लिखे जायेंगे। आज की उन महिलाओं के नाम पर जिनके नाम रौशन हैं इस ज़मीं पे, और चमकते हैं आकाश में चांद-तारे बनकर। काश कि आज के युग का कोई वाल्मीकि पैदा हो, कालीदास पैदा हो, महर्षि व्यास पैदा हो, नारी को उसके रूप व लक्षणों से नहीं उसके गुणों से जाने। उस औरत को जो ममता भरा हृदय लेकर कभी तुम्हारे साथ हंसी, सब के दुःखों में तुम से अधिक रोई है। शायद इसीलिए वह हरेक का सपना है। कभी उसने विष का प्याला पिया, कहीं अपने को दरिया की भेंट चढ़ा दिया, कहीं अग्नि में भस्म होकर अपने आपको सती कर लिया, कहीं वीरता का परिचय देकर, तलवार लेकर युद्ध के मैदान में उतर आई और कभी जलते अंगारों में कूद कर कुर्बानी का जौहर दिखाया। इसलिए आज की प्रगतिशील नारी की चेतावनी है कि तुम्हें चाहा उसने, सराहा है दिल से, उसके फ़न को परखने जाओगे तो उसकी तपिश में स्वयं ही पिघल जाओगे। विद्वान् रावण, सीता के सतीत्व से हारा, दुर्योधन द्रौपदी की हठ की तपिश से समाप्त हो गया।

हर साल केलैण्डर बदलते रहते हैं तारीखें अपना मुकाम बना जाती हैं। पिछले वर्ष के कैलेंडर और तारीखों में भी कई प्रगतिशील महिलाओं ने अपना स्थान बनाया। कभी कहीं किसी को ताज पहनाया गया तो कहीं किसी को विश्व सुन्दरी की उपाधि दी गई। पिछली तारीखों में भी एक ऐसी महत्त्वपूर्ण तारीख थी जिसने इन्दिरा गांधी को अमर बना दिया था और इन्हीं ऐतिहासिक तारीखों ने मदर टेरेसा को पूरे विश्व

की मां का सम्मान दिया है। पिछले ही वर्ष सात सुरों ने सप्तऋषियों को जगा दिया। क्यों? एक तारीख में मेधा पाटकर की सुरीली आवाज ने पहाड़ों को हिला दिया। ऐसे ही विश्व की कई अनगिनत महिलाओं ने महिला शब्द को उसकी पहचान दी—

नारी न मोहे नारी को रूपा। तुलसी

1. अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस

2. नैना साहनी स्वस्वार्थ के लिए, अपनी स्व बचाने के लिए तत्पर है। आप सभी को भूल गई है।

3. एक आशियां बने ना बने इक जहाँ जरूर बनाएंगी, एक कदम बढ़ाओ हाथ उठाओ और यूँ लो उसे। ऊंचे आसमां पर एक चिराग जलता है। आज की नारी पहुंच जाओ उस रोशनी तक वह तुम्हारे लिए। सिर्फ तुम्हारे लिए ....

यह सोचकर चलो कि सारा आकाश तुम्हारा है। बस, पांच कदम की दूरी पर इक्कीसवीं सदी खड़ी है तुम्हारा दामन थामने के लिए इक मशाल जलाओ उस तक पहुंचने के लिए।

तमसो मा ज्योतिर्गमय।

३५. देव, साधक और ऋषि

प्यारे श्रोतागणो! गत सप्ताह मैंने आपको कहा था कि आज का मेरा विषय होगा देव-साधक और ऋषि। वेदों में कहा है— "देवाः साध्या ऋषयः।"— अर्थात् देव साधक और ऋषि। यदि आप प्रभु के दर्शन करना चाहते हैं तो देवता बनिये अर्थात् दैवी सम्पत्ति को एकत्र कीजिये आसुरी को नहीं। देने वाला बन, विद्वान् बन, स्वाध्याय करने वाला और अच्छे ग्रन्थों को पढ़ने वाला बन । सत्संग और स्वाध्याय से अपने मार्ग को सत्यमार्ग का यात्री बना। दान कर, झगड़े न कर। दूसरों के साथ मिलकर रह, क्योंकि देवता कभी झगड़ते नहीं, किसी का बुरा नहीं चाहते।

आज यदि दुनिया में इतने झगड़े दिखाई दे रहे हैं, और विनाशकारी युद्ध की तैयारियां दिखाई दे रही हैं, जगह-जगह पर घृणा और द्वेष की लपटें भड़क रही हैं, क्यों ? इसीलिए कि आज देवता हार गए हैं और आज असुर अर्थात् राक्षस जीत गए हैं। किन्तु याद रखो, यह देवासुर संग्राम तो दुनिया में चलता ही रहता है। कभी देवता जीत जाते हैं तो कभी राक्षस। आजकल कलियुग में तो राक्षसों का राज है दुनिया पर। उसका परिणाम आप सब देख रहे हैं। आजकल, नौजवान, बच्चे और बच्चियां अपना धर्म, संस्कृति और भाषा को भूल रहे हैं। हिन्दू धर्म का यह दावा है कि तैंतीस करोड़ देवी-देवता यहां रहते हैं। किन्तु वही अब लोग छोटी-छोटी बातों के लिए बड़े-बड़े झगड़े कर रहे हैं। धर्म संस्थान ना होकर पागलखाना बना दिया है सब ने। भला बताइये धर्म प्रेम करना सिखाता है, झगड़ा करना या करवाना नहीं।

आज-कल और कुछ नहीं तो लोग भाषा पर ही लड़ने लगे हैं। कई लोग मुझे भी फोन करके कहते हैं कि आप धार्मिक प्रवचन में उर्दू के शब्दों का प्रयोग क्यों करती हैं ? अब आप बताइये, भाषा भी कोई लड़ने की चीज है। वेद भगवान् ने प्रारम्भ में ही बता दिया

कि भाषा लड़ने-झगड़ने की वस्तु नहीं है। अथर्ववेद के बारहवें काण्ड के प्रथम सूक्त को कहते हैं पृथ्वी सूक्त, बहुत सुन्दर सूक्त है यह। इस सूक्त के पैंतालीसवें मन्त्र में लिखा है—

जनं. बिभ्रति बहुधा विवाचसं, नाना धर्माणं पथिवी यथौकसम्।

इसका अर्थ है—यह जो पृथ्वी है, यह जो देश है तुम्हारा, यहां कितनी ही भाषाओं को बोलने वाले लोग रहते हैं, कितने ही धर्म को मानने वाले लोग रहते हैं, उन सब लोगों को इस धरती पृथिवी ने धारण कर रखा है। तब प्रश्न यह उठता है कि जिन सारे मनुष्यों को इस पृथिवी ने धारण कर रखा है वह रहें किस तरह। इसके लिए वेद कहता है कि "यथौकसम्"। अर्थात् इस दुनिया में ऐसे रहो जैसे एक ही घर में सगे भाई रहते हैं—किन्तु आज वेदों की बात सुनता ही कौन है? आज तो हर दिशा में आसुरी सम्पत्तियों एवम् शक्तियों का बोलबाला है। इस बोलबाले में देवताओं के त्राहि माम् का कोलाहल कौन सुन सकता है। यह सब विनाश और महासर्वनाश की तैयारी है। इस महासर्वनाश से बचना तो अति आवश्यक है और यदि किसी भक्त की त्राहि माम् की वाणी आपको सुनाई दे रही है और आप उसे बचाना चाहते हैं या स्वयम् भी इस विनाश से बचना चाहते हैं तो वेदों के अनुसार देव, साधक और ऋषि बनने का प्रयत्न करो। याद रखो कि दुनिया में सदा विचार ही शासन करता है। तोप, एटम, मशीनगनों का शासन कभी नहीं चलता। यदि एटमबम टैंक, तोप से धर्म की आस्था रोक सकते हो तो प्रयत्न करो। किन्तु हर बार तुम्हारे हाथ असफलता ही लगेगी और कुछ प्राप्त नहीं होगा।

और आज किस विचार का प्रचार हो रहा है। यह धर्म-कर्म सब ढोंग, पाखण्ड हैं। किन्तु इस विचार के लिए कौन उत्तरदायी है। मैं कहती हूं— हम उत्तरदायी हैं जो अपने आपको धार्मिक कहते हैं। धर्म के नाम पर ऐसे पाखण्ड रचाते हैं कि बेचारा भोलाभाला मानव सच्चे धर्म को समझ पहीं पाता। बच्चे और नवयुवकों के हृदय में धर्म के प्रति निराशा जागने लगती है। अजीब धार्मिक तमाशा दिखाते हैं

हम धार्मिक लोग। दूसरों को उपदेश देते हैं कि माया चाण्डालिनी है उसका त्याग करो, यह सब बन्धन के कारण है और स्वयं भारत जाकर अपने नाम का कुआं खुदवाते, अपने नाम का मन्दिर बनवाते हैं। संन्यासी बनकर कहते हैं कि शरीर कुछ नहीं इसका विचार छोड़ दो। इस तरह धर्म का विचार प्रचार-प्रसार कैसे होगा? संन्यासियों के सम्बन्ध में कुछ कहूं तो ठीक बात तो नहीं है। किन्तु इस बात से भी कौन इन्कार कर सकता है कि गेरुए, भगवे वस्त्र पहनकर कई लोग ऐसे-ऐसे अनर्थ करते हैं, समाज में दिखावा कुछ और करते हैं कुछ और। और परिवारों को समूल नष्ट करने के प्रयत्न में इतने अधिक तत्पर रहते हैं जिन्हें देखकर आदमी का दिल कभी-कभी रो उठता है। डर जाता है इन्सान इस भय से कि जिन संन्यासियों के यह कर्म हैं उनका धर्म कैसा होगा। धर्म का नाम लेने वाले ऐसे-ऐसे कार्य करें। अपने आपको साधु-महात्मा, धर्म-प्रचारक कहने वाले इस प्रकार के पाप के मार्ग पर चलें। भजन तो सिर्फ एक-दो घण्टा करें और व्यवहार करें ऐसा जिससे समाज की हानि हो, देश की हानि हो तो लोगों में धर्म के लिए घृणा ना जागे तो और क्या हो? ऐसे लोगों के बारे में ही उर्दू कवि कहता है—

खुदा के बन्दों को देखकर ही, खुदा से मुनकिर हुई है दुनिया।
कि ऐसे बन्दे हैं जिस खुदा के, वो कोई अच्छा खुदा नहीं है॥

हम ने तो ईश्वर को भी बदनाम कर दिया है। और ऐसा उल्टा खोटा विचार कि धर्म-कर्म सब ढोंग हैं यह विचार तो बहुत घातक है। प्रश्न यह है कि इस विचार को बदलें कैसे? तो श्रोतागणो, अन्त में आप सब से मेरी हाथ जोड़कर प्रार्थना है, प्रयत्न करें वो लोग भी जो धर्म पर चलने वाले हैं। अपना व्यवहार बदलें। ऐसा आचरण करें कि दूसरों को सुख-मिले शान्ति मिले। अपने प्रेम को बढ़ाएं, झगड़ों को कम करें । सब में त्याग की भावना रहे, लालच और स्वार्थ की नहीं।

इस विचार की शक्ति के बारे में हमारे पूर्वजों ने कहा है—

संसारदीर्घरोगस्य सुविचारो महा-औषधम्। अर्थात् यह संसार

क्या है। जन्म, यौवन, बुढ़ापा, फिर मृत्यु, यह बहुत लम्बा रोग है। इस रोग की सब से बड़ी औषधि है "सुविचार"। सोचो, मैं कौन हूं? क्यों आया हूं इस दुनिया में? किसका है यह संसार? इस प्रकार शिव संकल्प से, अच्छे विचारों से संसार का यह रोग सदा के लिए समाप्त हो जाएगा। आज विज्ञान ने भी सिद्ध कर दिया है कि विचार केवल शब्द नहीं हैं, मनुष्य के मस्तिष्क से, लेखनी से, वाणी से निकलने वाली ठोस लहरें दूसरी लहरों से जाकर टकराती हैं और हलचल पैदा कर देती हैं। इसे हमारे शास्त्र में कहा है— लहरों में रजोगुण का लाल, तामसिक का काला और सात्त्विक का श्वेत रंग होता है। फिर इनके आपस में मिलने से कई दूसरे रंग पैदा होते हैं।

इसलिए यदि हम उस प्यारे प्रभु के दर्शन करना चाहते हैं तो पहले अपने हृदय के विचारों को शुद्ध कर लें, मन को सुमन बना लें। इसलिए अथर्ववेद में कहा है—

परोऽपेहि मनस्पाप किमशस्तानि शंससि।
परे चला जा मन के पाप, यह है आत्म निर्देशन॥

समय के अभाव के कारण मैं आज का यह प्रवचन यहीं पर समाप्त करती हूं। शेष अगली बार। आप सभी को मेरी प्यार भरी नमस्ते।

३६. साधक और अष्टांग योग

प्यारे श्रोतागणो! मेरे पिछले प्रवचन का विषय था साध्य, साधक और ऋषि। गत सोमवार को मैंने आपको बताया था कि सुर और असुर सम्पत्ति के बारे में। देवता और असुर के संग्राम के बारे में। और यह भी बताया कि देवत्व मार्ग पर चलने के लिए अष्टांग योग पर चलना जीवन में अति आवश्यक है। ऋषि दयानन्द जी ने भी "ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका" पुस्तक में लिखा है कि साधक बनने के लिए पहले इस अष्टांग योग की भट्टी में स्वयम् को जलाना पड़ता है। और इस भट्टी की सब से पहली सीढ़ी है ज्ञान। यह ज्ञान दो प्रकार का है एक भौतिक और दूसरा आध्यात्मिक। भौतिक ज्ञान का सम्बन्ध आत्मा और परमात्मा से है।

इस अष्टांग योग की भट्टी में जलकर, नाम खुमारी का नशा तैयार होता है। मनुष्य के लिए दोनों का ज्ञान अति आवश्यक है। जिस प्रकार आकाश में उड़ने वाला पंछी एक पंख से नहीं उड़ सकता उसी प्रकार मनुष्य भी भौतिक और आध्यात्मिक दोनों ज्ञान पाए बिना इस संसाररूपी सागर में नहीं तैर सकता। यदि यह ज्ञान नहीं है तुम्हें कि भोले मानव को पता नहीं किस मार्ग से जाना है, कैसे जाना है और कहां जाना है। भले ही आप निरंतर दौड़ते रहो, सांस फुला लो, अपने पांव थका लो, पर जाओगे कहां? घना जंगल, अंधेरी रात, चारों ओर सन्नाटा, आकाश में घनघोर घटाएं, पगडण्डी का पता नहीं, हाथ में दीपक नहीं और पागलों की तरह भागे जा रहे हो? किन्तु मंजिल का पता नहीं तो पहुंचोगे कहां? कोल्हू के बैल की तरह भाग-दौड़ करके भी वहीं के वहीं अन्धकार के दलदल में फंसे रहोगे। कहां जाना है पहले यह तो पता कर लो। इसी अन्धकार और प्रकाश के बारे में वेद भगवान् कहते हैं—

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ सभूत्याᳬरताः॥

अर्थात् वे लोग गहरे घने अन्धेरे में डूबते हैं जो लोग केवल प्रकृति की— शरीर, धन-सम्पत्ति, सन्तान, परिवार, सत्ता और शक्ति की चिन्ता

करते हैं। और वैसे ही दूसरे वे लोग केवल गहरे घने अन्धेरे में डूबते हैं, जो केवल आध्यात्मिकता, आत्मा और परमात्मा के पीछे दौड़ते हैं। किन्तु मनुष्य का कल्याण तो तब ही होता है जब वह प्रकृति और आत्मा दोनों को ही जानता है। प्रकृति के ज्ञान से इस जीवन को सुखी बनाकर मृत्यु को पार करता है और आत्मा के ज्ञान को प्राप्त करके मृत्यु के बाद अमृत को प्राप्त करता है। इसलिए वेद का सन्देश है कि प्रकृति को जान लेने के बाद आत्मारूपी जहाज पर बैठो। क्योंकि जिस आत्मा के तुम दर्शन करना चाहते हो वह तो इस शरीर के भीतर ही रहता है।

यहीं इस संसार में ही देवता और आसुरी वृत्तियां रहती हैं। बस, उन दोनों में अन्तर यही है कि देवता अपने अवगुणों और बुराइयों को जानकर उन्हें दूर करने का प्रयत्न करता है और असुर दूसरे के अवगुणों और बुराइयों को देख केवल उसका ही रोना रोता रहता है। देवता का गुण मनुष्य में जागता है तो उसकी सभी चिन्ताएं समाप्त हो जाती हैं और यदि राक्षस का गुण मनुष्य में जागता है तो वह एक के बाद चिन्ता में डूबता जाता है। मानव के मन बुद्धि और चित्त में कभी प्रसन्नता आती ही नहीं और यदि मानव के मन में प्रसन्नता न आए तो मनुष्य लाख प्रयत्न कर ले मन को कभी शान्ति मिलती नहीं। इसलिए योगी याज्ञवल्क्य से जब पूछा गया कि योग की परिभाषा क्या है तो उन्होंने कहा कि—

सर्वचिन्ता परित्यागो निश्चिन्तो योग उच्यते।

अर्थात् सब चिन्ताओं को त्यागकर निश्चिन्त हो जाओ तभी तो योग मार्ग पर चल पाओगे। इन सब चिन्ताओं का त्याग करके ही तो मनुष्य योग मार्ग पर चलता है और योग पर चलने के लिए मन की गति को वश में करना अति आवश्यक है और मन रूपी पंछी की उड़ान को तो केवल ज्ञानरूपी डोर से ही बांधा जा सकता है। क्योंकि—

मन पंछी तब लग उड़े विषय वासना माहीं।
ज्ञान बाज्र की झपट में, जब लग आया नाहीं॥

मनरूपी पंछी की भाग-दौड़ वहीं समाप्त हो जाती है जब मन को ज्ञान रूपी पक्षी अपनी पकड़ में ले लेता है। तब ज्ञान मन को समझाता है कि यह दुनिया सदा रहने वाली नहीं है। यह तो जगत्

है जगत्। जगत् का अर्थ है निरन्तर चलने वाला, बदलने वाला। प्रतिदिन बदल रहा है यह, हर घण्टे, हर मिनट, हर क्षण इसमें परिवर्तन आ रहा है। हर क्षण के करोड़वें भाग में भी यह परिवर्तन का खेल चल रहा है।

शिशु इस संसार में पैदा होता है, बड़ा होता है तो उसकी किलकारियों से पूरे घर में एक शब्द का संगीत गूंज उठता है। उस बच्चे की मासूम मुस्कुराहट से पूरे घर में चांदनी छिटक जाती है। जब वह बालक बनता है तो शिक्षा के लिए विद्यालय जाने लगता है। जब वह और बड़ा होता है तो नवयुवक बन जाता है। उस नवयुवक की आंखों में मस्ती है, चेहरे पर आकर्षण की छटा, दृढ़ भुजाओं में बल है। उस नवयुवक को देखने के लिए करोड़ों आंखें ऊपर उठ जाती हैं, कितने ही लोगों की आशाओं का सम्बन्ध है। कितने ही लोगों के प्रेम का केन्द्र है वह नवयुवक। तब वह उम्र की और सीढ़ियां पार करता है, गृहस्थ जीवन में प्रवेश करता है। बच्चे हो जाते हैं और अब अधेड़ उम्र का हो गया। कुछ दुर्बलता आने लगी, कुछ रोग घेरने लगे और वह बूढ़ा हो जाता है— बीमार, जर्जर, दुर्बल। लाठी के बिना चल नहीं पाता और अन्त में एक क्षण ऐसा आता है कि जब चार लोग मिलकर उसे श्मशान छोड़ आते हैं। यह है दुनिया का चक्र। इसी के ही पीछे तो छोड़ रहे हैं हम दिन और रात। यह तो सदा बदलती थी, बदलती है और बदलती रहेगी और पल-पल मरती और पल-पल पैदा होती रहेगी। इस दुनिया का तो यही हाल रहेगा—

दुनिया का इब्तदा, से यही कारखाना है।
कल था किसी का, आज किसी का ज़माना है॥

नई नवेली दुल्हन घर में आई। उस के रूप से घर जगमगा उठा। उसकी आंखों की मस्ती की मादकता पूरी जगह छा गई। उसके चेहरे से यों लगा कि जैसे पूर्णमासी का चांद निकल आया है। किन्तु बदलाव तो उस घर में भी आंखें बिछाए बैठा था कि एक दिन ऐसा आया कि उसी चेहरे पर झुर्रियां पड़ गईं, मुस्कुराते सुर्ख होठों पर पपड़ी जम गईं। काले घुंघराले बाल श्वेत हो, गए। यह है जगत् निरन्तर चलता हुआ, नष्ट होता हुआ, बनता हुआ बिगड़ता हुआ।

३७. गायत्री की महिमा

पिछले दो प्रवचनों द्वारा मैं आपको साध्य, साधक एवम् ऋषि के बारे में बता रही थी किन्तु यह विषय बहुत लम्बा है। इस प्रत्येक विषय को गम्भीरता से समझने और समझाने के लिए तीव्र, सूक्ष्म एवम् सुबुद्धि की अति आवश्यकता है। और आज तक के सारे शास्त्र, पुराण वेद देख लीजिए तो बुद्धि को बढ़ाने का एक ही साधन है गायत्री मन्त्र को जानना। उस गायत्री मन्त्र को जो अनेक रूप से गाया जाता है— गायत्री यज्ञ, गायत्री मन्त्र, गायत्री चालीसा इत्यादि। आइए, आप सब भी मेरे साथ जहां भी बैठे सुन रहे हैं इस गायत्री मन्त्र का उच्चारण करें—

ओ३म् भूर्भुवःस्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

ऐ मेरे प्रभु! तू जो इस पृथ्वी पर, इसके चारों और फैले अन्तरिक्ष में और उस अन्तरिक्ष से चन्द्रमा, सूर्य, तारों और नक्षत्रों से परे, इस अनन्त, असीम आकाश में सर्वत्र विद्यमान है, जिसके सम्बन्ध में मानव और विज्ञान दोनों कुछ नहीं जानते हैं क्योंकि हे प्रभु, तू ही सब कुछ उत्पन्न करने वाला है, तू ही सब को पालने वाला है और अन्त में तू ही सब का अन्त करने वाले अर्थात् सृष्टि के आदि, मध्य और अन्त में तू ही विद्यमान है। हे स्वामी! तू भूत, वर्तमान, भविष्यत् तीनों कालों में विद्यमान रहता है और तू ही सूर्य देवता की तरह पूजनीय और आदरणीय है क्योंकि उन सब महासूर्यों में तू ही प्रेरणा शक्ति बनकर निवास करता है। तू ही प्रत्येक मानव की आत्मा को कल्याण के मार्ग पर चलाता है। तू ही प्रत्येक प्रकाशमान वस्तुओं की ज्योति है, प्रत्येक बलवान् की शक्ति है, प्रत्येक धनवान् का धन है, प्रत्येक सम्मान करने वाले का सम्मान है, प्रत्येक महत्त्वपूर्ण वस्तु का महत्त्व है। तुझे मैं धारण करता हूं, तुझे मैं प्यार करता हूँ, तेरा मैं ध्यान करता हूं। तू मेरी इस

बुद्धि को जिस ओर चाहे ले चल। मेरी अपनी इच्छा कोई है ही नहीं। जहां तू चाहता है वहां ले चल। मैंने अपने आपको तुझे समर्पित कर दिया है इससे मैं तेरा हो गया और तेरे सिवा मेरा कोई नहीं है। यह था गायत्री मन्त्र का थोड़े शब्दों में केवल अर्थ। प्यारे श्रोतागण! यजुर्वेद के इकतालीसवें अध्याय का आठवां मन्त्र कहता है कि इस संसार में दुःख, कष्ट, शोक, क्लेश, निर्धनता, अज्ञान, पराजय; अपमान, बीमारी, अशान्ति, चिन्ता, हिंसा, त्राहि माम् का रुदन, चीत्कार और बारम्बार मृत्यु के जबड़े में पिसने, फिर उत्पन्न होने, फिर पिसने और फिर बारम्बार उत्पन्न होने का केवल एक ही इलाज है, प्रभु-दर्शन, प्रभु का ज्ञान और प्रभु को प्राप्त करना। इसलिए उपनिषद् कहता है—

तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।

अर्थात् उसको जानकर और प्राप्त करके ही मृत्यु से पार पा सकते हो। और दूसरा कोई मार्ग तो है ही नहीं। इसीलिए प्रश्नोपनिषद् के ऋषि ने ठीक ही कहा है—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥

अर्थात् खुल जाती हैं हृदय की सब गांठ, टूट जाते हैं सारे संशय और सन्देह, समाप्त हो जाते हैं सब के सब कर्म, जब उस परम पुरुष परमात्मा के दर्शन होते हैं। फिर कोई दुःख शेष नहीं रहता, कोई निर्बलता, कोई कमी नहीं रहती। उन सब वस्तुओं की भी नहीं जिन्हें हम सुख का कारण समझते हैं। जो सतत शुभ कर्मों से प्राप्त होती हैं किन्तु वह केवल कुछ समय के लिए ही सुख का कारण बन पाती हैं। धन-सम्पत्ति, शासन-अधिकार, परिवार, सम्मान, पद सब कुछ। किन्तु यदि परम पुरुष परमात्मा के दर्शन हो जायें। और मनुष्य उसे प्राप्त कर ले तो यह सब कुछ भी नहीं रहता। सिर्फ एक ही वस्तु शेष रहती है वह है एक परम आनन्द। ऐसी परम शान्ति जाग उठती है, जो कुछ दिनों सप्ताहों, महीनों या सालों के लिए नहीं होती किन्तु सदा-सदा के लिए होती है। इसीलिए कठोपनिषद् का ऋषि कहता है—

नित्योऽनित्यानां चेतनश्चेतनानाम् एको बहूनां यो विदधाति कामान्।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीराः तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम्॥

अर्थात् जो नाशवानों में अनाशवान् है, जो अनित्यों में नित्य है, जो इस जड़ दुनिया में एक भाग चेतन तत्त्व है, जो बहुतों में एक है, जिसके कारण सब कामनाएं पूर्ण होती हैं, उस आत्मा के भीतर बैठे परम पुरुष को धीर जन निरन्तर तप के मार्ग पर श्रद्धा और विश्वास के साथ, धैर्य के साथ और कठिन परिश्रम करने वाले, देखते हैं। उनके लिए शाश्वत सदा रहने वाली शान्ति, सदा रहने वाला परमानन्द जाग उठता है। किन्तु उसे जान लेने से, उस प्रभु का दर्शन पाने और उसे प्राप्त कर लेने से सब कुछ होता है। पर एक प्रश्न उठता है कि उसे प्राप्त करें कैसे? उस परमपिता परमात्मा के दर्शन के लिए कठोपनिषद् का ऋषि कहता है—

अणोरणीयान् महतो महीयान्, आत्माऽस्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान् महिमानमात्मनः॥

अर्थात् सूक्ष्म से भी अधिक सूक्ष्म है, महान् से भी अधिक महान् है, जो आत्मा के भीतर गुफा में छिपे हुए महादेव को वही देखता है, जो सर्वप्रथम आत्मज्ञानी हो, जिस पर प्रभु की कृपा हो गई हो और जिसने सभी चिन्ताओं का त्याग कर दिया हो। इस कठोपनिषद् के मन्त्र में चिन्ता छोड़ने और प्रसन्नचित्त होने की बात कही गई है, जिसके विषय में मैं आपको बहुत बार बता चुकी हूं कि ज्ञानवान् बनो, श्रद्धावान् बनो, तपस्वी बनो, प्रेमी बनो और प्रसन्न चित्त बनो। किन्तु यह सब बातों के बाद में भी यही प्रश्न उठता है कि उसे पाएं कैसे? देखें कैसे? इसके विषय में कठोपनिषद् का ऋषि पुनः कहता है—

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकम्, नेमा विद्युतो भान्तिकुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥

अर्थात् कैसी विचित्र बात है कि वहां सूर्य नहीं पहुंचता, चांद-तारों की चांदनी नहीं छिटकती, इस विद्युत् अर्थात् बिजली की चमक भी नहीं पहुंचती तो वहां बेचारी आग कैसे पहुंचेगी? उसके अपने

प्रकाश से ही यह सब प्रकाशित होते हैं। वह परमशक्ति प्रकाशमान है, इसलिए ही ये सब प्रकाशमान हैं। तब क्या करें, बड़ी मुश्किल में पड़ गए। कठोपनिषद् कहता है जहां कोई भी प्रकाश नहीं पहुंचता तो वहाँ दर्शन कैसे हो? केन उपनिषद् के ऋषि ने तो और भी कमाल कर दिया। वह कहता है कि—

न तत्र चक्षुर्गच्छति, न वाग्गच्छति, न मनो न विद्मो न विजानीम॥

अर्थात् वहाँ आंख नहीं पहुचती, वाणी भी नहीं पहुंचती, मन नहीं पहुंचता, वह कैसा है पता नहीं। इस बात को और अधिक स्पष्ट करने के लिए ऋषि ने कहा है कि जो वाणी से बोला नहीं जाता किन्तु वाणी जिससे बोलती है। जो मन से समझा नहीं जाता किन्तु जिससे मन समझता है। जो आंख से देखा नहीं जाता किन्तु जिससे आंख देखती है। जो कान से सुना नहीं जाता किन्तु जिससे कान सुनते हैं। जो प्राणों से अनुभव नहीं किया जाता किन्तु जिससे प्राण चलते हैं वह है परम ब्रह्म परमेश्वर। वह नहीं है जिसे हम दुनिया वाले समझ बैठे हैं। तब फिर एक प्रश्नचिह्न आ जाता है हमारे सामने कि कैसे पाएं उस परम पुरुष परमेश्वर को? कहां ढूंढ़ें उसे? इसके लिए कुछ और केन उपनिषद् के ऋषि कहते हैं—

ये जो तुम्हारे शरीर के अंग हैं अर्थात् कर्मेन्द्रियां, इन से बड़ी वह कामनाएं हैं जिनके कारण इन्द्रियां सब कार्य करती हैं। किन्तु इन कामनाओं से, विषय वासनाओं से बड़ा मन है क्योंकि वह इन पर नियन्त्रण कर सकता है। इस मन से बड़ी बुद्धि है जो मन को अपने वश में कर सकती है। और इस बुद्धि से बड़ा परा आत्मा है जो महान् है, बहुत शक्तिशाली है, किन्तु इस आत्मा से परे वह शक्ति है जो विद्यमान है किन्तु प्रकट नहीं होती। और इस प्रच्छन्न शक्ति से परे वह पुरुष है, वह परम परमेश्वर जिससे बड़ा कोई नहीं, जिससे परे कुछ नहीं जो पराकाष्ठा की सीमा है, जो परम गति है। इस परम पुरुष, पुण्य प्रियतम परमेश्वर के दर्शन केवल देव साधक और ऋषि लोग ही कर सकते हैं। और योगदर्शन में कहा है कि प्रभु के दर्शन कहीं बाहर

नहीं इस मानव शरीर में ही होते हैं—

कोई दौड़े द्वारका कोई काशी जांहि।
कोई मथुरा को चल दिये साहिब घट ही मांहि॥

अर्थात् जो घट-घट में विद्यमान है उसके दर्शन होते हैं इस मानव शरीर में। इसमें तीन ऐसे विशेष स्थान हैं जहाँ बड़े प्रयत्न के साथ ध्यान लगाने से दो या अधिक वर्षों में एक देदीप्यमान जगमगाता हुआ इतना तीव्र प्रकाश दृष्टिगोचर होता है जैसे करोड़ों सूर्य एक साथ चमक उठे हों किन्तु फिर भी यह प्रकाश जलता नहीं, चुंधियाता नहीं, झुलसाता नहीं। किन्तु इस जलते हुए प्रकाश में भी विचित्र मधुर शीतल स्वाद है। एक विचित्र कोमलता, एक विचित्र आनन्दातिरेक। जैसे प्रियतम के प्यार का सागर चारों ओर से उमड़कर किसी प्रेमी को लिपटाए लेता हो। इस समय में ब्रह्मरन्ध्र के भीतर इधर आत्ममण्डल, उधर ब्रह्म-मण्डल दोनों का मिलन होता है। दोनों प्रेमी एक-दूसरे के सामने हैं, निपट एकान्त है, हर ओर आनन्द का सागर है, ज्योति का सागर, मधुरता का सागर। आत्मा को ऐसे लगता है कि जन्म-जन्म से बिछुड़ा हुआ प्यार उसके पास आ गया है, अमृत मिल गया हो, और वह वसन्त ऋतु आ गई हो जो कभी समाप्त नहीं होती।

३८. प्रभु-दर्शन

प्यारे श्रोतागण! पिछले तीन प्रवचनों द्वारा मैं आपको साध्य साधक और ऋषि के बारे में बताने का प्रयत्न कर रही थी। पिछले सप्ताह प्रवचन के अन्त में मैंने कहा था कि जब आत्मा और ब्रह्म एक-दूसरे के सामने प्रेमी और प्रियतम के रूप में आ जाते हैं तो हमारी आत्मा को ऐसा लगता है जैसे हर ओर आनन्द का सागर लहरा गया हो, हर ओर ज्योति ही ज्योति छिटक गई हो और हर तरफ अमृतरस मधुरता बनकर बरस रहा हो और आत्मा और परमात्मा के मिलन से मनुष्य के जीवन में वो मधुमास छा जाता है, वह वसन्त ऋतु आती है जिसका कभी अन्त नहीं होता। तब मानव को पता चलता है कि परमात्मा तो सर्वत्र है। वह कहीं चलकर आता-जाता नहीं, क्यों जब वह परमात्मा सर्वत्र विद्यमान है तो उसे कहीं आने-जाने की आवश्यकता भी तो नहीं है। और जब हम मनुष्यों को इस बात का ज्ञान हो जाए कि परमात्मा के दर्शन कहीं और नहीं स्वयम् में ही हो जाते हैं तो मनुष्य को भी कहीं आने-जाने की आवश्यकता नहीं, सिर्फ स्वयम् में उसको ढूंढ़ने की आवश्यकता है कि कैसे कहां और कब मेरा आत्मारूपी परमात्मा से मिलन हो सकेगा। इसलिए सामवेद के प्रारम्भ में ही मन्त्र है—

ओ३म् अग्न आयाहि वीतये गृणानोहव्यदातये।
नि होता सत्सि बर्हिषि॥

अर्थात् हे मेरे जाज्वल्यमान, देदीप्यमान, सौन्दर्य सिन्धु प्रियतम! आओ, मेरे पास आओ। मेरे पवित्र प्रेम और मेरे आत्मसमर्पण को स्वीकार करो। इस मन्त्र में आयाहि शब्द का अर्थ है आओ। किन्तु भगवान् आएंगे कहां से? वह तो घट-घटव्यापी, सर्वान्तर्यामी, कण-कण, तृण-तृण में विद्यमान है। किन्तु वेद भी तो कवियों के महाकवि परमात्मा की ही वाणी है। इसीलिए मन्त्र में कह दिया कि 'आयाहि' अर्थात्

आओ। किन्तु परमात्मा फिर भी नहीं आता क्योंकि आकर के भी वह आपके हृदय में नहीं स्थित हो पाता और आप उसे न देख पाते हैं न बात कर सकते हैं क्योंकि आपने अपने मन-मन्दिर में जगह बनाई नहीं। उसकी जगह में तो ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, काम, क्रोध, लोभ, मोह और अन्धकार को बिठा रखा है। जब इन सब पराए पहरेदारों को निकाल बाहर करेंगे तब ही ब्रह्म परमेश्वर आपकी तरफ चरण बढ़ाएगा।

इसीलिए जब तक आपकी अपनी अन्तरात्मा स्वच्छ नहीं होगी, तब तक प्रभु के दर्शन भी सम्भव नहीं। अब प्रश्न यह उठता है कि जब परमात्मा निराकार है तो उसके दर्शन कैसे हो सकते हैं और जब प्रभु की जिह्वा, कान आदि नहीं हैं तो वह बातचीत कैसे कर सकते हैं? इसके लिए ऋग्वेद में एक बहुत ही सुन्दर मन्त्र है— **उत स्वया तन्वा सं वदे तत् कदान्वन्तर्वरुणे भुवानि।** अर्थात् मेरे वरुण, प्रियतम, मेरे परमपिता परमेश्वर कब आएगी वह शुभ घड़ी जब मैं आपसे बातचीत कर सकूंगा। मन्त्र की अगली दो पंक्तियों में उत्तर आता है। **किं मे हव्यमहृणानो जुषेत कदा मृळीकं सुमना अभिख्यम्॥** अर्थात् जब आप अपने मन को सुमन, और स्वच्छ बना लेंगे। इसलिए बार-बार भक्त यही पूछता रहता है कि तू कब मेरी प्यार भरी पूजा को स्वीकार करेगा, कब मैं तेरे हृदय में बैठा हुआ तेरा मित्र बन सकूंगा। इस तरह भक्त के मन में चार अभिलाषाएं, इच्छाएं सदैव रहती हैं— पहली कि प्रभु-दर्शन, कब प्रभु भेंट स्वीकार करेंगे। 3. कब कैसे मिलन होगा और 4. कब वार्त्तालाप हो सकेगा। किन्तु यह सब कुछ होता है, बड़ी साधना से, कठिन तप से, और उस समय जब आत्मा के भीतर बैठे हुए सब पाप नष्ट हो जाते हैं। जब हमारे हृदय में बैठे काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा सब का अन्त होकर केवल प्रभु-मिलन की, प्रभु-दर्शन की, प्रबल इच्छा जाग उठती है। किन्तु यह सब कुछ होता है साधना से।

इस सम्बन्ध में महर्षि दयानन्द जी ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में लिखते हैं कि— "जब-जब मनुष्य ईश्वर की उपासना करना चाहे, तब-तब

अपनी इच्छा के अनुसार एकान्त स्थान में बैठकर अपने मन को सच्चिदानन्द अन्तर्यामी अर्थात् सब में व्यापक और न्यायकारी परमात्मा की ओर भली प्रकार लगाकर, पूरी तरह उसका चिन्तन करें। उस प्रभु में अपनी आत्मा को जोड़ दें। फिर उसी की स्तुति, प्रार्थना उपासना को बारंबार करके अपनी आत्मा को पूरी तरह उसमें लगा दें।

प्रभु मिलन के उपाय के बारे में पतञ्जलि मुनि का योगशास्त्र और इनके सूत्रों के भाष्यकर्त्ता वेदव्यास मुनि जी भी यही लिखते हैं कि यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि इस सब कठिन मार्ग पर चलकर प्रभु के दर्शन अवश्य होते हैं। किन्तु यह मार्ग बहुत ही कठिन है, बड़ा मुश्किल है वहां तक पहुंचना, किन्तु वहां तक पहुंचना है तो यह सब तो करना ही पड़ेगा, क्योंकि वहां पहुंचने के बाद सभी दुःख, कष्ट, क्लेश, दुर्बलताएं समाप्त हो जाती हैं। क्योंकि जिस प्रकार अपने शरीर को स्थिर रखने के लिए प्रतिदिन इसको भोजन खिलाते हैं, सुन्दर कपड़ों से सजाते हैं किन्तु जिसके कारण यह सुन्दर शरीर इस दुनिया में निवास करता है, उसे हम भूल जाते हैं। अपनी आत्मा को भक्ति का भोजन देना भुला देते हैं। क्योंकि साधना करना ही आत्मा का भोजन और अर्चन है। जब हम चित्त की सारी वृत्तियों को एक जगह केन्द्रित कर प्रभु का ध्यान लगाते हैं तो एक महान् ज्योति जागती है और उस महान् ज्योति से आपकी आत्मा को वह शक्ति प्राप्त होती है जो दुनिया की करोड़ों ज्योतियों से प्राप्त नहीं हो सकती। इस ज्योति के प्रकाश में ही मनुष्य की आत्मा को अपने कल्याण का मार्ग मिलता है।

किन्तु यह सब कुछ होता है एकान्त में । बाजारों या मधुशाला में नहीं। उस शान्त वातावरण में जहां केवल प्रकृति का संगीत लहराता है। जैसे बहती नदी की कल-कल गुफाओं से बहते झरनों की मीठी तान या फिर पक्षियों की मधुर चहचहाट। स्थान का प्रभाव आदमी के मन पर बहुत अधिक पड़ता है। जैसे आप किसी ऐसे मन्दिर में चले जाएं जहां सच्ची भक्ति हो, भक्ति का व्यापार न हो तो आपका

मन अन्दर से चाहेगा कि यह स्थान बहुत ही पवित्र और शान्त है। यहां बैठकर दो घड़ी प्रभु का ध्यान कर लें। वैसे ही जब कहीं आपको श्मशान में जाने का अवसर प्राप्त होता है तो उसी क्षण आप में वैराग्य की भावना उत्पन्न होने लगती है। आप सोचने लगते हैं कि जब इस जीवन का अन्त यह मृत्यु ही है तो फिर यह जीवन जीने का क्या लाभ? किन्तु यह जीवन तो आपको मिला ही इसलिए है कि आप अपने शुभ कर्मों द्वारा जन्म-मरण के बन्धनों को काट सकें। इस जीवन में यदि हम ने अभी तक शुभ कर्म नहीं किये हैं, अभी भी देर नहीं हुई है, आप अभी इसी क्षण से अपने कर्म करना प्रारम्भ कीजिये। वह शुभ कर्म जिसमें आपकी भलाई हो, आपके परिवार, समाज की राष्ट्र की, देश की, आपके धर्म की, यदि आप कर्मों में अनजाने बारंबार भूल करते हैं तो भी कोई बात नहीं, फिर परिश्रम कीजिए —

करत करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जात ते, सिल पै पड़त निशान॥

अभ्यास करो, एक मिनट, एक घण्टा फिर और इस प्रकार ध्यान कम करेंगे तो भी — तलाशे यार में ठोकरें खाया नहीं करते। कभी वो मंजिल मकसूद की पाया नहीं करते।

कहिया कुछ नहीं जात है, अनुभव आत्म सुख।
सुन्दर आवे कण्ठ नूं, निकसत नाहीं मुख॥

३९. श्रद्धाञ्जलि

प्यारे श्रोतागण! मेरा आज का यह प्रवचन उन लोगों के लिए सादर श्रद्धाञ्जलि है जिनकी असमय अकाल मृत्यु हो गई है। उन दिव्य आत्माओं को सादर प्रणाम है जिन्होंने अपने शरीर से आत्मा को त्याग कर हमारे सामने और उनके परिवारों के सामने यह सच्चाई का मार्ग दिखा दिया है कि आज भी हम उनकी मृत्यु से यह शिक्षा ले सकते हैं 'जीवन की महान् सत्यता है मृत्यु।' मेरी उन सब परिवारों के साथ पूरी सहानुभूति है जिनके परिवारों के वह सदस्य थे। आज मैं उन सब परिवारों के लिए सामूहिक रूप से प्रार्थना कर रही हूं। स्वीकार करें।

ओ३म् देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय।
दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतम् नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु॥

हे प्यारे देव! गुप्त रूप से प्रेरणा देने वाले महादेव प्रभु देव! यज्ञ-स्वरूप यज्ञदेव! सुखदाता, प्रकाशकर्ता, दृश्य-अदृश्य, जीवन पर्यन्त सारे संसार में क्रीड़ा करने वाले, चराचर जगत् के उत्पादक, सम्पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त, तथा सकल सामग्री के दाता प्रभो! आओ और हम सब पर कृपा करो। तेरे रचाए हुए इस संसार में तेरी सहनशीत धरती माता के ऊपर आज संकट-कष्ट इतना बढ़ रहा है कि इस संसार में हम रहने वाले प्राणी त्राहि माम् कर रहे हैं । तेरे चमक रहे आध्यात्मिक प्रकाश में भी दुःख के शिकार हो रहे हैं। तेरी बनाई हुई विश्राम देने वाली रात में भी हम जाग-जाग कर पीड़ा से घायल-आहत होकर रो-रोकर तुझे पुकार रहे हैं। प्रभु न हमें दिन में चैन है न रात्रि में आराम। हम में कैसे-कैसे तेरे से भयभीत न होने वाले, मूढ़, निर्लज्ज, कुटिल, विद्याविरोधी, छली, कपटी, दम्भी, अभिमानी, निर्दयी दुष्ट इस पृथिवी को कलंकित कर रहे हैं। हम सब को सुपथ पर लाने के लिए और अपने दोषों को दूर करने के लिए हम तेरी पुकार करते हैं कि यज्ञ और विद्या को उत्पन्न करो और ऐसे यज्ञ करने वाले सुखदायक व्यवहार के रक्षक,

धर्म के रक्षक इस धरती पर पैदा करो। हे दिव्यगुण युक्त प्रभो! गन्ध-सुगन्धयुक्त इस पृथिवी के धारण कर्त्ता स्वामी! आप स्वयम् सब की बुद्धि को पवित्र-निर्मल विमल करने वाले हैं। प्रभु, आप प्रज्ञान स्वरूप हैं इसलिए हम दीनों की बुद्धि भी शुद्ध-पवित्र कीजिये। प्रभु, आप वेदों की भगवती कल्याणी वाणी के मालिक हैं, आप हमारी वाणी को भी पवित्र कीजिये ताकि हम वेद-मन्त्र पढ़ें तो शुद्ध, स्पष्ट, सुरीले स्वर से युक्त और कोमलता और मधुरता से पढ़ें। हमारी वाणी के अन्दर ऐसी मिठास भर दो और हमारी वाणी को ऐसी स्वादिष्ठ बना दो कि यह वाणी मधुर रस बनकर शोक सन्तप्त परिवारों पर आशीर्वाद और सुख तृप्ति बनकर बरसती रहे।

हे दयानिधे, प्रभो तेरी दया का कोई अन्त नहीं। तेरी कृपा महान् है कि तू हम सब को नित्यप्रति अपने पवित्र चरणों में स्थान देकर हमारी उन्नति और हमारे कल्याण का मार्गदर्शन करता है। तेरी इस महान् कृपा के लिए प्रभु हम आपको कोटिशः धन्यवाद देते हैं और बारम्बार आपको नमस्कार करते हैं। प्रभु आपसे सदैव यह वरदान मांगते हैं कि हमें सदैव तेरी पूजा का, आराधना का, अर्चना का अधिकार प्राप्त हो। इन्हीं अधिकारों के साथ हम में सामर्थ्य हो, स्वतन्त्रता हो, पूर्ण श्रद्धा हो, अटल-अटूट-अनन्त विश्वास हो, हमारे हृदयों में ऐसी उत्कट इच्छा, अभिलाषा उत्पन्न हो कि चाहे हम देश में रहें या परदेश में, दुःख में हों या सुख में, खुशहाली में हों या कंगाली में, काल में हों या सुकाल में, सुखदिन में रहें या दुर्दिन में हम सदैव तेरी पूजा, अर्चना, वन्दना, आराधना, स्तुति, प्रार्थना, उपासना करते रहें। कभी भी तेरे नाम से विमुख न हों, वंचित न हों।

प्रभु तेरे नाम का दान जो सब से पवित्र और महान् है वह हमें सदैव मिलता रहे। हमारी सांस का एक-एक तार तेरे नाम की माला बन जाए। हमारे जीवन का एक-एक क्षण हमें तेरी सत्ता की याद दिलाता रहे। हम एकमात्र तुझे ही जपते, भजते और नमते रहें। हे नाथ, हे सर्वाधार परमेश्वर प्रभु, हे सर्वोपरि परमात्मा, हे सत् , चित् आनन्द

स्वरूप, निराकार, निर्भय, अभय, अजर, अमर, सृष्टि के कर्ता, दयालु, कृपालु, प्रतिपालक, प्रेरक प्रभु आप धन्य हो, आपको पुनः-पुनः शत-शत वन्दन है। हे दयामय, सारे संसार में तेरी ही दया है, तेरी ही कृपा है। इसमें मेरा कुछ भी नहीं है। मैं स्वयम् कुछ भी नहीं, तुच्छ भी नहीं। यह सब कुछ तेरा तेरे ही अर्पण है। मुझे सदा हर हाल में, हर काल में इस शुभ मार्ग पर लगाए रखो। मैं तेरी हर वस्तु को तेरी देन समझूं और तेरी देन को तुझे अर्पण करने में कभी संकोच ना करूं। हे प्रभु! तू उदार है, मेरी आत्मा को उदार बनाओ। मुझ गरीब निराश्रय के आप ही आश्रय हो। मुझ मानहीन के आप ही मान हो। मुझ तानहीन के आप ही तान हो। मुझ ओटहीन की आप ही ओट हो। मुझ निरवलम्ब के आप ही अवलम्ब हो। मुझ निर्धन के आप ही धन हो। मुझ अनपढ़ की आप ही विद्या हो।

हे प्रभु! अपने नामरूपी धन से मुझे भरपूर कर दो। क्योंकि आप ही मेरे सब कुछ हो। आश्रयदाता हो, पतितपावन हो, विश्वम्भर हो, रक्षक हो, सर्वरक्षक हो, सेवकों में गुप्त रक्षक हो। व्रतपति हो, भक्तवत्सल हो। मैं गरीब असमर्थ तेरी शरणागत हूं। ख़रा हूं तो तेरा, खोटा हूं तो तेरा। असली हूं तो भी तेरा, नकली हूं तो भी तेरा, ख़रा हूं तो स्वीकार करो। खोटा हूं तो ख़रा बनाकर स्वीकार करो। असली हूं तो स्वीकार करो। नकली हूं तो असली बनाकर स्वीकार करो। किन्तु परम पिता परमेश्वर हर स्थिति में स्वीकार अवश्यमेव ही करो। मेरा बेड़ा पार करो। मेरा उद्धार कर मुझे संवार दो । मेरा आप पर कोई जोर नहीं। कोई मेरा पुण्य नहीं, प्रताप नहीं, कोई दान नहीं, कोई अधिकार नहीं। केवल तेरी दया, कृपा मांगता हूं। प्रभो मेरे जीवन को आदर्शमय बनाओ। निष्कलंक जीवन बनाओ। मुझे पापकर्म, कुचेष्टाओं और कुसंस्कारों से दूर रखो। दुर्वासनाओं को दग्ध कर अपने नाम का ध्यान दो, अपनी भक्ति का दान दो, अपनी पूजा का अधिकार दो, अपनी जन-सेवा का अधिकार दो।

मुझे संसार के हर प्रकार के ऋण से उऋण करो। मुझे सद्बुद्धि

और सुमति प्रदान करो। जिससे मैं शुद्ध अन्तःकरण से कह सकूं कि हे प्रभो! तेरी इच्छा पूर्ण हो अर्थात् मैं अपने आपको तेरी इच्छा के आधीन कर दूं। मेरी इच्छा न रहे, मुझ में तेरी दिव्य इच्छा का प्रकाश जगमगाए। हे प्रभो! तू ही मेरा सच्चा गुरु, सच्चा आचार्य है। मुझ गरीब निराश्रय के तने अपने आश्रय के ऊपर, मुझ निर्बल से तने अपने बल के ऊपर जन्म से आज तक पथ-प्रदर्शन करके अनेक प्रतिज्ञाएं ली हैं। मैं असमर्थ हूं, तेरी चरण शरण में आता हूं। तेरे सामने ही शीश झुकाता हूं, मैं अपूर्ण हूं तू परिपूर्ण है। मेरे व्रतों की रक्षा करो, मेरी प्रतिज्ञाओं को पूर्ण करो। मुझे अपना पूर्ण अटल विश्वास दो। मेरी आत्मा को पूर्ण सन्तुष्टि दो। मैं सिर्फ तुझे मानूं तुझे ही जानूं। जब-जब भी मेरी शुभ कामना हो, तुझ से ही पूर्ण हो। हे ज्ञान स्वरूप प्रभो! मेरा मन, मेरी वाणी, मेरे कर्म में मुझे एकता प्रदान करो। मुझे असत् से सत् की ओर ले चलो। अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चलो। मुझे मृत्यु के दुःख सन्ताप से बचाकर अमृत गोद में बिठाओ। हे मेरे नाथ प्रभो मुझ याचक की यही याचना है, यही प्रार्थना स्वीकार करो।

४०. सम्भवामि युगे-युगे

नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गं सीतासमारोपितवामभागम्।
पाणौ महासायकचारुचापं, नमामि रामं रघुवंशनाथम्॥
श्री गुरुचरन-सरोज-रजु निज मनमुकुर सुधारि।
वरनऊं रघुवर विमल जसु जो दायक फल चारि॥

प्यारे श्रोतागणो! आज का मेरा विषय है— 'सम्भवामि युगे-युगे' अर्थात् युगों-युगों तक इस संसार में सब सम्भव हो सकता है। यदि प्रभुकथा हो जाए। रामचरितमानस में माँ पार्वती भगवान् शंकर से प्रश्न करती हैं। पूछती हैं कि —

राम ब्रह्म चिन्मय अविनाशी। सर्वरहित सब उर पुरवासी॥
नाथ धरेउ नरतन केहि हेतु। मोहि समुझाई कहहु वृष केतु॥
सुनु गिरजा हरि चरित सोहाए। विपुल विसद निगमागम गाए॥
हरि अवतार हेतु जेहि होई। इदमित्थं कहि जाई ना सोई॥
राम अतर्क्य बुद्धि मन बाणी। मन हमार अस सुनहि सयानी॥
तदपि संत मुनि वेद पुराना। जस कहहिं स्वमति अनुमाना॥
तस मैं सुमुखि सुनावहिं जोही। समुझि परई जस कारण मोहि॥
जब-जब होई धरम की हानि। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
करहिं अनीति जाहि नहिं बरनी। सीदहिं विप्र धेनु सुर धरनी॥
तब तब प्रभु धरी विविध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥

रामचरितमानस के इन दोहों में भगवान् शंकर और मां पार्वती के बीच आपस में संवाद चल रहा है, बातचीत चल रही है, वार्त्तालाप हो रहा है। मां पार्वती पूर्व जन्म में सती थीं, आज श्रद्धा के रूप में उनका जन्म हुआ है। श्रद्धा और विश्वास के मिलन के बाद ही रामचरितमानस में रामकथा प्रारम्भ होती है। श्रद्धालु श्रोता और विश्वासी वक्ता भगवान् शंकर इन दोनों के समन्वित रूप से ही राम की कथा हमारे जीवनों में प्रवेश करती है। और श्रद्धालु श्रोता के रूप में मां

पार्वती श्रद्धा और विश्वास के प्रतीक भगवान् शंकर से प्रश्न पूछती हैं कि—

प्रथम सो कारण कहहु विचारी। निर्गुन ब्रह्म सगुन बपु धारी॥

अर्थात् हे भगवन् नाथ! निर्गुण निराकार ब्रह्म साकार रूप कैसे धारण करता है? भगवान् शंकर जी मां पार्वती से कहते हैं कि हे सती सयना सुमुखी। हमें इस बात में बिल्कुल शंका नहीं करनी चाहिए। क्योंकि भक्तों की पुकार पर ही निर्गुण ब्रह्म साकार रूप होता है कि—

सगुनहिं अगुनहिं न कुछ भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध भेदा॥
जो गुन रहित सगुन होई कैसे। जनु हिम उपल विलग नहीं जैसे॥

सुनो सती पार्वती! जैसे जल, बर्फ और ओला ये सब मूल रूप में जल ही हैं लेकिन ये संसार के विनाश व कल्याण दोनों के लिए ही कार्य करते हैं, वैसे ही भक्तों की भलाई व कल्याण हेतु और दुष्टों और शत्रुओं के विनाश हेतु निराकार ब्रह्म साकार रूप धारण करता है। फिर आगे भगवान् शंकर ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहते हैं कि सृष्टि में तो ब्रह्म का स्वरूप है ही नहीं, न पैर न माथा, न हाथ न मुख, इन इन्द्रियों के बिना ही सब कुछ करने वाला है अर्थात्-
बिनु पग चले, सुनई बिनु काना। कर बिनु कर्म करई विधि नाना॥
अर्थात् वह ईश्वर तो प्रत्येक के हृदय में निवास करता है। हमारे द्वारा की जाने वाली सभी क्रियाओं के मूल में ब्रह्म ही निवास करता है। ये सारी क्रियाएं व्यक्ति के माध्यम से ही की जा रही हैं। लेकिन सत्य तो यह है कि—

"उर प्रेरक रघुवंश विभूषण।" अर्थात् हमारे हृदय की गुफा में बैठा ब्रह्म ही हम से सब क्रियाएं करवा रहा है। इस बात को सुनकर मां पार्वती जी आश्चर्यचकित होकर फिर विश्वासी वक्ता भगवान् शंकर जी से प्रश्न करती हैं कि हे नाथ! यदि ब्रह्म सभी के हृदयों में निवास करता है तो उस ब्रह्म को जन्म लेने की आवश्यकता ही क्या है? वह तो सब के हृदयों में प्रेरणा मात्र से ही काम कर सकता है। भगवान्

शिव पार्वती जी के सन्देह का निवारण करने के लिए गम्भीर वाणी और मुस्कुराहट से उत्तर देते हैं कि—

हरि अवतार हेतु जेहि होई। इदमित्थं कहि जाई न सोई॥

अर्थात् हे देवी! भगवान् राम के अवतार के कारणों को शब्दों की, समय की सीमाओं में नहीं बांधा जा सकता। ना मन और बुद्धि की परिधि में जकड़ा जा सकता है। रामचरितमानस का कोई भी वक्ता, चाहे वह नीलकण्ठ भगवान् शंकर जी हों, चाहे काकभुशुण्ड हों, चाहे ब्रह्मर्षि नारद हों या ऋषि याज्ञवल्क्य हों रामायण में सभी यही कहते हैं कि जैसे मैंने सुना है वैसे ही मैं तुम को सुना रहा हूं। जैसे आज मैंने पढ़ा है मैं आपको सुना रही हूं। किन्तु इनका आदि वक्ता कौन है यह प्रश्न आज तक प्रश्न ही है। रामचरितमानस में एक जगह लिखा है कि—

जब जब होय धरम की हानि। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
तब तब प्रभु धरी मनुज सरीरा। हरहि कृपानिधि सज्जन पीरा॥

अर्थात् जब-जब धर्म की हानि होती है और जब-जब अधर्म की वृद्धि होती है। असुरों, राक्षसों का उपद्रव बढ़ता ही चला जाता है और सुर। ब्राह्मण, गाय और धरती की रक्षा करने के लिए श्रीराम का जन्म होता ही है। चाहे वह किसी भी रूप में हो। भगवान् स्वयम् कहते हैं कि—

सब मम प्रिय सब मम उपजाए। सब से अधिक मनुज मोहि भाए॥

अर्थात् इस संसार में जो भी मैंने उत्पन्न किया है सभी मुझे प्रिय है, किन्तु सब से अधिक प्रिय मुझे मनुज, मानव लगता है, और मानवों में भी सब से अधिक ब्राह्मण प्रिय है, क्योंकि वह धर्म का प्रतिनिधित्व करता है। गुरु वसिष्ठ जी कहते हैं—

सोचई विप्र जो वेद विहीना। तजि निज धरम विषय भवलीना॥

धेनु कृषि कर्म का मूलाधार है। देवता भोग वृत्ति के प्रतीक हैं। वह देवता यज्ञ रूपी अग्नि में हम से भोग पाकर जल-वर्षा आदि कल्याण

का कार्य करते हैं। इसी प्रकार महाकवि तुलसी कहते हैं—

सन्त विटप सरिता गिरि धरनी। परहित हेतु सबन को करनी॥

अर्थात् जो स्वयं मुक्त हो, दूसरों के लिए मुक्ति का मार्ग दिखाता हो, वही सन्त है। इसलिए सन्त ही जीवन की मुक्ति का प्रतीक हैं। इसलिए ब्राह्मण, गाय, देवता और सन्त यह चारों व्यक्ति इस संसार में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के प्रतिनिधि हैं। जब इस संसार में आसुरी वृत्तियां बढ़ जाती हैं, धर्म का नाश होने लगता है और मुक्ति का स्थान भुक्ति, भोग लेने लगता है तभी अनेक रूपों में इस पृथ्वी पर राम का अवतार होता है। अभी मैंने आपको एक शब्द बताया है 'असुर'। आज ही नहीं पिछले तीन साल से असुर शब्द के बारे में बता रही हूं कि वह कौन-सी आसुरी वृत्तियां हैं जो मनुष्य के संभाले भी नहीं संभलतीं और जिनका नाश करने के लिए स्वयम् भगवान् को अवतार लेना पड़ता है। रामचरितमानस में इन आसुरी वृत्तियों का वर्णन इस प्रकार किया है—

बाढ़ै खल बहु चोर जुआरा। जो लम्पट परधन परवारा॥
मानहिं मातु पिता नहिं देवा। साधुन संग करबावहिं सेवा॥
जिनके यह आचरण भवानी। ते जानहु निसिचर सब प्राणी॥

जिनके जीवन में यह वृत्तियां आजाएं। वही निशाचर है। ऐसी ही वृत्ति वाला रावण निशाचर कहा गया है। ब्राह्मण, गाय, देवता और धरती को कष्ट देने वाले अत्याचारी रावण के वध करने के लिए श्रीराम का अवतार होता है। अब एक और प्रश्न हमारे सामने आ जाता है कि राम जन्म का सम्बन्ध त्रेता युग से है तो हमारे जीवन में इसका प्रभाव कैसे होगा। और हिन्दी भाषा में सन्त रहीम महाकवि तुलसी से भी यही प्रश्न पूछते हैं और तुलसी इस बात का उत्तर देते हुए कहते हैं कि— अपने शासक से पूछें कि क्या उनका रावण मर चुका है? इस प्रश्न का उत्तर किसी के पास भी नहीं है, अतः सभी भगवान् राम के चरणों में नतमस्तक हो जाते हैं। त्रेता युग में रावण वध के

समय अनेक देवता आते हैं जो श्रद्धापूर्वक श्रीराम की वन्दना करते हैं। भगवान् शंकर सभी देवताओं के जाने के बाद रामचरितमानस के पृष्ठों पर आते है और अभ्यर्थना करते हैं—

भाभमि रक्षय रघुकुल नायक।
धृत वर चाप रुचिर कर सायक॥

भगवान् शंकर पूछते हैं किसकी रक्षा को जाए। लौकिक जीवन में तो रावण का वध हो गया किन्तु जो रावण हमारे जीवन में बैठा है, जिसे मैं देख रहा हूं यह तो नष्ट हो ही नहीं रहा है। क्योंकि जब तक काम, क्रोध आदि अनेक प्रकार की वृत्तियों को अपने जीवन में बढ़ाते हुए धर्म एवम् उसके आधार पर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को अपने हृदयों में धारण नहीं करेंगे तब तक यह रावण कैसे मारा जाएगा। त्रेता युग में रावण का वध तो हो गया किन्तु आज कलियुग में वही रावण हमें फिर से दुःख दे रहा है, अनेक प्रकार की कुवृत्तियां अपने मन में धारण कर धर्म का नाश कर रहा है। रावण अनेक प्रकार की कुवृत्तियां धारण कर हमारे जीवनों में प्रवेश कर रहा है। कभी सतयुग में अहंकार के रूप में हिरण्यकश्यप बनकर कभी त्रेता युग में मोह का प्रतीक बनकर रावण के रूप में तो कभी द्वापर युग में क्रोध का प्रतीक बनकर शिशुपाल के रूप में आता है। अब प्रश्न यह उठता है कि जब सभी युगों में किसी न किसी रूप में रावण विद्यमान है तो फिर कलियुग तो सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि इस युग में तो रावण नहीं है। किन्तु हम यहां भूल जाते हैं कि आज कलियुग में रावण अनेक रूपों और आकारों में है। हिरण्यकश्यप अहंकार के रूप में, रावण मोहों के रूप में, शिशुपाल क्रोध के रूप में। आज कलियुग में अपनी सारी कुवृत्तियों के साथ रावण विद्यमान है। रावण ही नहीं मारीच, सुबाहु, मन्थरा,. शूर्पणखां सभी कुवृत्तियां दिखाई दे रही हैं। इसलिए योगदर्शन में लिखा है कि—

"यत्पिण्डे तद् ब्रह्माण्डे" अर्थात् ब्रह्माण्ड के किसी भाग में लंका है तो पिण्ड ही में लंका बसी है। हमारे पिण्ड अर्थात् इस शरीर रूपी

लंका में ही रावण, कुम्भकरण, मेघनाथ सभी विद्यमान हैं। त्रेता युग की लंका में भी तो यही विद्यमान थे। इसीलिए रामचरितमानस में इसका वर्णन है कि— बपुश ब्रह्माण्ड सुप्रवृत्ति लंका दुर्ग रचित मन दनुज मय रूपधारी। अर्थात् अनेक प्रकार की असत् कुवृत्तियों का महल ही तो लंका है, जो हमारे हृदय के राजसिंहासन पर बैठे राज्य कर रही है। और इस मन रूपी लंका में भी तो अनेक राक्षस हैं— मोह, अज्ञान, लोभ, अहंकार यही तो हैं वो राक्षस जो हमारे शरीररूपी लंका में राज्य कर रहे हैं। अहंकार का राक्षस कुम्भकरण जो कभी-कभी अपनी पूरी भूख और प्यास से जागता है। "मोह दशमौलि तद्भ्रात अहंकार। अहंकार मोह का ही तो भाई है और फिर मेघनाथ — पातारि जित काम विभ्रमहारी" मेघनाथ का ही तो प्रतीक है। और फिर ग्रन्थ गीता भी काम को ही सृष्टि का मूल मानती है—

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निस्पृहः।
निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधि गच्छति॥

४१. रावण वृत्ति और प्रभुभक्ति

प्यारे श्रोतागणो! सोमवार को मैं आपको बता रही थी कि— सम्भवामि युगे-युगे। अर्थात् हर युग पल में सब कुछ सम्भव हो सकता है यदि प्रभु की इच्छा हो तो। आपको यह भी मैंने बताया था कि आज कलियुग में रावण अनेक प्रकार की दुराचारी वृत्तियों द्वारा हमारे हृदयों में विद्यमान है। आप दस सिर वाले रावण को असद् वृत्तियां दस हजार और आसुरी कामनाओं को जन्म दे रही हैं। दूसरे शब्दों में आज संसार में हम इस प्रकार जी रहे हैं कि— हमने भोग नहीं भोगे, हम ही भोगे गए। हम ने तप नहीं किया हम ही तप्त हो गए। समय नहीं बीता किन्तु हम ही बीत गए। उमर का चढ़ाव देखने की चाह में हमारे कदमों ने हमें ही रोककर हमें उमर का उतराव देखने को विवश कर दिया। तृष्णा जीर्ण बूढ़ी नहीं हुई किन्तु हम ही जीर्ण बूढ़े हो गए। लोभ जो सब से बलशाली राक्षस है इसकी तृष्णा-भूख तो कभी समाप्त ही नहीं होती बल्कि सुरसा राक्षसी की तरह दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही चली जाती है।

तब आज कलियुग में जीव कौन है? सतयुग में हमारा यही शरीर अयोध्या कहलाता है, किन्तु आज यही शरीर आसुरी वृत्तियों द्वारा लंका का किला बन गया है। जिसमें जीव बेचारा विभीषण की तरह चुपचाप बैठा है, व्याकुल है, चिन्तित है, डरा हुआ है कि कब राम आयेंगे और उसे इस लंका से मुक्ति दिलायेंगे। रामचरितमानस के सुन्दरकाण्ड में इसका बहुत ही सुन्दर तरीके से वर्णन किया गया है कि—जब माता सीता को ढूंढ़ने हनुमान् जी लंका में आते हैं और विभीषण जी से मिलने पर उन्हें बहुत हर्ष और प्रसन्नता होती है। दोनों के होठों पर राम का नाम है, दोनों के ही शरीर राम नाम लेने से रोमांचित हैं— और विभीषण हनुमान् जी से कहते हैं, कि— सुनहु पवनसुत जिमि दसनन्हि महुं जीभ बिचारी॥ तात कबहुं मोहि जानि अनाथा। करिहहिं कृपा भानुकुल नाथा॥ विभीषण जी बोले! हे पवनपुत्र हनुमान्— मेरी

इतनी विनति सुनिये। मैं यहां लंका में इस प्रकार कैद में रहता हूं जैसे बत्तीस दांतों के बीच में बेचारी जीभ। हे तात! मुझे अनाथ जानकर सूर्यकुल के नाथ श्रीरामचन्द्र जी क्या कभी मुझ पर कृपा करेंगे? आज इस युग में भी जीभरूपी विभीषण प्रभु को पाना चाहता है। किन्तु इस ईश्वर को चाहकर भी कैसे पाए। कैसे साधन करे, कैसे भक्ति करें, कैसे सत् मार्ग की ओर जायें, अन्धकार के पर्दे को चीरकर प्रकाश की तरह कैसे आगे बढ़ें?

आज हमें रावण की आसुरी वृत्तियों ने त्रस्त कर रखा है, दुःखी बना रखा है। परिजनों का मोह, क्रियाओं का बन्धन कुछ भी तो नहीं करने देता हमें। यह हमारा शरीर ही प्रवृत्ति का दुर्ग बनकर लंका बन चुका है, कैसे उद्धार होगा। महाराजा दशरथ ने मनु के रूप में तप किया तो राम आए। और राजा जनक के यहां भक्तिरूपी सीता के जन्म लेने पर राम को सीता के स्वयंवर में जाना ही पड़ता है। सन्तों की सन्तता के कारण भगवान् राम को चित्रकूट में पदार्पण करना ही पड़ता है। रावण तो राम को आमन्त्रण नहीं देता किन्तु फिर भी भक्तों और भक्ति की रक्षा करने के लिए राजा राम लंका में आते ही हैं। आज के युग के हमारे लिए मन को बहलाने का, आश्वासन देने का यही एक तरीका है साधन है कि असत् प्रवृत्तियों की इस शरीररूपी लंका में कभी न कभी तो अयोध्यापति राम आयेंगे ही। किन्तु हमें दिन-रात अपनी इस शरीररूपी लंका को जलाने का प्रयत्न तो करना चाहिए। भक्तिरूपी विभीषण द्वारा भगवान् को पुकारना चाहिए कभी न कभी तो किसी न किसी रूप में पवनपुत्र हनुमान् अवश्य ही भक्ति रूपी मां सीता की खोज में लंका में आएंगे और इस शरीररूपी लंका को जलाकर आपकी पुकार अयोध्यापति राम तक अवश्य ही पहुंचाएंगे। क्योंकि—

ज्ञान अवधेश गृह गेहिनी भक्ति शुभ तत्र अधिकार भूभार हर्ता।

आज भक्त इस जीवात्मा में लंका का अनुभव कर रहा है। जहाँ कि उसे अयोध्या का अनुभव करना चाहिए था। इसी शरीर में हमें

फिर अयोध्यारूपी नगरी बसानी है। जहाँ फिर महाराज दशरथ अपनी तीन रानियों के साथ होंगे। इसके विषय में शंकराचार्य जी कहते हैं—

ज्ञानशक्तिरस्य कौशल्या सुमित्रा, उपासनासिका क्रियाशक्ति कैकेयी।

जब यह जीवात्मा दशरथ बनेगा, ज्ञान शक्ति, उपासना और क्रिया रूपी तीन रानियाँ होंगी। तब ही इस लंका रूपी शरीर के हृदय में राम का अवतार होगा तब श्रीराम जी को लंका जाने के लिए कहना नहीं पड़ेगा अपितु भक्तों के हृदय में तो राम स्वयम् ही अवतार के लिए भी आतुर रहते हैं। रामचरितमानस के सुन्दरकाण्ड में रामभक्त विभीषण पवनपुत्र हनुमान् जी से कहते हैं कि—

तामस तनु कुछ साधन नाहीं। प्रीति न पद सरोज मन माहीं।
अब मोहि भा भरोस हनुमन्ता। बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं सन्ता।

विभीषण कहते हैं कि मेरा तामसिक और राक्षस शरीर होने के कारण और न ही मन में रामचन्द्र जी के चरण कमलों में प्रेम ही है। इतना नीच होते हुए भी हे पवनपुत्र हनुमान्, अब मुझे पूर्ण विश्वास हो गया है कि श्रीरामचन्द्र जी की मुझ पर कृपा है, क्योंकि हरि की कृपा के बिना सन्त नहीं मिलते हैं। इसीलिए जब जीवात्मा आतुर होकर परमात्मा को पूरी भक्ति से, पूर्ण श्रद्धा से, पूरी लगन में मगन होकर पुकारेगा तब प्रभु अवश्य ही टेर सुनेंगे और तब कैकेयीरूपी क्रिया शक्ति का बहाना भी नहीं पड़ेगा। भगवान् श्रीराम अवश्य ही कलियुग की शरीररूपी लंका को ध्वस्त कर अयोध्या का निर्माण करेंगे। लेकिन जब तक संसार में राग बना है तब तक आसुरी वृत्तियोंरूपी लंका नष्ट नहीं होगी। इसे नष्ट करने के लिए जीवन में वैराग्य लाना ही होगा। इस रागात्मिका वृत्ति को हटाकर साधना द्वारा प्रभु को पुकारना होगा। तब भगवान् राम शरीररूपी लंका में प्रवेश कर काम, क्रोध, मोह, अहंकार रूपी राक्षसों का वध कर इस शरीर को जीवरूपी विभीषण को सौंप देंगे। तब हमें प्रभु-दर्शन के लिए दर-बदर भटकना नहीं पड़ेगा। स्वयम् ही भक्ति योग की साधना और तपस्या से अपनी बुद्धि की रोशनी द्वारा हृदय में प्रभु का दर्शन अवश्य ही होगा। किन्तु यह विज्ञान की नहीं

ज्ञान की बात है यदि विज्ञान ने प्रभु का आविष्कार किया होता तो आज कम्प्यूटर का एक बटन दबाते ही प्रभु के दर्शन हो जाते, किन्तु प्रभु-दर्शन सत्यता तो ज्ञान की बात है इसके लिए कठोर से कठोर तपस्या करनी पड़ती है। बड़े भयानक जंगलों को काटकर प्रभु-भक्ति का मार्ग बनाना पड़ता है। अपने अहंकार को समाप्त करना पड़ता है। ब्रह्म-पुत्र नारद जी के अहंकार को भी प्रभु ने अनेक बार नष्ट कर उन्हें भक्ति के मार्ग से गिरने नहीं दिया। और जब प्रभु-भक्ति में लीन हो पाता है वहीं एक नई अयोध्या का निर्माण हो जाता है।

सुन्दरकाण्ड-भीषण काण्ड

राम-रावण पथ

अयोध्या में अधर्म की अग्नि जल रही है। केवट की नाव को दीमक चाटती जा रही है। सीता की रक्षा करने वाले जटायु को आज अधर्मियों ने पिंजरे में ब़न्द कर रखा है ताकि इस कलियुग में किसी अबला की रक्षा करने के लिए वह अपनी जान की कुर्बानी न दे सके। आज हमें आवश्यकता है सखरे से लंका दहन की। क्योंकि—

आज हमें हमने निजी जीवनी में रामराज्य लाना ही है। असत् को समाप्त कर सत् की ओर बढ़ना ही है। तब हमारे जीवन में धर्म का एक ऐसा पवित्र झरना बहने लगेगा जहां तू और मैं का स्थान नहीं रहेगा। भक्त भक्तिरूपी प्रेयसी के द्वार को खटखटाता हुआ मिलन वेदना में स्वयम् को कभी तू कभी मैं कह देता है लेकिन भक्तिरूपी प्रेयसी के घर में तू मैं के लिए स्थान कहां। निराश वैरागी वर्षों तक निरन्तर प्रार्थना एवम् साधना करने के बाद पुनः भक्तिरूपी प्रेयसी का द्वार खटखटाता है। अन्दर से आवाज़ आती है कौन? वैरागी भक्त कहता है न तू न मैं। तब भक्ति का द्वार खुल जाता है। मिलन स्वप्न साकार होता है। जब मैं और तू की हृदय की गाँठें खुल जाती हैं।

४२. देवी पूजा

प्यारे श्रोतागणो और विशेष भक्ति, ज्योति, शक्ति वीरता की प्रतीक नारियो! आप सभी जानते हैं कि 20 मार्च से 28 मार्च तक नवरात्रों का उत्सव बड़ी श्रद्धा, भक्ति और उत्साह से हिन्दूधर्म के द्वारा मनाया जाता है। देवीपुराण का एक श्लोक है कि—

या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥

अर्थात् जो देवी संसार के सभी प्राणियों में शक्ति रूप होकर निवास करती है उसको मेरा नमस्कार है? इन नवरात्रों के दिनों में देवी पूजा का विशेष महत्त्व है। यह नौ दिन नवरस रूपी नारियों की नौ शक्तियों के प्रतीक हैं। श्री मार्कण्डेय जी ने अपने पितामह से पूछा कि—

यद् गुह्यं परमं लोके सर्वरक्षाकरं नृणाम्।
यन्न कस्यचिदाख्यातं तन्मे ब्रूहि पितामह॥

हे ब्रह्म पितामह! आप मुझे वह साधन बताइये जो अत्यन्त गोपनीय और दुर्लभ है और जिस साधन से संसार में मनुष्य मात्र की रक्षा होती है। ब्रह्मा जी ने कहा कि— हे ब्राह्मण मुनि सुनो, जो सम्पूर्ण प्राणियों का कल्याण करने वाला देवताओं का नव देवी कवच है और जिसकी महिमा, स्तुति, प्रत्येक वर्ष में प्रत्येक नवरात्रों में गाई है वह नवशक्ति कवच की शक्तियों का नाम इस प्रकार है— प्रथमं शैलपुत्री च, द्वितीया ब्रह्मचारिणी, तृतीयं चन्द्रघण्टेति कूष्माण्डेति चतुर्थकम्, पञ्चमं स्कन्दमातेति, षष्ठी कात्यायनीति च, सप्तमं कालरात्रीति, महागौरीति चाष्टमम्। नवमं सिद्धिदात्री च नवदुर्गाः प्रकीर्तिताः। उक्तान्येतानि नामानि ब्रह्मणैव महात्मना॥ हे मार्कण्डेय मुनि सुनो। देवी दुर्गा की नव-शक्तियां हैं। पहली शक्ति का नाम शैलपुत्री हिमालय कन्या पार्वती है। दूसरी शक्ति का नाम परब्रह्म परमात्मा को साक्षाकार कराने वाली ब्रह्मचारिणी है। तीसरी शक्ति चन्द्रघण्टा है अर्थात् चन्द्रमा जिसका घण्टा रहता हो। चौथी शक्ति कूष्माण्डा है

अर्थात् सारा संसार जिसके उदर में निवास करता हो। पांचवीं शक्ति स्कन्दमाता जो कार्तिकेय की जननी है। छठी शक्ति का नाम कात्यायनी है जिसका दिन आज छठे नवरात्र के रूप में हम मना रहे हैं जो महर्षि कात्यायन के अप्रतिम अभूतपूर्व तेज से उत्पन्न हुई है। सातवीं शक्ति कालरात्री है जो समस्त सृष्टि का संहार करने वाली है। आठवीं शक्ति महागौरी है अर्थात् जो नीलकण्ठ महादेव श्री शंकर भगवान् के महाकाली कहने पर क्रोध से जिन्होंने तपस्या करके ब्रह्मदेव से गौर वर्ण का वरदान लिया है। और नौवीं शक्ति सिद्धिदात्री है अर्थात् सारे संसार को अणिमा, महिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व, कामावसायिता इन आठ रूपों से सिद्धि देने वाली है। ये नौ शक्तियां ही नव दुर्गा कहलाती हैं। देवी पुराण में लिखा है कि—

अग्निना दह्यमानस्तु शत्रुमध्ये गतो रणे।
विषमे दुर्गमे चैव भयार्ताः शरणं गताः॥

अर्थात् जो मनुष्य अग्नि में जल रहा हो, जो युद्ध भूमि में शत्रुओं से घिर गया हो, जो अत्यन्त कठिन विपत्ति में फंस गया हो वो यदि भगवती दुर्गा रूपी शक्ति की शरण में आ जाए तो उसका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। क्योंकि पुराणों में भी इस महाशक्ति के सम्बन्ध में कहा है कि कण-कण में व्याप्त महामाया की शक्ति ही सारे विश्व को चलाने वाली और सम्पूर्ण चराचर की स्वामिनी है। वह अनादि और अनन्ता है। और उस महाशक्ति महामाया के किसी भी अवतार की और किसी भी रूप की अराधना दुष्टों को दण्ड देने वाली और तेज को बढ़ाने वाली है। और यह नवदुर्गा भक्ति नवरात्रों में और अधिक शक्तिदायक फलदायक होती है। जैसे कि पूर्णिमा के दिन चन्द्रमा अपनी पूर्ण शक्ति चांदनी के साथ सारे आकाश में शीतल प्रकाशपुंज का रूप धारण करता है।

हठयोग की भाषा में इस महामाया की नौ शक्तियां मनुष्य के नौ छिद्र कहे जाते हैं। पञ्चभूत और तीन गुण, महामाया शक्ति की आठ भुजाएं हैं और महाशक्ति की एक अद्भुत महिमा यह है कि उसका

प्रत्येक अवतार तन्त्र शास्त्र से सम्बन्ध रखता है। शिव पुराण के अनुसार शिव जी के दस अवतारों में उनके प्रत्येक अवतार के समय महाशक्ति भी उनके साथ थी। उन अवतारों और महाशक्तियों के नाम हैं—

महाकाल अवतार में महाकाली, शक्तिरूप तारकेश्वर अवतार में तारा शक्ति का रूप, भुवनेश अवतार में भुवनेश्वरी शक्ति का रूप, षोडश अवतार में षोडशी शक्ति का रूप, भैरव अवतार में भैरवी शक्ति का रूप, छिन्न मस्तक अवतार में छिन्नमस्ता शक्ति रूप, धूम्रवान् अवतार में धूमावती शक्ति का रूप, बगलामुख अवतार में बगलामुखी शक्ति का रूप, मातंग अवतार में मातंगी शक्ति का रूप और कमल अवतार में कमला व कमलात्मिका शक्ति का रूप। ये दस महामाया शक्तियों के रूप दस महाविद्या भी कहलाते हैं। देवी पुराण में देवी पूजा के विषय में एक कहानी का वर्णन है जो मैं आज आपको सुना रही हूं।

एक बार ब्रह्मर्षि नारद जी के मन में शंका पैदा हुई कि इस संसार के तीनों देवता अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु और महेश सदैव किसकी उपासना किया करते हैं? यह शंका और संदेह दूर करने के लिए नारद जी भगवान् शंकर के पास पहुंचे। तब नारद जी ने शिव जी से पूछा कि मुझे तो ब्रह्मा जी, विष्णु जी और आपसे बढ़कर कोई अन्य देवता नहीं मालूम होता। फिर आप तीनों किस की आराधना किया करते हैं? तब शिव जी ने नारद जी को समझाते हुए कहा कि—

हे मुनिवर नारद! इस संसार में सूक्ष्म एवम् स्थूल शरीर से परे जो महाप्राण आदि शक्ति है वह स्वयं पारब्रह्म स्वरूप है। वह केवल अपनी इच्छा मात्र से ही सृष्टि की रचना, पालन एवम् संहार करने में समर्थ है। वास्तव में यद्यपि वह निर्गुण स्वरूप है तथापि समय-समय पर धर्म की रक्षा एवम् दुष्टों के नाश हेतु उन्होंने पार्वती, दुर्गा, काली, चण्डी, वैष्णो एवम् सरस्वती के रूप में अवतार धारण किए हैं। फिर भगवान् शंकर नारद जी का सन्देह निवारण करते हुए कहते हैं कि हे नारद सभी को यह भ्रम होता है कि यह देवी कौन है? क्या यह देवी पारब्रह्म से भी बढ़कर है?

श्रीमद्देवी भागवत में ब्रह्मा जी के एक प्रश्न का उत्तर देते हुए देवी ने स्वयम् कहा है कि इस संसार में एक ही वास्तविकता है और वह है सत्य, मैं ही सत्य हूँ। मैं न तो नर हूँ न नारी और नाही ही कोई ऐसा प्राणी हूं जो नर हो या मादा हो। परन्तु कोई भी वस्तु ऐसी नहीं हैं जिसमें मैं विद्यमान नहीं हूं। मैं प्रत्येक भौतिक वस्तु में शक्ति के रूप में निवास करती हूं।

श्रीदेवी पुराण में ही एक स्थान पर भगवान् विष्णु यह स्वीकार करते हुए कहते हैं कि वह स्वयम् कर्म मुक्त या स्वतन्त्र नहीं हैं वह तो केवल महादेवी को आज्ञा का पालन करते हैं। अर्थात् हम तीनों ब्रह्मा, विष्णु, महेश के कार्यों की संचालन कर्ता स्वयम् महादेवी ही हैं। यह संसार तो मानो एक कठपुतली का तमाशा है। इसकी डोरी स्वयम् देवों के हाथों में है। यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड तो देवी की छाया मात्र है। इस समस्त संसार में भौतिक पदार्थों एवम् जीवों में दैवी शक्ति द्वारा ही चेतना व प्राण का संचार होता है। इस नश्वर संसार में चेतना के रूप में प्रकट होने से देवी को चित्स्वरूपिणी भी माना जाता है। काल की गति के अनुसार सभी देवता कालान्तर में नाशवान् हो सकते हैं परन्तु दैवी शक्ति सदैव अजन्मा और अविनाशी है, वही आदि शक्ति और अनन्त शक्ति है।"

श्रीभागवत पुराण में महर्षि वेदव्यास राजा जनमेजय जी से कहते हैं कि— हे जनमेजय! आप महामाया महाशक्ति के विषय में तनिक भी सन्देह ना रखें, क्योंकि जिस प्रकार एक जादूगर अपनी जादूगरी की शक्तियों द्वारा अपनी गुड़ियों का खेल रचता है, उसी प्रकार महादेवी भी अपनी इच्छा और शक्ति द्वारा चल-अचल भौतिक प्राणियों की रचना और संहार किया करती हैं। इसी कारण महादेवी सभी मनुष्य और देवताओं द्वारा पूजनीय भी हैं।

देवी पुराण में देवी की उत्पत्ति के विषय में एक और कथा आती है कि एक बार राक्षसों के अत्याचारों से तंग आकर देवताओं ने जब ब्रह्मा जी के मुख से यह सुना कि दैत्यराज को वर प्राप्त है— उसकी

मृत्यु केवल किसी कुँआरी कन्या के हाथों होगी, तो सब देवताओं ने सम्मिलित होकर अपने-अपने तेज द्वारा देवी के एक जैसे रूप को प्रकट किया। जिसके सारे अंग देवताओं के तेज द्वारा बनाए गए थे। सब से प्रथम भगवान् शंकर के तेज द्वारा देवी का मुख प्रकट हुआ, यमराज के तेज से इस देवी के मस्तक के केश उत्पन्न हुए, विष्णु के तेज द्वारा देवी की भुजाओं का निर्माण हुआ, चन्द्रमा के तेज द्वारा देवी के स्तन उत्पन्न हुए, इन्द्र के तेज से देवी की कमर बनी, वरुण के तेज से जंघाएँ, पृथ्वी के तेज द्वारा नितम्ब, स्वयम् ब्रह्मा के तेज द्वारा देवी के चरण, उत्पन्न हुए सूर्य के तेज द्वारा पैरों के अंगुलियां, वसुओं के तेज द्वारा दोनों हाथों की अंगुलियां, प्रजापति के तेज से देवी के दांत, अग्नि के तेज के प्रकाश से देवी के दोनों नेत्र, सन्ध्या की कालिमा से देवी की दोनों भवें, वायु के तेज से देवी के कान और इस प्रकार अन्य देवी-देवताओं के तेज द्वारा देवी के अन्य अंगों की उत्पत्ति हुई।

देवी का सम्पूर्ण शरीर बनने के पश्चात् अब उसे देवी के साज-शृंगार के लिए भगवान् ने उस महाशक्ति देवी को अपना त्रिशूल दिया, लक्ष्मी जी ने कमल का फूल, भगवान् विष्णु ने सुदर्शन चक्र, अग्नि देवता ने शक्ति और बाणों भरा तीर तरकश, यमराज ने दण्ड दिया। काल ने अपनी तीखी तलवार, विश्वकर्मा ने अपना निर्मल फरसा, प्रजापति ने स्फटिक मणियों का हास, वरुण ने अपना दिव्य शंख, हनुमान् जी ने अपनी गदा, शेषनाग जी ने नागमणियों से सुशोभित नाग, इन्द्र ने अपना वज्र, भगवान् राम ने अपना धनुष, वरुण देव ने पाश व तीर, ब्रह्मा जी ने चारों वेद, हिमालय पर्वत ने देवी को सवारी के लिए सिंह प्रदान किया। और समुद्र ने अपने कीमती खजाने से उज्ज्वल मोतियों का हार, कभी न फटनेवाला दिव्यवस्त्र, चूड़ामणि, कानों के दो सुवर्ण कुण्डल, हाथों के सुवर्ण कंगण, पैरों के नूपुर और अंगूठियां भेंट कीं। इन सारी वस्तुओं को देवी ने सोलह शृंगार द्वारा अपना अठारह भुजाओं में धारण किया।

मनन विधि— आंख मूंद कर ध्यान लगा कर हजारों कमल एक ही साथ खिल उठे हों, हजारों सूर्य एक साथ ही आकाश मंडल में उदय हो गए हों ऐसा है उसका रूप, ऐसा है उसका तेज। मानो सूर्य-चन्द्र दोनों उसके नेत्र हैं, सारे सितारे उसके आभूषण हैं, हरी भरी पृथ्वी उसका सिंहासन और नीला आसमान उसकी छत्रछाया, सिंदूरी लाल सुए रंग के फूलों में उसका सुन्दर रूप झलकता है। अस्त होते हुए सूर्य की लाली में भी वही विद्यमान है। हिमपात या बर्फ के कारण सफेद चादर से ढके हुए पर्वतों में उसकी, शान्त शीतलता है। और उस पर सफेद हंस-वाहन पर श्वेत वस्त्र धारण किये सरस्वती के रूप में वही शोभायमान है। स्त्रियों की लाज में, योद्धाओं के आक्रोश और वीरता में, विकराल काल की ज्वाला रूपी लपटों की जिह्वा में उसी की चमक-दमक है। अम्बा के रूप में ममतामयी मां का स्नेह उंडेल देती है। त्रिपुर सुन्दरी के रूप में अद्वितीय सम्मोहन है, और महाकाली के रूप में नरमुण्डों की माला पहने भयानक नृत्य करती है। यद्यपि वह निर्गुण है तथापि समय-समय पर दुष्टों के नाश के लिए अवतार धारण करती है।

४३. विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा

आज का मेरा विषय है कि "विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा" अर्थात् जो अपने को बचाता है वह मिट जाता है और जो अपने को मिटाता है वह बच जाता है। यजुर्वेद का यह सन्देश ही हम को तप और साधना के मार्ग पर चलने का सन्देश देता है और मृत्यु के भय को दूर कर मोक्ष और मुक्ति की राह पर हमारे कदम रख देता है, और यह वह राह है जहाँ शाश्वत, नित्य और दिव्यता को प्राप्त करने के लिए हमें स्वयम् को मिटाना पड़ता है। आत्म अनुभवों के भावों की कुर्बानी देनी पड़ती है और मुक्ति की इस राह पर हमारे चरण, कदम कहीं डगमगा ना जायें इसके लिए हमें कठिन तपस्या और साधना करनी पड़ती है। बीज यदि स्वयं को बचाएगा तो नष्ट हो जाएगा। और इसके विपरीत यदि बीज स्वयम् को बलिदान करेगा और उसे सत्यरूपी पानी से सींचेगा तो एक ना एक दिन उसमें से आध्यात्म का अंकुर अवश्य फूटेगा और भक्ति की ऐसी बेल, फूल और पौधा लहराएगा कि चारों तरफ अमरता की सुगन्ध फैलने लगेगी। किन्तु यह सब तब ही सम्भव हो सकेगा जब हम कामनाओं का नाश करेंगे। क्षोभ और लोभ से दूर रहेंगे, पशुता का नाश करेंगे, और राग रंगों से दूर हटकर मुक्ति पाएंगे। इन सब का नाश होता है— "तेषामपि परो जीवः स एव परमेश्वरः" अर्थात् जब मनुष्य परमात्मा की ही राह पर चल पड़ता है तो मानव में भी हमें परमात्मा के दर्शन होने लगते हैं। यही तो शिवत्व है, शिव शक्ति का सोमरस है, निर्वाण है, जीवन की मुक्ति है, शान्ति है और केवल परम शान्ति है। ऐसी शान्ति के विषय में शास्त्रों में लिखा है—

दिशं न काञ्चिद विदिशं न काञ्चित्, क्लेशक्षयात्केवलमेति शान्तिः।

अर्थात् महानिर्वाण या जीवन की मुक्ति और मोक्ष के लिए मानव का न आकाश में आमना-सामना होता है और न धरती पर क्योंकि जिस प्रकार जलते हुए दीपक का तेल जब समाप्त हो जाता है तो

दीपक स्वयमेव ही शान्त हो जाता है। धर्म रूपी उस अग्नि में दीया अपने क्षोभ दुःखों को जलाकर राख कर देता है। उसी प्रकार मनुष्य भी जब वासनाओं को जलाकर समाप्त कर देता है तब वह संकल्परूपी अन्धकार में लिप्त होकर तप के मार्ग पर अपने पांव स्थिर कर लेता है। वह राग द्वेष आदि चित्तरूपी चंचलता ही तो थी जो उसे स्थिर नहीं होने देती थी। और वह अस्थिरता में भी वासना, और मोह का महल खड़ाकर अपने को स्थिर एवम् अभिमानी समझने लगता है। किन्तु जब वासना और मोह का महल गिर जाता है तब मनुष्य स्थिर, अविनाशी जीवन को प्राप्त होने लगता है। यह तो आप सभी जानते हैं कि कामना ही कामना की जननी है, कर्म ही कर्म का विस्तार है और कांटे से ही कांटा निकाला जा सकता है। तब क्षणिक स्थायीपन से अर्थात् पानी के बुलबुले से, या रेत के महल से मानव शाश्वतरूपी सत्य को कैसे प्राप्त कर सकेगा। अज्ञानरूपी इच्छा और कुकर्म करने का स्रोत तो अज्ञान ही है, इस अज्ञानरूपी अन्धकार को हटाने के लिए अपने हृदय और चित्त की मलिनता, द्वेषता को हटाना ही होगा, वासना के कोलाहल का दमन, नाश करना ही होगा और फिर देखिये इस अज्ञान रूपी परदे, आवरण और घूंघट के हटते ही हृदयरूपी दर्पण में उस अदृश्य शक्ति और चित्र का दर्शन होगा, जिसे यजुर्वेद में सुमन के रूप में पुकारा गया है। जहाँ भक्त ज्ञाता-ज्ञेय, ज्ञान की कभी ना टूटने वाली रेखा को खींच देगा। वहीं तो परमात्मा का अवतरण है, अलौकिकता का स्वर्ग है, अजन्मा शाश्वत देवताओं का महल है।

किन्तु मेरा आज का विषय था कि "विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा" जो अपने को बचाएगा वह मिट जाएगा और जो अपने को मिटाएगा वह बच जाएगा। इसी प्रकार मनुष्य जीवन के मृत्यु द्वार पर प्राप्त को खोकर ही प्राप्ति को पा सकता है। क्योंकि विनाश, मरण, लोप हो जाना और निरन्तर जलाने-बुझाने की क्रिया ही आदमी को मरजीवा बनाती है। निरन्तर विनाश ही तो सृजन को जन्म देता है। दूसरे शब्दों में, हम कह सकते हैं कि कीड़े रहित पौधे को जड़ से उखाड़कर ही हम नये साफ सुगन्धित बीजारोपण से ही नये सुन्दर लाभदायक पौधे को

अंकुरित कर सकते हैं। और आज के युग की सब से बड़ी सत्यता तो यह है कि हम क्षणिक सुखों के लिए प्रतिक्षण प्रतिपल मर रहे हैं। मानव के जन्म के साथ ही उसकी यात्रा मृत्यु की ओर आरम्भ हो जाती है। शिशुत्व की मृत्यु के साथ ही मानव युवावस्था को प्राप्त होता है और युवावस्था का अन्त होकर ही जरावस्था का प्रारम्भ होता है और जरावस्था की अन्तिम सीढ़ी का अन्तिम लक्ष्य मृत्यु ही है और मृत्यु का होना ही नये जन्म जीवन का प्रारम्भ है। इसलिए अन्त में हमें यह मानना ही पड़ता है कि यह इस जन्म और मृत्यु की सांसारिक यात्राओं को त्याग कर ही मानव आध्यात्मिक जगत् के प्रवेश द्वार पर आता है। जहां लौकिक सांसारिक जगत् की सीमाएं समाप्त होती दिखाई देती हैं वहां अलौकिक जगत् की सीमा रेखाएं स्पष्ट दिखाई देने लगती हैं। अज्ञान का अन्धकार क्षीण होते ही ज्ञान का प्रकाश और बढ़ जाता है। हमारे नयनों की पार्थिव दृष्टि जहां नष्ट होती है वहाँ अपार्थिव दृष्टि का प्रकाश जगमगा उठता है। हमारे हृदयों से राग द्वेष के नष्ट क्षरण होते ही हमारे जीवनों में आध्यात्मिक झरनों की मन्दाकिनी फूट पड़ती है। इसलिए यजुर्वेद कहता है कि—

सम्भूतिञ्च विनाशञ्च यस्तद्वेदोभयं सह।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्याऽमृतमश्नुते॥

अर्थात् विनाश के साथ सृजन एक ऐसी मानव इतिहास की आध्यात्मिक जय यात्रा है जहाँ असत् से सत् की ओर निरन्तर आरोहण है। अशिव से शिव की ओर सतत संवरण है। अंमगल से मंगल दिशा की ओर आध्यात्मिक प्रयाण है। इस यात्रा का अन्त ऐसा है कि—

न सो अस्ति यः स्यान्न गतक्लमः सुखी।

तब मानव ऐसे पावन तीर्थ की धरती पर पांव रखता है जिसकी रमणीयता, सुन्दरता, पावनता पर एक क्षण भी दृष्टि डाल ले तो वह जीवन मृत्यु से परे होकर स्वर्ग के मोक्ष द्वार पर पहुंच जाता है। वहां मानव शनैः-शनैः गंगा-यमुना की अन्तर्वेदी पर एक नई आर्य धर्म संस्कृति का निर्माण करता है, जो पावन तपोवन आध्यात्मिक ज्ञान में तैरती रहती है। उस तैरने में ही उसकी आध्यात्मिक पिपासा शान्त होती रहती है। इस भूमि को ही वेदों-पुराणों में अवतार भूमि कहा गया है।

४४. आर्यसमाज का स्थापना-दिवस

प्यारे श्रोतागणो! इस सप्ताह के अन्त में प्रत्येक आर्यसमाज मन्दिरों में आर्यसमाज स्थापना-दिवस मनाया जाएगा। बहुत प्रसन्नता और हर्ष की बात है जिस प्रकार हम हर साल अपना जन्मदिन मनाते हैं उसी प्रकार वर्ष में एक बार आर्यसमाज का जन्म दिन भी मना लेते हैं। किन्तु आर्यसमाज के माता-पिता कौन थे? क्यों इस आर्यसमाज का जन्म हुआ और किन बातों के लिए इस आर्यसमाज की स्थापना की गई? इन सब बातों के पीछे केवल एक ही आदर्श महान् सन्देश था कि मानव को श्रेष्ठ पुरुष बनाना।

आर्यसमाज के जन्मदाता महर्षि दयानन्द जी अवश्य थे इसमें किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं किन्तु केवल दयानन्द जी के स्वविचारों द्वारा आर्यसमाज का जन्म नहीं हुआ अपितु मेरी दृष्टि में महर्षि दयानन्द जी के आध्यात्मिक-धार्मिक गर्भ में जब उन्होंने अनाचार, नारीजाति के अत्याचारों की चीत्कार, बाल विवाह का क्रन्दन, देश की गुलामी, अन्याय, अन्धविश्वास अधर्म की वृद्धि आदि ऐसी अनेक बातें जब ऋषि दयानन्द जी के आध्यात्मिक गर्भ रूपी शीशे से जा टकराईं और इन सब का टकराव होते ही महर्षि दयानन्द जी का हृदय चूर-चूर हो गया और वह इस बात के लिए सोचने के लिए विवश हो गए कि हे परम पिता परमेश्वर मैं ऐसा क्या करूं जिससे मेरा देश स्वतन्त्र हो जाए। भारत मां की गुलामी में मैं ऐसा क्या करूं जिससे मातृशक्ति रूपी नारियों की करुण चीत्कार समाप्त हो जाए। मैं ऐसा कौन-सा कदम उठाऊँ कि बालक एवम् बालिकाओं के मुख पर मुस्कान ला सकूँ। मैं क्या करूं जो बाल-विधवा जैसे अधार्मिक कार्य को रोक सकूं, वेद पढ़ने का अधिकार सारी मानव जाति को दिलवा सकूं। इन सारी बातों से जब महर्षि द्रवित हो उठे उनका हृदय टूटकर चूर-चूर हो गया तो वह चल पड़े परमात्मा की शरण में, सच्चे गुरु और सच्चे शिव की खोज में।

अनेक वर्ष की तपस्या के पश्चात् सारे सिद्धान्तों का एक ही निचोड़ उन्होंने निकाला कि मनुर्भव अर्थात् सभी श्रेष्ठ पुरुष बनें। इसलिए महर्षि जी ने अपने सर्वतोन्मुखी आन्दोलन का नाम रखा था आर्यसमाज। आर्य शब्द का अर्थ ही है श्रेष्ठ पुरुष, अर्थात् प्रगतिशील, सदाचारी और ईमानदार व्यक्ति। अपनी पुस्तक 'स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश' में स्वामी जी लिखते हैं कि— जैसे आर्य श्रेष्ठ पुरुष को कहते हैं वैसे ही दस्यु दुष्ट मनुष्यों को कहते हैं। यह महर्षि दयानन्द जी का मन्तव्य ही नहीं था अपितु महर्षि जी का सारा जीवन-कर्म इसी बात में बीता कि वह संसार में श्रेष्ठ मानवता का प्रसार-प्रचार करना चाहते थे। इसके लिए महर्षि दयानन्द जी को अनेक परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। कितना अपमान सहना पड़ा, कितने प्रकार का ज़हर पीना पड़ा किन्तु इतने जुल्म सहने के बाद भी महर्षि जी अपने धर्म पर अड़े रहे। जब सब साथी-संगियों ने साथ छोड़ दिया तो भी वह अकेले ओ३म् की अखण्डिनी पताका लिये अड़े रहे। आज भी जब मैं उनकी ओ३म् की अखण्डिनी पताका वाली तस्वीर देखती हूं तो मेरे मुख से अनायास ही फूट पड़ता है।

देखो किसको मिलती है मंजिले धर्म-मनुज।
एक तरफ मैं हूं दूसरी तरफ ज़माना है।।

किन्तु अन्त में महर्षि जी को मंजिल मिली लोगों ने उन्हें स्वीकार किया। महर्षि जी के विषय में अमेरिका के एक विद्वान् श्री एण्ड्रूज थे। जिन्होंने महर्षि जी को बहुत करीब से देखा। उन्होंने महर्षि दयानन्द जी की शुद्ध सात्त्विक मनुज भावना की पुष्टि करते हुए आर्यसमाज को उन्होंने "असीम प्रेम की आग" की उपाधि दी थी कि जो मानव द्वेष को जलाकर खाक कर देगी और मनुष्य मनुष्य में फिर से सौहार्द और प्रेम की तरंगें उत्पन्न कर दुनिया में फैले हुए पाखण्ड को दूर करके, संसार को सच्ची मानवता का पाठ पढ़ाकर इस पृथिवी, धरती मां को नवजीवन प्रदान करेगी और सारे संसार में सुख-शान्ति का युग प्रारम्भ होगा। जिसे देखकर संसार के हर देश के मानव के मुख से यही शब्द निकलेगा। कि—

ऐ काश, अपने मुल्क में भी ऐसी फ़िजाँ बने।
मन्दिर जले तो रंज मुसलमानों को भी हो॥
पामाल होने पाए ना मस्जिद की आबरू।
ये फिक्र मन्दिर के निगहबानों को भी हो॥

इन्हीं शब्दों का अर्थ समझते हुए महर्षि दयानन्द जी के एक अच्छे मित्र प्रसिद्ध मुस्लिम नेता सर सैय्यद अहमद खां ने भी महर्षि की मृत्यु के पश्चात् उन्हें श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए कहा था कि हमारा स्वामी जी से घनिष्ठ सम्बन्ध था। हम सब उनका आदर करते थे। महर्षि विद्वान् ही नहीं अपितु एक अत्यन्त श्रेष्ठ पुरुष भी थे। महर्षि दयानन्द जी का नारा-ए-मस्ताना था कि इस धरती का प्रत्येक मानव श्रेष्ठ पुरुष बन जाए।

महर्षि दयानन्द जी का श्रेष्ठ पुरुष बनाने की प्रक्रिया का तरीका भी अनोखा ही था। वह उसका आधार धर्म को ही मानते थे। परन्तु धर्म की परिभाषा महर्षि की दृष्टि में साम्प्रदायिक नहीं थी अपितु मानवीय थी। महर्षि दयानन्द जी कहते थे कि ईश्वर की आज्ञा का यथावत् पालन करना और जीवन में पक्षपातरहित होकर न्याय करना ही सब से बड़ा धर्म है। और अधर्म की परिभाषा के विषय में ऋषि का कहना था कि जो ईश्वर की आज्ञा का उल्लंघन करता हो, अन्यायी हो, अविद्या, हठ, अहंकार क्रूरता से युक्त हो और जो केवल अपने ही हित की बात सोचता हो, वह सब से बड़ा अधर्मी है। और सत् एवम् श्रेष्ठ पुरुष की परिभाषा और व्याख्या करते हुए महर्षि दयानन्द जी कहते हैं कि जो सत्यप्रिय हो, धर्मात्मा हो, विद्वान् हो और सब के हित में ही अपना हित समझता हो, ऐसे आदमी को वह अच्छा श्रेष्ठ इन्सान मानते थे। दिव्य द्रष्टा दयानन्द जी की न्याय करने की कसौटी भी अद्‌भुत और निराली थी। महर्षि जी इसके विषय में स्पष्ट लिखते हैं कि— जो सत्य है उसको मानना और मनवाना और जो असत्य है उसको छोड़ना और छुड़वाना मुझे अभीष्ट है। क्योंकि जिस युग में महर्षि का यह आन्दोलन शुरू हुआ था उस युग में नारी जाति को हेय दृष्टि से

देखा जाता था और उसे ना जाने किन-किन नामों से पुकारा जाता था। वह धर्म की दृष्टि पर भी चले तो अधर्मियों की कुदृष्टि ही उन पर पड़ती थी कि—

देवियां पहुंची थीं अपने बाल बिखराए हुए।
देवता मन्दिर से निकले और पुजारी हो गए॥

ऐसे अधर्म युक्त चाल-चलन का त्याग करवाना स्वामी जी का मुख्य उद्देश्य था। शक्तिरूपी मां, नारी चाहे वह किसी भी रूप में हो उसे केवल मातृत्व की दृष्टि से देखना मनुष्य का सच्चा धर्म समझते थे। ऐसे महान् युगपुरुष महर्षि दयानन्द जी का यही कहना था। वह आगे लिखते हैं कि— मनुष्य उसी को कहना चाहिए जो मननशील होकर स्व आत्मवत् दूसरों के सुख-दुःख और लाभ-हानि को समझे। ना कि इसके विपरीत दूसरों के अधिकार व धन-सम्पत्ति छीनने में लगा रहे और युद्ध, ईर्ष्या-द्वेष की अग्नि में अन्य लोगों को भी जलाता रहे। महर्षि मनुर्भव का सन्देश देते हुए कहते थे कि मनुष्य सर्वप्रथम यह अच्छी तरह समझ ले कि "ईश्वर ...... जो कुछ भी इस दुनिया में हम देखते हैं वह सब कुछ महान् शक्ति ईश्वर के द्वारा ही व्याप्त है, ईश्वर ही उसका निर्माता, पालक व मालिक है। इसलिए मनुष्य श्रद्धापूर्वक मालिक की कारीगरी को नित्य देखा करे कि उस ईश्वररूपी ब्रह्मा ने मनुष्य के आनन्द भोग के लिए जो सूर्य-चन्द्र, भूमि-आकाश, पर्वत-समुद्र, हवा-पानी, पेड़-पौधे, फल-फूल आदि बनाए हैं। मनुष्य आनन्द पूर्वक उनका भोग करे किन्तु उस दाता को ना भूले जिसके कारण यह सब हमें प्राप्त है। इसलिए उसकी स्तुति, प्रार्थना, उपासना नित्य करता रहे। उन योग्य पदार्थों का सेवन उस मधुमक्खी की तरह करे जो फूलों से शहद तो चुराती हैं किन्तु फूलों की सुन्दरता में रमती नहीं हैं। फूलों के रूप के जाल में कभी फंसती नहीं हैं।

इस तरह मनुष्य यदि अपनी आत्मा को परमात्मा को सौंप देगा। और सत्य प्राकृतिक नियमों द्वारा अपना जीवन-यापन करता रहेगा तो उतना ही वह श्रेष्ठ पुरुष बनने की ओर बढ़ता रहेगा। महर्षि जी अपने

अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' में मनुष्य निर्माण की योजना में लिखते हैं कि— बच्चे के पैदा होने से पूर्व ही माँ-बाप को गर्भावस्था में ही श्रेष्ठ पुरुष बनने के बीज डालने हैं। इसीलिए एक बच्चे को श्रेष्ठ पुरुष बनाने के लिए दोनों को ही मर्यादा का पालन करना चाहिए, हर कदम पर संयम का व्यवहार करना चाहिए। मां जननी को विशेष रूप से शुद्ध विचार, शुद्ध आचार, शुद्ध व्यवहार एवम् शुद्ध आहार से रहना चाहिए।

मातृमान् पितृमान् पुरुषो वेद। बालक को श्रेष्ठ पुरुष बनाने के लिए उसके लालन-पालन, शिक्षा-दीक्षा, खान-पान, स्वास्थ्य और चरित्र का ध्यान बड़ी सावधानी से रखना चाहिए ताकि उम्र के बढ़ने के साथ-साथ बच्चे का शारीरिक, मानसिक एवम् बौद्धिक विकास ठीक प्रकार से हो सके। इसलिए स्वामी जी ने— **तन्तुं तन्वन्....... मनुर्भव जनया दैव्यं जनम्।** अर्थात् ऐ मनुष्य तू संसार का ताना-बाना बुनते हुए निरन्तर श्रेष्ठ पुरुष बनने का प्रयत्न कर। इस प्रकार यदि शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक तरह से मनुष्य श्रेष्ठ पुरुष नेक इंसान बने तो वह अपना भी कल्याण कर सकेगा और साथ-साथ में देश, धर्म, जाति की सेवा भी कर पाएगा और संसार का उपकार भी। नेक इंसान व श्रेष्ठ पुरुष बनकर स्वयम् का जीवन सुख-शान्ति से बिताए और दूसरों की भी शान्ति भंग नहीं होगी। जीओ और जीने दो का नारा चरितार्थ करेगा। यदि परमात्मा की कृपा और आशीर्वाद से मनुष्य ऐसा-बन जाए तब तो रामराज्य फिर होगा। जहाँ ना कोई आतंकवादी होगा, ना चोर, ना डाकू, ना लुटेरा और ना बदमाश।

यह संसार सदाचारियों का स्वर्ग बन जाएगा। ना इस धरती पर हिन्दू-मुसलमान का फसाद होगा और ना ही मुस्लिम ईरान की मुस्लिम इराक से लम्बी लड़ाई। ना तब कोई सास बहू से लड़ेगी, ना बेटा बाप से, ना पति अपनी पत्नी के सच्चरित्र पर कीचड़ उछालेगा। तब मानव जाति सुख चैन की नींद सो सकेगी और संसार का मानव वैर-विरोध, लड़ाई-झगड़ा कलह-क्लेश, लोभ-लालच की बात ना करके

श्रेष्ठता व प्यार मोहब्बत की बात करेगा। ऐसा ही मानव, ऐसा ही श्रेष्ठ पुरुष, ऐसा ही नेक इन्सान बनाना चाहते थे ऋषि दयानन्द जी सारे संसार को।

अब तो मज़हब कोई ऐसा ही चलाया जाए, जिसमें इन्सान को इन्सान बनाया जाए। "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" का सन्देश देना।

जैसा कि प्रवचन के प्रारम्भ में मैंने आपको बताया कि इस सप्ताह के अन्त में सभी आर्यसमाजों में आर्यसमाज स्थापना। दिवस मनाया जाएगा। जिस प्रकार हम अपना जन्मदिन मनाने के लिए उस दिन अपने लिए नये-नये कपड़े खरीदते हैं और अपने आपको खूब सजाते हैं, उसी प्रकार महर्षि दयानन्द जी का भी यही आदेश था कि हर वर्ष आर्यसमाज के स्थापना-दिवस पर एक नये आर्यसमाज की स्थापना करना और आर्यसमाज के आदर्शों और सिद्धान्तों को अपने जीवन में धारण करके अपने को आर्य बनाने के साथ-साथ पूरे विश्व को आर्य बनाना।

४५. महर्षि दयानन्द की देन

प्यारे श्रोतागण, भक्तजन, धर्म प्रेमियो, परमात्मा के उपासको, साधना में रत साधको, मानवता के पुजारियो, सत्संग का आनन्द लेने वाले श्रोतागणो! पिछले सोमवार को मैं आपको बता रही थी कि आर्यसमाज की स्थापना क्यों की गई थी? किसके द्वारा गई थी? और कब और कहां की गई थी? मैंने थोड़े से शब्दों में बताया था कि महर्षि दयानन्द ने मनुर्भव का आन्दोलन चलाया था कि पहले सभी मानव मनुष्य बनें और श्रेष्ठ मनुष्य बनने के बाद— 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' अर्थात् सारे विश्व को आर्य बनायें, यह महर्षि का मुख्य सन्देश था। महर्षि दयानन्द जो केवल धार्मिक पुरुष ही नहीं थे उसके साथ-साथ वह ऐतिहासिक पुरुष भी थे और एक महान् विचार के बुद्धिजीवी लेखक भी। यूरोपियन विद्वानों ने महर्षि जी को भारतीय लूथर की उपाधि से सुशोभित किया।

हिन्दुओं की दिव्य दृष्टि ने महर्षि जी को शंकराचार्य का अवतार माना है। अमेरिका के योगी एण्ड्रयू जैक्सन डेविड ने महर्षि दयानन्द को परमात्मा का आज्ञाकारक पुत्र बताया था। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि जिसने जो कुछ समझा उसी रूप में दयानन्द को देखा। महर्षि दयानन्द के अन्दर शारीरिक, मानसिक और आत्मिक सभी प्रकार की उत्तम शक्तियां सर्वोत्तम रूप में समाई हुईं थीं— जब मैं उनका कोई भी चित्र देखती हूं और उनके व्यक्तित्व के विषय में सुनती-पढ़ती हूँ तो मुझे ऐसा लगता है कि दो गज से भी ऊँचा कद, तेजोमय उन्नत प्रशस्त ललाट, दुहरा किन्तु गठा हुआ बदन, पक्का न बदलने वाला रंग, आँखों की ज्योति में एक असीम आकर्षण शक्ति, ऐसी तेज रोशनी कि उसके तेज के सामने ठहरना बहुत कठिन है, वाणी में माधुर्य और वीररस का मेल, सारांश यह है कि महर्षि की उस विशाल और प्रभावशाली मूर्ति को याद कर ऐसा ज्ञात होता था कि परमेश्वर ने इस महान् इन्सान को मनुष्यों के हृदयों पर राज्य करने के लिए जन्म दिया था। हिन्दुओं ने योग के साथ शरीर की सूक्ष्मता का सम्बन्ध-भी महर्षि

के साथ जोड़ रखा है। दयानन्द जी ने यह प्रत्यक्ष सिद्ध कर दिया था कि बाल-ब्रह्मचारी योगी के अन्दर शारीरिक शक्ति की भी चरम सीमा विद्यमान रहती है।

जिन लोगों ने महर्षि जी के जीवन-चरित्र के विषय में पढ़ा है, उन्होंने यह घटना अवश्य ही पढ़ी और सुनी होगी कि भारत के बिहार प्रान्त में एक बार दयानन्द जी एक दूसरे ब्रह्मचारी को साथ लिये किसी के यहां उपदेश करने के लिए जा रहे थे। बरसात के दिनों में रास्ते में महर्षि जी ने देखा कि एक बैलगाड़ी जो 20 मन भार से लदी हुई थी उसके पहिये आधे से अधिक कीचड़ में फंस गए थे। 3 मजबूत मोटे बैल अपना पूरा बल लगाने के बाद भी गाड़ी के पहिये को कीचड़ से बाहर नहीं निकाल पा रहे थे। थोड़ी देर में 3 बैलों के साथ 20 से भी अधिक व्यक्ति जो गाड़ी के पहियों को कीचड़ से बाहर निकालने का प्रयत्न कर रहे थे किन्तु अफसोस किसी को भी इस कार्य में सफलता ना मिल सकी। महर्षि जी एक ओर खड़े होकर अपनी आंखों से यह दृश्य देख रहे थे। तभी सहायता के लिए महर्षि ने सब लोगों को एक तरफ हट जाने का आदेश दिया और अपनी हाथ की पुस्तकें दूसरे ब्रह्मचारी को थमा दीं, गाड़ी से बैलों को भी अलग कर दिया। फिर बैलों के जुए को बगल में दबाकर अपनी पूरी शक्ति से खींचकर पहियों को कीचड़ से बाहर निकाल दिया। महर्षि जी की इस अलौकिक शक्ति को देखकर लोगों ने आश्चर्य से अपने दांतों तले अंगुलियों को दबा लिया और फिर उनकी शक्ति के आगे नतमस्तक हो गए। किन्तु श्रोतागणो, ऐसी एक नहीं अनेक घटनाओं से महर्षि जी का जीवन-चरित्र भरा पड़ा है। किन्तु हमें एक क्षण की फुरसत ही कहां है कि उनके जीवन की घटनाओं को पढ़कर उनसे हम कुछ सीख लें। आज यदि किसी से यह पूछा जाए कि किस-किस पहलवान को जानते हो तो सभी कहते हैं— दारासिंह और रुस्तमे स़ोहराब को।

महर्षि जी शक्तिशाली होने के साथ-साथ बहुत निडर और साहसी व्यक्ति भी थे। यदि महर्षि जी के सामने कोई अन्याय हो रहा हो तो

भी कभी चुप नहीं रहते थे। एक बार सत्य सनातन वैदिक मत का खण्डन और असत्य बातों का मण्डन हो रहा था। उस सभा में हजारों व्यक्ति अपना-अपना मत प्रकट कर रहे थे। महर्षि जी भी उस सभा में उपस्थित थे। एक कलियुगी राजपूत ने क्रोध में आकर अपनी तलवार म्यान से निकाल ली और वार करने के लिए तैयार थे कि सभा के दूसरे कोने से महर्षि दयानन्द की सिंहरूपी आवाज की गरज़ से लरज कर उस राजपूत के हाथ से तलवार छूटकर भूमि पर गिर पड़ी, किन्तु जैसे ही राजपूत की तलवार भूमि पर गिरी वैसे ही महर्षि का गम्भीर नाद पूरे कक्ष में गूंज उठा— क्षत्रिय की कृपाण अधर्म को देखे बिना कभी म्यान से बाहर नहीं निकलती और जब तलवार निकलती है तो दुष्टों को दण्ड दिये बिना म्यान में वापस नहीं जाती। यही वाक्य सुनकर पूरी सभा में सन्नाटा सा छा गया। सभी लोगों की दृष्टि उस निर्भीक महर्षि की ओर उठ गई और तभी सब का सिर महर्षि की उस निर्भीकता की मूर्ति के समक्ष नत मस्तक हो गया।

वीरता के साथ-साथ महर्षि जी के हृदय की कोमलता भी निराली थी। न्याय दण्ड के लिए महर्षि का हृदय चट्टान की तरह कठोर और मजबूत था, किन्तु क्षमा के लिए महर्षि का हृदय फूल से भी अधिक कोमल था। एक बार एक ब्राह्मण महर्षि जी के शास्त्रार्थ से बहुत दुःखी था। उसी ब्राह्मण ने महर्षि की विद्वत्ता की द्वेष और ईर्ष्या की आग में जलकर मिठाई में जहर मिलाकर महर्षि जी के सामने रख दिया। महर्षि जी ने योग चिन्तन द्वारा ब्राह्मण की कुटिलता को भांप लिया और महर्षि की इस दिव्य दृष्टि को देखकर बेचारा ब्राह्मण घबरा गया। किन्तु महर्षि जी ने बड़े प्यार-दुलार से उसको अपने पास बिठाकर सदुपदेश देकर विदा किया। किन्तु जब इस घटना का एक तहसीलदार मुसलमान ऋषि-भक्त को पता चला तो उस ऋषि-भक्त मुसलमान तहसीलदार ने उस दुष्ट ब्राह्मण को 6 महीने के लिए जेल में डाल दिया। फिर वह ऋषि-भक्त तहसीलदार महर्षि जी के पास पहुंचा। यह सोचकर कि दयानन्द जी उससे बहुत ही प्रसन्न होंगे। किन्तु श्रोतागणो,

इससे बिल्कुल विपरीत ही हुआ। जब वह तहसीलदार महर्षि जी के सामने पहुंचा तो उसे देखकर महर्षि ने दूसरी तरफ मुंह फेर लिया। तहसीलदार ने महर्षि जी से जब इसका कारण पूछा तो महर्षि जी ने उत्तर दिया कि मैं इस संसार में किसी को कैद करवाने नहीं आया अपितु संसार को अविद्या और अन्धकार के कारागार से छुड़ाने आया हूं।

अफसोस है, बड़े दुःख की बात है कि आज का आर्यसमाजी ना तो न्याय की बात कर सकता है और ना ही किसी को दुःखों से मुक्ति दिला सकता है, अपितु सीधे अच्छे मार्ग पर चल रहे व्यक्तियों की राह पर अन्याय रूपी कांटे बिछाता चला जा रहा है। भोली-भाली जनता भरम में डूबती चली जा रही है। अचरज में है कि यह प्रकाश में अन्धकार का बादल लहरा रहा है। अन्याय के अत्याचारों की पुकार सुनकर भी सभी की जुबां पर ताला लगा है। आज अत्याचारों को देखकर सभी आंखें मूंदे मस्त बैठे हैं। हवन के धुएं से आखों की मलिनता बढ़ती ही जा रही है। काश हम सब आर्यसमाजी मिलकर पुनः आर्यसमाज के इतिहास का अध्ययन करें कि आर्यसमाज का मुख्य उद्देश्य सामाजिक, शारीरिक और आत्मिक उन्नति करना है। सब की उन्नति में ही अपनी उन्नति को मिलाना है, सब के गिरने के साथ गिरकर गिरे हुए को उठाना है। महर्षि के स्वाभिमान की लाज रखने के लिए स्वदेश, स्वधर्म, स्वभाषा-स्वसंस्कृति का सूर्य फिर से उगाना है। हर आर्यसमाजी को स्व-कल्याण के साथ-साथ समाज, देश और विश्व मानवता के हित के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहना है।

धर्म की सारी शमाएं बुझती हैं तो बुझने दो।
ऐ आर्यसमाज तू मानवता की ज्योति जगाए रखना।।

किन्तु यह ज्योति है ही कहाँ जिसे हम जलाए रखें। यह आर्यसमाज रूपी शमां जब महर्षि दयानन्द जी ने प्रज्वलित की थी तो हजारों दीवानों ने इस शमां को जलाए रखने के लिए अपनी जानों की कुर्बानी दी थी। आज हमारे परिवारों में किसी एक की भी मृत्यु हो जाए तो हम

वर्षों तक उसका शोक मनाते रहते हैं किन्तु इस आर्यसमाज को आगे बढ़ाने के लिए कितनी माताओं ने अपनी कोख से जन्मे बेटों का बलिदान कर दिया। आज उनके लहू का रंग हम ने भुला दिया, आज आर्यसमाज के बलिदानियों की चिता की राख को हम संभालने की बजाय उसे उड़ाने में लगे हैं। महर्षि जी का आदेश था कि किसी भी अच्छे कार्य को आरम्भ करने के लिए कोई सभा आदि लगाने की आवश्यकता नहीं है। किन्तु आज यदि कोई व्यक्ति आर्यसमाज में अच्छे कार्य को प्रारम्भ करने का प्रस्ताव लेकर चला जाए तो वे यही कहेंगे कि हम सभा में इससे पूछेंगे उससे पूछेंगे और दिन-प्रतिदिन, मास, वर्ष हम केवल सभाओं के लगाने में ही लगे रहते हैं और तब तक लगे रहते हैं जब तक उस अच्छे कर्तव्य की मृत्यु ना हो जाए। महर्षि जी के दीवाने पण्डित लेखराम भी आर्यसमाज के लिए शहीद हुए थे। उनके जीवन की एक घटना मैं आपको सुनाती हूं कि एक बार एक सभा में पण्डित लेखराम जी की उपस्थिति में एक धनी पुरुष ने एक स्त्री के प्रति कठोर शब्दों का प्रयोग किया तो पण्डित लेखराम इस बात को सहन न कर सके। उसकी तर्जना, विरोध करते हुए पण्डित लेखराम जी ने स्पष्ट कहा— तुम आर्य नहीं अनार्य हो। तुम्हें वेदों की पवित्र शिक्षा का ज्ञान-ध्यान नहीं है। यदि तुम आर्य होते तो स्त्रियों के प्रति-अशोभनीय शब्दों का प्रयोग कभी नहीं करते। पण्डित लेखराम जी ने कहा कि महर्षि दयानन्द शिष्टाचार द्वारा सदैव स्त्रियों को माई, माता, देवी, आर्या आदि सम्बोधनों से सम्बोधित किया करते थे। और स्त्रियों के लिए तो उन्होंने कई सुझाव भी दिये कि कन्याओं का संस्कार देवियाँ ही करवाएं आदि। किन्तु श्रोतागणो, अब समय मेरा भी आ गया है कि मैं इस प्रवचन को यहीं पर समाप्त कर दूं किन्तु उसी आर्यभक्ति की आग को अगले सोमवार को दूसरी घटनाओं से सुलगाऊंगी तब तक के लिए आज्ञा दीजिए।

मानते लोहा सभी थे वेदों के भण्डार तुम थे।
हे शहीदों के शिरोमणि धर्म का अवतार तुम थे॥
कृण्वन्तो विश्वम् आर्यम्॥

४६. मनुष्य जन्म का उद्देश्य

प्यारे श्रोतागण, आज का प्रवचन मैं एक छोटी-सी कथा से प्रारम्भ कर रही हूं। एक छोटा-सा परिवार था। एक दिन अचानक परिवार में पिता को दर्द उठा और वह बेचारे दर्द से तड़पने लगे। मां ने घबराकर छोटे बेटे को बुलाया और कहा कि बेटा, यह ले पैसे और बाजार जाकर दवाई ले आ। छोटे बालक ने पैसे लिये और पिता के लिए दवा लेने बाजार की तरफ चल पड़ा। किन्तु बालक ने एक जगह रुककर देखा कि एक मदारी डुगडुगी बजाकर बन्दरों का तमाशा दिखा रहा है और वहां खड़ी भीड़ के सारे लोग ताली बजा-बजा कर आनन्द ले रहे हैं। बस बालक की नजर वहीं पर टिक गई और जब तक बन्दरों का तमाशा समाप्त नहीं हुआ वह वहां खड़ा रहा। फिर आगे चलने लगा क्योंकि पिता के लिए दवा लेनी थी। किन्तु बेचारा बालक कुछ और आगे चला तो उसने फिर देखा कि सर्कस चल रहा है। बेचारे बालक का दुर्भाग्य, अब वह सर्कस देखने के लिए रुक गया।

उधर घर में पिता दर्द से बेचैन तड़प रहे हैं, इधर मां चिन्ता के कारण सूख रही है कि बालक को दवा लेने भेजा था कहां रह गया, कहीं कोई दुर्घटना तो नहीं हो गई बालक के साथ। इतने में मां ने देखा कि बड़ा बेटा घर आ गया तो बड़े बेटे से घबराकर बोली— देख बेटा, तेरे पिता दर्द से तड़प रहे हैं, छोटे बेटे को बाजार दवाई लेने भेजा था वह अभी तक लौटकर नहीं आया, जा जा के देखकर आ। अब बड़ा भाई निकला बाजार में छोटे भाई को ढूंढ़ने और दवाई लेने के लिए जब आधे रास्ते पर पहुंचा तो देखा कि छोटे सरकार तो सरकस देखने में इतने मग्न थे कि अपनी सुधबुध की कोई खबर नहीं। भूल गया कि वह दवाई लेने आया था। उसे इतना तक ध्यान नहीं रहा कि बड़ा भाई उसके साथ खड़ा है। बड़े भाई ने छोटे को डांटते हुए कहा कि तुझे माता ने दवाई लेने के लिए बाजार भेजा था या सर्कस देखने के लिए? तो श्रोतागणो यदि आप बड़े भाई के स्थान

पर होते तो आप भी उस बालक को डांटते और मूर्ख कहते। वास्तव में वह मूर्खता की बात ही तो कर रहा था। परन्तु श्रोतागणो, आप नव वर्ष में एक इस कहानी को सुनकर ज़रा अपने दिल पर हाथ रखकर सोचिये कि यदि छोटा बालक मूर्ख था तो हम क्या हैं ? मूर्ख या महामूर्ख, अरे हम सब भी तो आत्मा के रोग की औषधि लेने के लिए संसार के बाज़ार में आए थे और संसार में आकर सब कुछ भूल गए इन तमाशबीनों के बीच। आंखों ने सौन्दर्य देखा तो उनकी तरह टकटकी लगाए देखते ही रह गए। जिह्वा ने रसों को चखा तो जीभ चटखारे ही लेती रह गई। कानों ने शृंगारिक मस्ताने गीत सुने और सुनते ही मस्ती में डूब गए। बस इन सब वस्तुओं में उलझकर रह गए। आज मकान बन रहा है, कल विवाह हो रहा है फिर बच्चे फिर नौकरी। ये पेट है कि चैन नहीं लेने देता। वर्ष के आरम्भ से अन्त तक हम इन तमाशों में मग्न ही रहते हैं जब तक कि यमराज के रूप में बड़ा भाई हमारे सामने आकर खड़ा नहीं हो जाता।

खुदा को भूल गए लोग फ़िक्रे रोजी में।
ख़याले रिज़क है राज़क का कुछ ख़याल नहीं॥

माया का खेल देख रहे हैं। लीलाधर की लीला में, देखने में इतने मस्त कि लीलाधर को भूल गए जिसके कारण से यह लीला विद्यमान है। आए थे आत्मा के रोग की औषधि लेने मग्न हो गए खेलों में। इस संसार में हम इसलिए आए थे कि ज्ञान प्राप्त करें, ज्ञान प्राप्त करके उत्तम कर्म करें, उत्तम कर्म करने के पश्चात् ईश्वर की उपासना करें, उपासना करने के पश्चात् उसे प्राप्त कर लें जिसे प्राप्त करने के पश्चात् खुल जाती हैं हृदय की गांठें, चकनाचूर हो जाते हैं सब संशय, समाप्त हो जाता है कर्मों का बंधन, जब उस परम प्रिय, परम श्रेष्ठ प्रियतम परमात्मा के दर्शन हो जाते हैं। और दर्शन करने के बाद ही हम जान पाते हैं उसका सुहावना रूप। कितना सुन्दर है वह, कितना आकर्षक, कितना मनमोहक, ज्योतियों की महाज्योति, इतनी विशाल, इतना स्वाभाविक तेज कि सूर्य, चन्द्रमा, तारे किसी का भी

प्रकाश उस जैसा नहीं, किसी की भी चमक उस जैसी नहीं। उसका प्रकाश फैल रहा है चारों तरफ। इतना ही नहीं अपितु उसकी ज्योति से ही सब ज्योति वाले ज्योति पाते हैं।

इस परम ज्योति को पाने के लिए ही मनुष्य को यह शरीर मिला था। उसे नहीं प्राप्त कर सके तो हमारा जीवन निरर्थक है, बेकार है। यह शरीर तो हमें साधन मिला ज्ञान, कर्म और उपासना के लिए, और ज्ञान, कर्म, उपासना साधन हैं प्रभु-दर्शन के लिए। ज्ञान, कर्म और उपासना केवल रास्ते हैं मंजिल नहीं। मंजिल को भूलकर हम सिर्फ रास्तों को संवारने में लगे हुए हैं। कुछ लोग कहते हैं कि इस शरीर में प्रभु-दर्शन कैसे हो सकता है किन्तु अथर्ववेद दूसरे काण्ड का पहला सूक्त कहता है कि इस शरीर में ही केवल प्रभु-दर्शन होता है। वेद कहता है कि "ज्ञान से भरपूर विद्वान्, तीनों लोकों में निहित उस अमृत ब्रह्म को अपने हृदय की गुफाओं में देखता है और जब वह देख लेता है तो वह पिता का पिता हो जाता है। इस सूक्त के पांचवें मन्त्र में आत्मा कहता है कि सारे विश्व को छोड़कर मैं इस मनुष्य के शरीर में आया हूं ताकि उस परम सत्य अमृत को देख सकूं जिसमें मोक्ष के आनन्द को भोगते हुए योगी लोग विचरते हैं, ऐसा है यह मानव शरीर। किन्तु यह मानव शरीर हर वार नहीं मिलता, इसे व्यर्थ मत गंवाओ, परमात्मा ने यह अनमोल शरीर दिया है इसका सद्उपयोग करो जिसके कारण यह शरीर स्थित है उसे पहचानो। मत बर्बाद होने दो बिना कारण ही। आत्मा को घायल मत करो। घायल करने के स्थान पर आत्मा के कायल बनो तभी जीना जीना है नहीं तो सब बेकार। नाश, सर्वनाश, महानाश, अन्धकार, केवल अन्धकार और गहरा अन्धकार। आज प्रवचन के अन्त में भी कथा ही कहती हूं।

ध्यान से सुनिये। एक सज्जन थे जीवनराम, गरीब थे, एक झोंपड़े में रहते थे। उसके पास वाले महल में अमीर सेठ ज्योतिःस्वरूप रहते थे। जीवनराम ने सोचा कि सेठ ज्योतिःस्वरूप से अच्छे कार्य के लिए एक मकान मांगा जाए। जीवनराम सेठ ज्योतिःस्वरूप के पास जाकर

बोला कि सेठ जी, मुझे वो वाला मकान दे दीजिये मैं वहां गरीब बच्चों के लिए पाठशाला आरम्भ करूंगा। प्रतिदिन सत्संग होगा वहां, आध्यात्मिक कथाएं होंगी, यज्ञ होगा किराया जो भी आप मांगेंगे वो मैं दे दूंगा। सेठ ज्योति:स्वरूप ने कहा कि जब तुम इतने अच्छे, इतने श्रेष्ठ, इतने महान् कार्य मेरे मकान में करोगे तो जाओ मैं तुम्हें देता हूं और तुमसे किराया भी ना लूंगा। बस फिर क्या था, जीवनराम पहुंचे उस मकान में। प्रारम्भ में तो उस मकान को बहुत स्वच्छ रखा।

अभी कुछ ही दिन बीते थे कि उस मकान में अतिथि बनकर कुछ जुआरी मित्र आ गए। बस, वहां जुआ खेला जाने लगा, फिर शराब, फिर दूसरे पाप। धीरे-धीरे जो मकान अच्छे कार्यों के मिला था पाप और डाकुओं का अड्डा बन गया। किसी ने सेठ जी से शिकायत की जो मकान आपने यज्ञ और सत्संग के लिए दिया था वहां तो पाप होने लगे हैं। सेठ ज्योति:स्वरूप ने अपने छोटे मुनीम को बुलाया और कहा कि उससे कहो यह मकान खाली कर दे पापों के लिए मकान नहीं दिया था। छोटे मुनीम जीवनराम के पास पहुंचे किन्तु जीवनराम ने कुछ अनुनय विनय की कुछ रिश्वत दी। मुनीम ने सेठ जी से जाकर कहा कि सब ठीक है किसी ने झूठी शिकायत कर दी थी। परन्तु कुछ दिनों बाद फिर सेठ ज्योति:स्वरूप के पास शिकायत पहुंची। अब की बारी सेठ ने अपने बड़े मुनीम को जांच करने के लिए भेजा। जीवनराम ने बड़े मुनीम से भी ऐसा ही व्यवहार किया किन्तु मुनीम नहीं माना। जीवनराम उसके पांव पड़ा और उसने प्रतिज्ञा की कि वह सुधार करेगा। बड़े मुनीम ने सारी सच्ची बात जाकर सेठ जी को बता दी। सेठ ज्योति:स्वरूप बोले कि बात तो बहुत बुरी है किन्तु यदि जीवनराम सुधार चाहता है तो उसे कुछ समय देना चाहिए। समय दिया गया। किन्तु श्रोतागणो, जो व्यक्ति एक बार पाप के रास्ते पर पांव रख देता है फिर उसका सुधरना बहुत ही कठिन हो जाता है। परन्तु अब की बार सेठ ज्योति:स्वरूप के पास शिकायत आई कि जीवनराम के लक्षण तो पहले से और भी बुरे हो गए हैं।

अब की बार सेठ ने अपने बेटे को भेजा किन्तु जीवनराम ने उसे भी धोखा देने को कोशिश की परन्तु वह धोखे में बिल्कुल नहीं आया। उसने वकील से नोटिस दिलवा दिया कि मकान खाली करो किन्तु जीवनराम ने नोटिस लिया ही नहीं। फिर मुकदमा हुआ, वारंट जारी हुए। पुलिस पहुंची तो जीवनराम ने उसको भी रिश्वत देने का प्रयत्न किया। परन्तु अब जीवनराम की कोई भी चाल ना चली। अन्त में वह बहुत रोया-चिल्लाया और सब से अन्त में उसे मकान छोड़ना ही पड़ा।

श्रोतागणो, यहां पर मेरी कथा समाप्त होती है किन्तु आप सब को बताना चाहती हूं कि इस कहानी का हमारे जीवन से क्या सम्बन्ध है? यह जीवनराम कौन है? सज्जन जीवनराम है हमारी आत्मा। सेठ ज्योतिःस्वरूप कौन है? वह है ईश्वर भगवान्। कौन-सा मकान सेठ ज्योतिःस्वरूप ने जीवनराम को रहने के लिए दिया यह मकान है हमारा अपना शरीर। ज्योतिःस्वरूप ने मकान इसलिए दिया था कि ज्ञान, कर्म, उपासना स्वाध्याय के लिए। किन्तु इन सब के स्थान पर इस शरीर को हम ने बना दिया पापों का अड्डा। इस कहानी में मुनीम है एक छोटा और दूसरा बड़ा। छोटा मुनीम है कोई छोटी मोटी बीमारी, बड़ा मुनीम है कोई बड़ा रोग। सेठ का लड़का है कोई भयानक रोग जैसे कैंसर आदि। नोटिस जो दिया गया वह है हार्ट अटैक, हृदय की गति पर आघात। और उस पर मुकद्दमा चला Nervous Breakdown का और अन्तिम रोग है वारण्ट। और अन्त में यमराज के रूप में पुलिस आती है। वह है मृत्यु। वह जब आ जाये तो फिर दवाइयों की रिश्वत भी नहीं चलती। डॉक्टरों को दी हुई फीस भी बेकार और अन्त में जीवनराम को यह मकान छोड़ना ही पड़ता है। और जीवन त्यागते समय जीवनराम रोकर पुकारता ही रहता है कि—

मैं फूल चुनने आया था बागे हयात में।
दामन को खाट ज़ार में उलझा के रह गया॥

इतना सब समझते हुए भी हम कुछ नहीं समझे इस अन्धकार की दौड़ में हमने ज्ञान रूपी वेद को बिल्कुल ही भुला दिया है।

४७. वेदों में नारी का स्थान

वैदिक साहित्य में नारी का स्थान अत्यन्त ही ऊंचा तथा महत्त्वपूर्ण है। वेदों के अनुसार पुरुष और नारी समाज और राष्ट्ररूपी रथ के दो चक्र हैं। अथर्ववेद के अनुसार—

संहोत्रं स्म पुरा नारी समनं वाव गच्छति।
वेधा ऋतस्य वीरिणीन्द्रपत्नी महीयते विश्वस्मात् इन्द्र उत्तरः।

अथर्व० २०।१२६।१०

उपरोक्त लिखित मन्त्र का अर्थ है कि नारी पुरातन काल से ही पुरुष के साथ मिलकर अग्निहोत्र आदि यज्ञ करने तथा जीवन को सुन्दर रूप से जीने की कला को भलीभांति जानती है। सत्य और ज्ञान का प्रचार करने वाली, ऐश्वर्ययुक्त नारी सदैव पूजी जाती है और वह नारी सब प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ है। इसलिए नारी समाज और राष्ट्र के हर क्षेत्र में कहीं भाई और बहिन के रूप में, कहीं माता और पुत्री के रूप में, कहीं पति और पत्नी के रूप में, कहीं प्रचारक एवम् प्रचारिका के रूप में, कहीं लेखक और लेखिका के रूप में, कहीं पण्डित और पण्डिता के रूप में समाज में अपने-अपने कार्यों को करते हुए आगे बढ़ रही है। इसलिए ऋग्वेद में नारी स्वयम् कहती है कि—

अहम् केतुरहं मूर्धा, अहम् उग्रा विवाचनी।
ममेदनु क्रतुं पतिः सेहानाया उपाचरेत्॥

ऋ० १०।१५९।२

अर्थात् मैं नारी राष्ट्र की ध्वजा हूं, मैं नारी समाज का सिर हूं, मैं उग्र नारी हूं, अर्थात् मेरी वाणी में जल है, शक्ति है। शत्रु सेना को पराजित करने वाली मैं युद्ध में वीर कर्म दिखाने के पश्चात् ही पति का प्रेम पाने की अधिकारिणी हूं।

वेदों में नारी को पुरुष से भी ऊंचा स्थान दिया गया है। वसिष्ठ सूत्र में लिखा है कि—

उपाध्यायाद् दशाचार्यः आचार्याणां शतं पिता।
पितुर्दशशतं माता, गौरवेणातिरिच्यते॥

अर्थात् अध्यापक से दस गुणा अधिक आचार्य का, आचार्य से सौ गुणा अधिक पिता का और पिता से भी हजार गुणा अधिक माता को गौरव प्राप्त है। वेदों में और संस्कृत साहित्य में नारी के बिना संसार की कल्पना भी नहीं की जा सकती। अथर्ववेद में पुरुष कहता है—

माता भूमिः पुत्रोऽहम् पृथिव्याः।

यह भूमि मेरी माता है, मैं इस मां रूपी पृथ्वी का पुत्र हूं। हमारे धार्मिक ग्रन्थ महाभारत में श्री मुनि व्यास जी लिखते हैं कि—

न गृहम् गृहमित्याहुः गृहिणी गृहमुच्यते।

गृहिणी के बिना घर घर नहीं कहलाता अपितु गृहिणी के साथ ही घर घर कहलाता है। संस्कृत साहित्य में नारी की महानता का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।

वो जननी मां जिसने मुझे जन्म दिया है और जिस भूमि पर जन्म दिया है वह स्वर्ग से भी अधिक श्रेष्ठ और महान् हैं। इसी बात को मनुस्मृति में इस प्रकार कहा गया है कि—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।

अर्थात् जिस स्थान पर नारी की पूजा की जाती है वहां पर सदा देवता निवास करते हैं। ऋग्वेद में नारी को सबला तथा वीरांगना कहा गया है और यजुर्वेद में नारी को सिंहनी (शेरनी) की उपाधि से अलंकृत किया गया है—

सिँह्यसि स्वाहा, सिँह्यस्यादित्यवनिः स्वाहा
सिँह्यसि ब्रह्मवनिः क्षत्रवनिः स्वाहा।
सिँह्यसि सुप्रजावनी रायस्पोषवनिः स्वाहा
सिँह्यस्यावह देवान् यजमानाय स्वाहा भूतेभ्यस्त्वा॥

इस मन्त्र का अर्थ इस प्रकार है कि हे नारी, तू सिंहनी अर्थात् शेरनी है। तू शत्रुओं को नष्ट करने वाली है, अतः देवताओं के हित के लिए अपने अन्दर सामर्थ्य उत्पन्न कर। हे नारी, तू अविद्या के अन्धकार को हटाकर विद्या का प्रकाश फैला। हे नारी, तू वो शेरनी है जो आदित्य ब्रह्मचारियों की जन्मदात्री है। हम तेरी पूजा करते हैं। हे नारी, तू ब्राह्मणों और क्षत्रियों की जन्मदात्री है अतः हम तेरा यशोगान भी करते हैं। हे नारी, तू श्रेष्ठ संतानों और धन की पुष्टि को देने वाली है, हम सब तेरा जय-जयकार करते हैं। हे नारी, हम तुझे समाज के प्राणियों के हित के लिए नियुक्त करते हैं।

नारी के स्वाभाविक नारी-हठ की तुलना वेदों में ध्रुवतारे से की गई है। यजुर्वेद के १३।१६ में मन्त्र है—

ध्रुवासि धरुणास्तृता विश्वकर्मणा मा त्वा समुद्र
उद्वधीन्मा सुपर्णो अव्यथमाना पृथिवीं दृꣳह।

अर्थात् हे नारी, तू ध्रुवतारे की तरह अटल है, अविचल निश्चय वाली है, सुदृढ़ है और अन्यों को धारण करने वाली है। विश्वकर्मा परमेश्वर ने तुझे विद्या, धीरता आदि गुणों से अलंकृत किया है। ध्यान रख, समुद्र के समान उभड़ने वाला शत्रु-दल तुझे कभी हानि ना पहुँचा सके। गरुड़ के समान आक्रमणकारी शत्रु तुझे नष्ट ना कर सके। किसी से भी, किसी भी तरह पीड़ित दुःखी ना होती हुई नारी तू राष्ट्रभूमि की और समाज की रक्षा कर उसे आगे बढ़ा।

राज्य और समाज की रक्षा के साथ-साथ वेद भगवान् ने धर्म के प्रचार का कार्य भी नारी को सौंपा है। ऋग्वेद में स्पष्ट संकेत है कि—

अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वती।
अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि॥

इस मन्त्र का अर्थ इस प्रकार है कि हे गुप्त विद्या का उपदेश करने वाली विज्ञानवती नारी! अतीव पण्डिता, निपुण शिक्षिका, स्नेहमयी माता, बुद्धिमती अध्यापिका! आप कृपा करके हम अप्रशंसित लोगों

को शिक्षा देकर प्रशंसा को प्राप्त करवाइये। हम जीवन में दिशाहीन हो गए हैं। तू अपने सद् उपदेशों से हमारा मार्ग प्रशस्त कर।

वेदों के अनुसार विश्वकर्मा ने एक ओर जहां नारी को ललित, दिव्य, मृदु और मधुर गुणों की राशि बनाया है तो दूसरी तरफ नारी को दया का अवतार, प्रेम की परम धारा, सौन्दर्य की प्रतिमा और मधुरिमा की मूर्ति कहा है। नारी को संसार का मूल, गृहस्थाश्रम की जीवन शक्ति एवम् साम्राज्ञी कहा है। संसारियों का संसार, गृहस्थियों की गृहस्थता, सुकर्मियों के सुकर्म, धर्मात्माओं के सब धर्मों का स्रोत नारी को माना है। अतः नारी को नर की खान कहा गया है।

अन्त में वेदों में नारी के गुण, कर्मों का वर्णन करते हुए वेद कहता है कि हे नारी! तुम राष्ट्र गगन में प्रकाशवती हो कर चमको। तुम ईश्वर के भक्ति-प्रकाश से, विद्या के प्रकाश से, विवेक के प्रकाश से, सदाचार के प्रकाश से, प्रेम के प्रकाश से, सौन्दर्य के प्रकाश से, सत्कर्मों के प्रकाश से, सन्मति के प्रकाश से, सौमनस्य के प्रकाश से, धर्म के प्रकाश से, सत्य के प्रकाश से, अहिंसा के प्रकाश से, ब्रह्मचर्य के प्रकाश से, सेवा के प्रकाश से, पवित्रता के प्रकाश से, सन्तोष के प्रकाश से, तपस्या के प्रकाश से, स्वाध्याय के प्रकाश से सारे विश्व में जगमगाओ।

हे राष्ट्र की पूजा-योग्य नारी! तुम परिवार, समाज और राष्ट्र में सत्यम्, शिवम् सुन्दरम् की अरुण कान्तियों को लाओ और अपने विस्मयकारी सद्गुणों द्वारा अविद्याग्रस्त मानवों को प्रबोध एवम् बुद्धि प्रदान करो। जन-जन को सुख देने के लिए अपनी जगमगाती हुई शक्ति का आह्वान करो।

'वन्दे-मातरम्' इति ओम् शम्।

४८. प्रभु-भक्ति का नशा

प्यारे श्रोतागणो! आज के प्रवचन का प्रारम्भ मैं सामवेद के मन्त्र से कर रही हूं। सामवेद ५७८ का मन्त्र इस प्रकार है—

ओ३म् पवस्व मधुमत्तम इन्द्राय सोम क्रतुवित्तमो मदः।
महि द्युक्षतमो मदः॥

इस मन्त्र का अर्थ है कि ऐ मेरे मन, तू प्रभु का मस्ताना बन, उसकी भक्ति का दीवाना बन। क्योंकि अन्य प्रकार के नशे और मद तो कर्तव्य की भावना को मिटा देते हैं, परन्तु प्रभु मस्ती की भक्ति तो तेरे कर्त्तव्य की भावना को और अधिक तीव्र कर देती है। इसलिए, ऐ मेरे भक्त मन तू अपने कर्तव्य पथ से कभी डिगना नहीं, उलटा उस कर्तव्य पथ पर और भी अधिक दृढ़ हो जाना। ऐसा दृढ़ होना कि संसार का कोई तूफान, कोई प्रलोभन, कोई भय, कोई डर तुझे इस कर्तव्य की चट्टान से हटा ना सके। तुझे जीवन में यदि नशा हो तो केवल कर्तव्य पालन का।

मेरी आन, मेरा मान, मेरी जान प्रभु, तेरी भक्ति रसमय है। तेरे जीवन का सभी व्यापार रसमय है, क्योंकि कर्तव्य पालन का-सा आनन्द किसी और व्यापार में है कहां। इसलिए प्रभु-भक्ति के कर्तव्य के लिए कष्ट सहन करना, दुःख-दर्द उठाना,अत्यन्त मधुर है अत्यन्त रसीला है। वैसे तो वह कर्तव्य है क्या? जिसके पालन करने में आत्म-त्याग की आवश्यकता ही ना पड़े? पहले धन कमाने का लोभ था, अब धर्म के मार्ग पर धन लुटाने का लोभ है। पहले यश और प्रतिष्ठा पाने की इच्छा थी, उत्सुकता थी और अब सत्य की प्रतिष्ठा के लिए अपनी प्रतिष्ठा, लुटा देने में ही खुशी है। जीवन में वास्तविक प्रतिष्ठा है ही केवल सत्य की प्रतिष्ठा सदाचार की प्रतिष्ठा। अब तो हमारा एकमात्र धन भगवान् ही है। हमारा एकमात्र यश प्यारे प्रभु की दृष्टि में ऊंचा उठ जाना ही हो रहा है। भगवान् की तरफ जाने में ही आत्मा की

सफलता है। इसलिए, मेरी आन, मेरी जान, मेरा मन, तू भगवान् की ओर गति कर। उसकी प्रसन्नता में ही अपनी प्रसन्नता समझ। ऐसी मन की पवित्र भावना में एक ऐसा उल्लास है जो अन्य किसी भावना द्वारा प्राप्त नहीं होता। एक सुखदायक आनन्द है, एक ऐसी मस्ती है जो साधक को, भक्त को झट किसी दूसरे लोक का वासी बना देती है। अत्यन्त प्रकाश युक्त, अत्यन्त उल्लासपूर्ण मस्ती। इसलिए ऐ मेरे मन, तू प्रभु का मस्ताना बन, उसकी भक्ति का दीवाना बन। इतना मस्ताना कि अपनी मस्ती से भी बेखबर हो जा। इतना दीवाना कि तुझे अपने दीवाना होने की सुध-बुध ही ना रहे। इसलिए मेरे मन, मेरी आत्मा, मेरी जान, मेरी शान, मेरे आत्मसम्मान तू कर्तव्य की मस्ती की सूरत बन जा। तेरा वास्तविक स्वरूप है ही मद-हर्ष, आह्लाद, दीवानगी, मस्ती, कर्तव्य की मस्ती, सदाचार की मस्ती, न टलने वाले धर्म की मस्ती, प्रभु के नशे की मस्ती। किन्तु अफसोस है कि कभी कुछ ना समझ लोग नशे का दूसरा अर्थ भी निकाल लेते हैं। आजकल जो शुद्ध-पवित्र पानी पीता है, दूध पीता है और अच्छी पीने योग्य वस्तुएं पीता है उसके सम्बन्ध में लोग कहते हैं कि वह नहीं पीता। और जो ना पीने योग्य वस्तुओं को पीता है उसके लिए कहते हैं कि वह पीता है। नशा यदि करना ही चाहते हो तो ऐसा करो जो कभी उतरे ही नहीं। जो बार-बार नशा करे और बार-बार उतर जाए वह वास्तव में नशा तो नहीं, नशे का धोखा है केवल।

शराब चढ़कर उतरने वाली पिलाई तो क्या पिलाई साक़ी
जो चढ़के इक बार फिर न उतरे वो मय पिलाओ तो हम भी जानें॥

ऐसी शराब पियो, जो बिना दाम के बिकती है, बिना मूल्य के। इस शराब का नाम है 'प्रभु का नाम'।

यजुर्वेद ने इस को कहा है— 'सुरा त्वमसि शुष्मिणी।' (19।7) अर्थात् हे प्रभो, तेरा नाम बलकारी तीव्र शराब है। गुरु नानक जी ने इसको इस प्रकार कहा है कि—

भंग मसूरी सुरा पान उतर जाए प्रभात।
नाम खुमारी नानका चढ़ी रहे दिन रात॥

प्रभु नाम का सोमरस खूब पियो। एक बार प्रभु के नाम का नशा हो जाय फिर तो कोई कष्ट नहीं रहता, कोई क्लेश संकट नहीं रहता। अन्धकार में भी प्रकाश सूर्य की तरह चमक उठता है, अग्नि की भीषण ज्वालाओं में बर्फ की ठंडक आ जाती है, कांटों में भी फूल खिल जाते हैं।

डूबब जरव न बात कछु तैं जे लागी लाग।
जहां प्रीत कांची नहीं, क्या पानी क्या आग॥

इसी प्रभु नाम का नशा भक्त प्रह्लाद ने भी किया था। पिता ने कहा— पुत्र प्रह्लाद! मैं तेरा पिता हूं, सिर्फ मेरी पूजा कर, ईश्वर की पूजा न कर। भक्त प्रह्लाद ने हाथ जोड़कर कहा, आप पिता हैं क्योंकि यह शरीर आपने दिया, इसे आप ले सकते हैं, किन्तु पहले महापिता है, इसलिए ईश्वर की पूजा मैं नहीं छोड़ सकता। पिता क्रोध से भनभना उठा और कहा— तुझे हाथी के पैरों तले रौंद दिया जाएगा, पहाड़ की चोटी से गिरा दिया जाएगा, समुद्र में डुबो दिया जाएगा। अग्नि की ज्वाला में जीवित जला दिया जाएगा। भक्त प्रह्लाद ने हंसते हुए कहा— पिताश्री आप जो भी चाहे कीजिये, मेरे लिए मेरा भगवान् मेरे साथ है। अग्नि में वही है, जल में भी वही है, सागर में, पर्वत में, धरती के कण-कण में, उसका प्यार मेरे साथ है। और जब प्रभु का प्यार साथ हो तो चाहे जलती चिता हो या खौलता हुआ समुद्र, सब मां की गोद की भांति सुखदायी हो जाते हैं। यह है भक्ति के नशे का प्रभाव । जिस किसी ने यह नशा किया वह अभय हो गया। राजा हो या प्रजा, धनी हो या निर्धन, निर्बल हो या सबल कोई भी उस भक्त को डरा नहीं सकता। यह वो नशा है जिसे कोई भी तुरशी उतार नहीं सकती। जब भक्त इस नशे में डूब जाता है तो वह यही कहता है कि हे गोविन्द! तू ही मेरा गुरु है, तू ही मेरा गोस्वामी, तू ही मेरा ज्ञान है, तू ही मेरा देवता, तू ही मेरा ध्यान है, तू ही मेरी पूजा है,

तू ही मेरी आरती है, तू ही मेरा गीत है, तू ही मेरा तीर्थ है, तू ही मेरी जाति है, तू ही मेरा शील है, तू ही मेरा सन्तोष है, तू ही मेरी सांस है, तू ही मेरी मुक्ति है। तेरे अतिरिक्त मुझे और कुछ नहीं चाहिए, क्योंकि दूसरे के लिए अब स्थान ही नहीं। यह है भक्त के लिए प्रभु के चरणों में आत्मसमर्पण। सच्चे पवित्र हृदय से पूरे विश्वास के साथ कहो कि मेरा यह कर्म तेरे अर्पण है, मैंने अपना हाथ तेरे हाथ में दे दिया जिधर तू चाहे उधर तू ले चल। माना कि मैं तुझे भूला रहा प्रभु, माना कि मैल चढ़ गई मुझ पर परन्तु अब तो ओ दीनदयाल, दयासागर, करुणानिधि कृपा कर, आज से हम तेरा ही शुद्धस्वरूप धारण करेंगे, तेरा ही श्रवण, मनन और ध्यान करेंगे, तेरा ही कीर्तन सुनेंगे, तेरा ही विचार करेंगे, तुझे ही मन में एकाग्र करेंगे, तेरा ही जप करेंगे, तेरा ही तप करेंगे, तुझे ही अपना प्रेम समर्पित करेंगे। जबकि आप ही प्रभु इस मन, आत्मा बुद्धि के संचालक हो जाओगे। फिर धर्म और अधर्म की उलझन ही कहां रहेगी। तुम्हारे पवित्र स्पर्श से इस शरीर की एक-एक रग में शुद्ध धर्म की वर्षा होगी।

प्यारे श्रोतागणो! मैं तो एक साधारण इंसान हूं। आपको आज्ञा तो नहीं दे सकती किन्तु चेतावनी अवश्य ही दे सकती हूं। यदि आपको प्रभु मिलन की इच्छा है शान्ति की चाह है और परम आनन्द की अभिलाषा है तो मन को माया में फंसने नहीं देना। यह जो कुछ भी दिखाई दे रहा है वास्तव में परिवर्तनशील है और जो हमें नहीं दिखाई देता वास्तव में वही स्थिर और सब कुछ है। वेद भगवान् भी यही कहते हैं कि— **"वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।"** अर्थात् मैं जानता हूं उस पुरुष को, उस महान् को, उस ज्योतिरूप को, जो माया के इस अन्धकार से परे आदित्य की भांति चमक रहा है। उसको जानने से ही मृत्यु की, जन्म-मरण के इस बन्धन की समाप्ति होती है। यह माया केवल एक छलावा है, धोखा है। उसमें सुख नहीं है। यदि इस माया में सुख होता तो आज अमेरिका और रूस में शान्ति होती, किन्तु यदि वे सुखी होते तो एटम बम, हाइड्रोजन बम, राकेट बम, कोबाल्ट बम क्यों बना रहे हैं?

सफाइयां हो रहीं जितनी, दिल उतने ही हैं मैले।
अन्धेरा छा जाएगा सरासर, अगर यही रोशनी रहेगी॥

यह प्रकाश नहीं केवल अन्धकार की पूजा है। आज परस्पर लड़ाई-झगड़े, ईर्ष्या-द्वेष, घृणा चारों तरफ फैल रहे हैं। आज का संसार आत्मा को भूलता ही चला जा रहा है। आज का इंसान जब तक उसे खोजेगा नहीं, पाएगा नहीं तब तक उसे शान्ति मिलेगी नहीं। श्रोतागणो, प्रवचन के अन्त में आप वचन दो कि आप सब प्रतिदिन अपना कुछ ना कुछ समय आत्मा की मैल धोने और परमात्मा के निकट आने में लगाओगे। तुम्हारे अन्दर जन्म-जन्म के चैन को पुकारता हुआ, सुख की खोज में व्याकुल और शान्ति के लिए उन्मत्त आत्मा बैठा है, भगवान् को भूला हुआ। इसलिए ऐ भक्ति से भरपूर भक्त, प्रयत्न करो कि यह आत्मा भक्त माया के इन बन्धनों को तोड़कर अपने भगवान् को पा ले। इसमें इसका सच्चा सुख है, इसी में मन की शान्ति है, इसी में आत्मा की आध्यात्मिक उन्नति। स्मरण रखो कि भक्त और भगवान् का मिलाप इसी मनुष्य के शरीर में होता है। और यह मानव शरीर बहुत मुश्किल से मिलता है, अब और समय नष्ट न करो। समय कभी लौटकर नहीं आएगा। जागो और देखो कि—

दूर प्यारे की पुरी है, दिन किनारे आ गया।
चल, नहीं तो इस झमेले में पड़ा पछताएगा॥

अच्छा श्रोतागणो, अब मेरा समय भी पूरा हो गया है समय रहा तो फिर भेंट होगी। आप सभी को मेरी, सप्रेम वरन् प्यार भरी नमस्ते एवम् प्रभु के चरणों में साष्टांग प्रणाम।

४९. तप और स्वाध्याय

आज का मेरा विषय है कुछ श्रोतागणों के अनुरोध पर तप एवम् स्वाध्याय। वैसे इन दोनों विषयों पर मैं अनेक बार अलग-अलग प्रकार से आपको बता चुकी हूं। फिर भी आप लोगों के आदर-सम्मान में पुनः यह विषय दूसरी प्रकार से प्रस्तुत है। आजकल प्रायः तप करने का अर्थ समझा जाता है— अपने आपको तपना एक टांग पर खड़े रहना और शारीरिक कष्ट देना पर यह तो तप नहीं। जान बूझकर शारीरिक कष्ट भोगना, किसी पेड़ से अपने पांव बांधकर उल्टे लटके रहना, दाएं या बाएं हाथ को उपर उठाकर-रखना और वैसे ही उठाए-उठाए सुखा देना, जानबूझकर कांटों या जलती सलाखों पर लेटना, गर्मियों में अपने को अग्नि में तपाना या सर्दियों में बिना बात ठण्डे पानी में डुबकियां लगाना कि इससे हमारे कर्म शुद्ध हो जाएंगे या जीवन में जो पाप किये हैं वह नष्ट हो जाएंगे। किन्तु यह सब करना तप नहीं केवल सर्कस दिखाना या जादूगरी के भ्रम में अपने आपको डालना है।

शास्त्रों द्वारा तप का वास्तविक अर्थ है— सहनशीलता, दृढ़ इच्छाशक्ति, ऊंचा मनोबल और रुकावटों की चिन्ता किए बिना उन्नति की ओर आगे बढ़ते जाने की भावना। एक प्रतिज्ञा हम ने की, एक संकल्प हम ने किया और अच्छी प्रकार से सोच-समझकर किया, तब गर्मी हो या सर्दी, सुख हो या दुःख, सघनता हो या निर्धनता, अमीरी हो या गरीबी, अपमान हो या सम्मान, जीवन हो या मृत्यु किसी की भी चिन्ता किये बिना आगे की ओर बढ़ते चले जाना और लक्ष्य तक पहुंचे बिना कहीं भी रुकना नहीं, कहीं भी डगमगाना नहीं, कहीं भी अपने संकल्प को दबने मत देना, यह है तप। इस तप के बिना आत्मा और परमात्मा के मिलाप में कभी सफलता नहीं मिलती। दर्शनशास्त्रों में कहा कि— **नातपस्विनो योगः सिद्ध्यति।** अर्थात् जो अतपस्वी है, जिसमें तप की भावना नहीं, उसका योग कभी सिद्ध नहीं होता, तप की इस भावना

के बिना उस वासना का भी अन्त नहीं होता, जो जन्म-जन्म से चित्त के साथ चली आती है इसके विषय में मैं पहले भी बता चुकी हूं कि अनादि काल से दु:ख देने वाली कर्मों की वासना के जो चित्र शरीर में बने हैं और वर्तमान विषयों में फंसे कर्मों की जो मैल आत्मा पर जमी है उसे दूर करने का तप के बिना कोई मार्ग नहीं है। इसलिए संसार के त्रिविध तापों से संतप्त मनुष्यों के लिए योगाभ्यास एक अचूक औषधि बतलाई गई है। यह तो था तप का अर्थ।

प्यारे श्रोतागणो, दूसरा प्रश्न आपका है कि स्वाध्याय क्या है? स्वाध्याय का वास्तविक अर्थ है 'स्व' अर्थात् अपने आपको पढ़ना, अपनी आत्मा को पढ़ना, जानना, समझना या ऐसे धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन करना जिनसे आत्मा का ज्ञान मिलता हो। परन्तु आजकल कुछ लोगों ने स्वाध्याय का मतलब समझ लिया है केवल पढ़ना। चाहे वो कोई भी विचित्र पुस्तकें हों उनको पढ़कर अर्थ का अनर्थ करना, उन शब्दों का दुरुपयोग करना। किन्तु यह सब स्वाध्याय नहीं अपितु स्वाध्याय के नाम पर केवल दिखावा करना है। स्वाध्याय का वास्तविक और सच्चा अर्थ है वेद, उपनिषद्, गीता, सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थों का पूरे ध्यान के साथ सोच-समझकर आध्यात्मिक प्रकार से पढ़ना, और पढ़कर उन्हें और उनके उपदेशों को अपने जीवन में धारण करने का प्रयत्न करना। अपने आपको पढ़ना कि हमारे अन्दर क्या है, कितने गुण हैं, कितने अवगुण। अच्छाइयों को आगे बढ़ाना और अपनी बुराइयों को अपने से दूर करना।

कुछ लोगों को यह दूसरा स्वाध्याय समझ नहीं आता है कि अपने आपको को कैसे पढ़ें? अपना आप कोई पुस्तक तो है नहीं जिसे पढ़ें। किन्तु जब फिल्मों की पुस्तक पढ़ सकते हैं कि कोरा ....। उनसे सवाल है कि दिल कोई किताब तो है नहीं। जब आप अपने दिल की किताब पर दूसरे का नाम लिख सकते हैं, एक दूसरे की आंखों में झांककर एक दूसरे की आंखों की भाषा समझ सकते हैं। आंखों के एक इशारे से जीवन साथी बनने की कसमें खा सकते हैं

तो अपने आपको पुस्तक क्यों नहीं पढ़ सकते? यह वह पुस्तक है जो ना भी पढ़ना चाहे तो भी हर मनुष्य को एक दिन विवश होकर, मजबूर होकर यह पुस्तक पढ़नी ही पड़ती है। इस शरीर के भीतर एक और सूक्ष्म शरीर है। बाहर का शरीर इस जन्म में मिला है। इसी जन्म में समाप्त हो जाएगा। चाहे इस शरीर को कितने ही सुगन्धित इत्रों से नहलाओ, इसे भूखा रखो या अनेक प्रकार के सुस्वादु भोजन खिलाओ, इसे रेशमी कपड़ों में लपेटो या फटे चिथड़ों में, इसे राजमहलों में रखो या झोंपड़े में, अन्त में यह जाएगा अवश्य। यह शरीर तो ऐसे है जैसे नदी को पार करते समय किसी ने लकड़ी का तख्ता पकड़ लिया हो। नदी के दूसरे किनारे पर तख्ता शरीर को छोड़ देगा और शरीर तख्ते को बहुत ही संघर्ष करना पड़ता है, पृथ्वी आकाश को एक किया जाता है परन्तु यह शरीर तो मिट्टी है मिट्टी।

यूं अगर देखिये क्या कुछ नहीं यह मुश्ते गुबार।
और अगर सोचिये तो ख्वाब भी इन्सां में नहीं॥

इस शरीर का मूल्य पूछना हो तो उस बेटे से पूछिये जो अपने पिता के मृत शरीर को अपने हाथ से आग लगा देता है। उस पत्नी से पूछो, जो पति को देखकर रोती है चिल्लाती है, बिलखती है और सिसकते हुए कभी कहती है— उठाओ इसे, ले जाकर आग लगा दो बहुत देर हुई जाती है । उस पिता से पूछो जो अपने लाडले नन्हे मुन्हे बच्चे की लाश को गोद में उठाकर नदी में फेंक देता है क्योंकि वह अब केवल शरीर है उसका बच्चा नहीं। इसलिए श्रोताओ, यह शरीर भी हमारा तुम्हारा साथी नहीं यह तो साधन है स्वाध्याय का। इस स्वाध्याय .... पर किसी शायर ने कहा है—

न पूछो कौन हैं, क्यों राह में लाचार बैठे हैं?
मुसाफिर हैं सफर करने की हिम्मत हार बैठे हैं॥

५०. प्रभु और धर्म

प्यारे श्रोतागणो! तीन बरस बीतने को आए आपकी सेवा में रेडियो सारंगा द्वारा धर्म का सन्देश सुनाते हुए। जब-जब भी मैंने अपना कदम पीछे हटाना चाहा, तब-तब ही धर्म के कर्तव्य की पुकार मुझे फिर आप तक खींच ले आई। इसी पुकार ने आज मुझे फिर से विवश कर दिया कि मैं धर्म-संग्राम के मैदाने जंग में अपना कदम रखूं। मैं इस बात के लिए रेडियो सारंगा और विशेषतः भाई फिरोज जी का आदर सहित धन्यवाद करती हूं कि धर्म संग्राम के मैदाने जंग में उन्होंने किसी धर्म व जाति का भेदभाव न रखते हुए मेरा मनोबल सदैव बढ़ाया। हमारे इस धार्मिक युद्ध में तलवार का जवाब तलवार से नहीं दिया जाता अपितु धर्म का युद्ध लड़ने के लिए धर्म के सैनिकों को तेज तलवारों की धार पर चलना पड़ता है। मैं उन श्रोतागणों का भी हार्दिक धन्यवाद करती हूं कि जब मैं धर्म के युद्ध में तेज तलवार की धारों पर चल रही थी। उससे जो मेरी आत्मा से रक्त बहा, मेरे हृदय में जो घाव फूटे उन्हें जनता ने अपने प्यार से, अपने दुलार से मेरे आत्मसम्मान को सींचा और हर स्थिति में मेरा मनोबल बढ़ाए रखा और मेरे रिसते जख्मों पर सदैव ही स्वच्छ-हृदयता का और **वसुधैव कुटुम्बकम्** का मरहम लगाया।

माननीय श्रोतागण, जैसा कि सदैव ही मेरे प्रवचन का विषय, प्रभु और धर्म ही रहा है आज भी फिर से इसी विषय पर मैं और प्रकाश डालने का प्रयत्न करूंगी कि प्रभु को प्राप्त करने की और उस रास्ते पर चलने के लिए हमें दिन-दिन दूसरे रास्तों से गुज़रना पड़ता है। वैसे तो मंजिल एक ही है किन्तु उस मंजिल तक पहुंचने के लिए मानव अपने कर्मों द्वारा स्वयम् रास्ते बनाता है या स्वयम् ही अपने रास्तों पर फूल या कांटे बिछाता है। प्रभु का वो अर्थ ही है अनन्त असीम, अकथ, आनन्द, सुख, समृद्धि और शान्ति। यही सब ढूंढने के लिए हम कई वर्षों से सुख की राह पर नहीं अपितु क्लेश और

दुःख की राह पर बढ़ रहे हैं। यदि हम धर्म और समाज के इतिहास के पन्ने पलटें तो इसी शान्ति की खोज के लिए इस दुनिया में बड़े-बड़े युद्ध हुए, महान् क्रान्तियां हुईं। शान्ति की खोज करते-करते दुनिया का ढांचा ही बदल गया।

इस संसार के अनेकों देश गुलामी की दलदल से निकलकर अज़ादी के शिखर पर पहुँच गए। राज्य बदले, प्रजा बदली, शान्ति स्थापित रखने के लिए द्वितीय महायुद्ध भी हुआ। किन्तु क्या शान्ति स्थापित हुई? नहीं। विज्ञान के पुजारियों की तो अब भी यह धारणा है कि युद्ध से शान्ति हो सकती है और मृत्यु से जीवन मिल सकता है, बंटवारे से मिलाप हो सकता है। और सर्वनाश से नवसृष्टि का निर्माण हो सकता है। हां, यह अन्तिम बात तो कुछ सत्य ही दिखाई देती है कि जब प्रलय आती है तो प्रभु अवश्य ही नवसृष्टि का निर्माण करते हैं। किन्तु हम तो शान्ति का मार्ग ढूंढ रहे हैं और हम ने इसके लिए प्रयत्न किये किन्तु गलत रास्तों पर चलकर। परिणाम क्या हुआ कि मर्ज बढ़ता गया ज्यों ज्यों दवा की। हमारे इन रास्तों से संसार के कष्ट कम नहीं हुए अपितु बढ़े ही हैं। भुखमरी, अन्न संकट बाढ़ और भूकम्प तो दैवी प्रकोप हैं किन्तु मानव के स्वयं के मन में असन्तोष, ईर्ष्या, वैमनस्य और वैर की इतनी तेज आग धधक रही है कि सारा संसार इसकी चपेट में आ गया है। और इस संसार में शारीरिक और आत्मिक दोनों प्रकार के कष्ट बढ़ गए हैं। यदि हम इन सब का कारण खोजें तो निश्चित रूप से हमें पता चलता है कि हमारे प्रयत्न में ही हम से भूल हो गई है। नहीं तो जितनी महान् कोशिशें हम ने कीं इस शान्ति को स्थापित करने के लिए आखिरी सांस तक हम लड़े किन्तु क्या शान्ति स्थापित कर सके, क्या धर्म की ज्योति जला सके और क्या अपनी आत्मा के प्रकाश में स्वयम् को देख सके, नहीं।

आजकल भारत, अमेरिका, रूस, ब्रिटेन, हालैंड सभी की गतिविधियों को यदि न्याय और धर्म के तराजू पर तोला जाय तो इन सभी का लक्ष्य और प्रयत्न है कि पूरे विश्व में शान्ति स्थापित हो उसी का राज्य

हो। परन्तु सफलता किसी को भी प्राप्त नहीं हो रही। यदि किसी को क्षणिक सफलता मिलती भी है तो असफलता की दुर्गन्धयुक्त कीचड़ से लथपथ। फिर प्रश्न उठता है कि संसार में सफलता मिल ही नहीं सकती। क्या ये संसार दुःख का दूसरा नाम है या क्या सुख-शान्ति और चैन यहां सिर्फ हमारी कल्पना मात्र हैं। नहीं, इन्हीं समस्याओं का सुझाव हमारे उपनिषदों के ग्रन्थकार ऋषियों ने सुलझाया है। उनका भी तो यही कहना है कि इस सृष्टि का रचने वाला भगवान् आनन्द स्वरूप है। उस प्रभु के घर में तो आनन्द ही आनन्द है, मोद-प्रमोद है, उल्लास ही उल्लास है, खुशियां ही खुशियां हैं। तब आनन्दमय भगवान् के बनाये इस संसार में करुण क्रन्दन, रौरव रुदन और हाहाकार क्यों है, कष्ट और क्लेश क्यों हैं? चारों ओर से त्राहि माम् की आवाजें क्यों आ रही हैं। अच्छे लोगों के भी पुरुषार्थ सफल क्यों नहीं होते?

जब-जब कहीं पर भी मैंने इस प्रश्न का उत्तर खोजना चाहा, घर में, एकान्त में, समाधि में हर बार, हर जगह, हर ग्रन्थ में एक ही उत्तर मिला कि आत्म-दर्शन और प्रभु-दर्शन के बिना लोक-सेवा, अथवा विश्व कल्याण के सब प्रयास असफल रहेंगे। महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने आर्यसमाज के नियमों में आर्यसमाज का मुख्य उद्देश्य संसार का उपकार करना बतलाया है। इसका साधन जो उन्होंने बतलाया, शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना है। आर्यसमाज के नेताओं तथा सेवकों ने शारीरिक तथा सामाजिक उन्नति के लिए भरसक प्रयत्न किये। समाज-सुधार, देशोद्धार और राष्ट्र-निर्माण के लिए, गुरुकुल, स्कूल, पाठशाला, अनाथालय, विधवा, वृद्ध आश्रम, शिल्प विद्यालयों का निर्माण किया। कई आर्यसमाजी परिवारों ने पूर्ण त्याग करके इस उद्देश्य की पूर्ति का प्रयत्न किया। कई महान् आत्माओं ने अपनी जीवन आहुतियां दे डालीं। उन आर्यसमाजी शहीद सेवकों की स्मृति में स्वयम् माथा झुक जाता है, किन्तु फिर भी हम अपनी आत्मिक उन्नति नहीं कर सके।

इस शारीरिक, सामाजिक उन्नति के साथ-साथ यदि आत्मिक उन्नति

तक वे शहीद जीवित रहते तो आज जो असन्तोष, उदासीनता और निराशा दिखाई देती है वह ना होती। महर्षि दयानन्द जी ने तो आत्मिक उन्नति का कार्य दूसरे स्थान पर और सामाजिक उन्नति का कार्य तीसरे स्थान पर रखा था परन्तु आर्य कार्यकर्ताओं ने आत्मा की ओर ध्यान न देकर सामाजिक कार्यों की ओर अधिक ध्यान दिया। उसका परिणाम यह है कि हम आजाद तो हुए किन्तु सुखी नहीं हुए। ऐसी आजादी का भी क्या लाभ जब देश सुखी न हो? इस आजादी को प्राप्त करने के लिए, बड़े-बड़े बलिदान हुए। कई योद्धा फांसी के रस्सों पर झूले, करोड़ों देशवासी अपना सर्वस्व लुटाकर मौत की नींद सो गए। हजारों शत्रुओं के हाथों मारे गए। कितनी ही माताओं और बहनों की लाज लुटी। कितनी युवतियों का सिन्दूर उजड़ा, इतने महान् बलिदानों के बाद हम आज़ाद तो हुए किन्तु सुख-शान्ति नहीं स्थापित कर सके। इन सब दुःखों का मूल कारण यही है। सब ने सुख के स्रोत प्रभु को भुला दिया है।

५१. प्रभु-दर्शन के मार्ग

प्यारे श्रोतागणो! गत सोमवार को मैं आप सब को बता रही थी कि प्रभुदर्शन के लिए सब से पहले हृदय में सत्य शिव और दृढ़ संकल्प की नींव रखो और उसके बाद अपने जीवन को इनके अनुसार व्यवहार में लाओ। इस राह पर चलने के लिए सब से पहला नियम मैंने आप सब को बताया था कि प्रातःकाल उठो। आज इस प्रभुदर्शन की राह का दूसरा नियम आपको बता रही हूं कि अपने शरीर को बलवान्, स्वस्थ तथा शिला के समान दृढ़ बनाओ, क्योंकि रोगी शरीर का मनुष्य मनुष्यत्व से पतित हो जाता है और उसमें मनुष्य धर्म को पूर्ण करने का सामर्थ्य नहीं रहता। अपने शरीर तथा इन्द्रियों को इस प्रकार रखना चाहिए कि शरीर सदा स्वस्थ एवम् बलवान् बना रहे। खान-पान ऐसा सात्त्विक हो, जिससे शरीर की शक्ति बढ़ती रहे और मनुष्य इस वैदिक आदर्श को दूसरों के सामने निःसंकोच भाव से रख सके। स्वस्थ शरीर के लिए भक्त को अपने एक-एक अंग को स्वस्थ रखने के लिए अथर्ववेद के इन मन्त्रों (१९।६०।२२) से रोज प्रार्थना करनी चाहिए—

ओ३म् वाङ् म आसन्नसोः प्राणश्चक्षुरक्ष्णोः श्रोत्रं कर्णयोः।
अपलिताः केशा अशोणा दन्ता बहु बाह्वोर्बलम्॥
ऊर्वोरोजो जङ्घयोर्जवः पादयोः प्रतिष्ठा अरिष्टानि मे सर्वात्मा निभृष्टः।

अथर्ववेद के इन दोनों मन्त्रों का अर्थ है कि प्रभु की दी हुई मेरे मुख में वाणी है, इसलिए मुझ में अपने मन के भाव प्रकट करने की शक्ति है, सत्य कहने का भय नहीं है। और प्राणः अर्थात् मेरी नसों में प्राण है और मैं जीता जागता हूं। और जीवन का लक्ष्य दिखा सकता हूं। तीसरा शब्द मन्त्र में था अक्ष्णः मेरे नेत्रों में शक्ति है, ज्योति है, दृष्टि है। श्रोत्रं कर्णयोः- मेरे कानों में श्रुति है। मैं ठीक ही देखता हूं और ठीक ही सुनता हूँ। यहाँ पर ठीक देखना और ठीक सुनने से मतलब यह है कि अपने जीवन में कभी-कभी हम अपनी आंखों पर विश्वास नहीं करते हैं, सत्य को देखते हुए भी हम अन्धे बन जाते

हैं और दूसरों की कही असत्य वाणी पर विश्वास कर लेते हैं।

इस मन्त्र के अगले शब्दों का अर्थ है कि मेरी भुजाओं में बहुत बल है। मेरी रानों में शक्ति है और मेरी जंघों में वेग है। मेरे दोनों पांवों में दृढ़ खड़ा होने की शक्ति है, मेरे सारे अंग पूर्ण निरोग हैं, मेरी आत्मा परिपक्व है। इसलिए हे प्रभो, मैं पूर्ण अंगों से स्वस्थ-बलवान् और तेजस्वी होकर अपने जीवन संग्राम में अपने पांव पर खड़ा रह सकूं। इस पवित्र वेद मन्त्र के अनुसार हम प्रभु से प्रार्थना करें कि हमारा एक-एक अंग स्वस्थ बलवान् हो। जो व्यक्ति ऊषा काल से पूर्व उठकर नित्य कर्म योगाभ्यास करता है। जिह्वा के स्वाद के अधीन ना होकर सात्त्विक भोजन का सेवन करता है, दूध का सेवन करता है। पोषक अन्न और फल खाता है, और अपनी इन्द्रियों को वश में रखता है, निसन्देह ही वह अपना शरीर वेदमन्त्र के अनुकूल बना लेता है। और उत्तम स्वास्थ्य वाला रहता है। आयुर्वेद के शास्त्र 'चरक संहिता' में यह आदेश है कि— **धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।**

अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन सब का मूल आरोग्य है अन्य निरोगी शरीर है।

प्रभु-दर्शन के मार्ग की तीसरी सीढ़ी है कि अपने चरित्र को पवित्र बनाओ। शरीर की स्वस्थता के साथ-साथ मनुष्य की आत्मा भी ऊंची और चरित्र भी पवित्र होना चाहिए। चरित्रहीन बलवान् मनुष्य तो पशुओं से भी निम्न चरित्र वाला है। और वह मनुष्य समाज और परिवार का शत्रु होने के साथ-साथ मनुष्य कहलाने के योग्य भी नहीं होता है। इसलिए यजुर्वेद ४।२८ में भक्त भगवान् से यह प्रार्थना करता है कि—

ओ३म् परि माग्ने दुश्चरिताद् बाधस्वा मा सुचरिते भज।
उदायुषा स्वायुषोदस्थाम् अमृताँ अनु॥

इस मन्त्र का अर्थ है कि हे अग्नि देव परमात्मन्! मुझे दुश्चरित से सदैव ही बचाते रहो। सुचरित मार्ग पर सदा चलाते रहो, जिससे

मैं अपने जीवन में उच्च जीवन और पवित्र जीवन के साथ देवताओं के देवत्व की ओर बढ़ सकूं।

इन सब बातों के लिए हमें स्वयम् पहले अपने आप में निश्चय करना पड़ता है कि हम किसके साथी बनना चाहते हैं। देवताओं के या असुरों के? यदि हम ने अपने जीवन में यह निश्चय कर लिया है कि हम देवताओं के साथी बनना चाहते हैं तो उसके लिए हमें अपना चरित्र भी देवताओं की तरह पवित्र बनाना होगा। वेद भगवान् ने ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में इस चरित्र के पवित्र बनाने के लिए इन बातों से दूर रहने का आदेश दिया है— 1. बुद्धि विनाशक द्रव्यों का सेवन ना करें। 2. असात्त्विक तामसिक भोजन न करें। 3. जुआ ना खेलें। 4. व्यभिचार ना करें। 5. दूसरे का अधिकार ना छीनें और दूसरे के चरित्र पर कीचड़ ना उछालें। सब से सद्-व्यवहार करें, मीठी मन मोहने वाली वाणी बोलें, किसी से भी ईर्ष्या-द्वेष और द्रोह ना करें। ऐसे पवित्र चरित्र वाला व्यक्ति शीलवान् कहलाता है। शीलता के सम्बन्ध में शास्त्रों में लिखा है कि—

अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा।
अनुग्रहश्च ज्ञानं च शीलमेतद् विदुर्बुधाः॥

अर्थात् मन, वाणी और कर्म के द्वारा प्राणधारियों के विषय में द्रोह रहित रहना, सब की भलाई करते रहना, सब का ज्ञान बढ़ाते रहना, बुद्धिमान् लोग इसको शीलवान् तथा चरित्रवान् कहते हैं। आचारहीन के लिए तो कहीं कोई ठिकाना ही नहीं है। क्योंकि — "**आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः।**" जो आचार से हीन है उसे वेद भी पवित्र नहीं करते। क्योंकि "**आचारः प्रथमो धर्मः।**" आचार ही मनुष्य का पहला धर्म है। इसलिए पूरी सावधानी से अपनी और अपने चरित्र की रक्षा करो। यह संसार एक फिसलनी घाटी है। यदि जीवन-यात्रा में कभी पांव फिसल जाए और ना चाहते हुए भी चरित्र में कमजोरी आने लगे तो तुरन्त प्रभु के चरणों में झुक जाओ और यजुर्वेद के ३६।२ मन्त्र द्वारा निवेदन करो—

ओ३म् यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वातितृण्णम् ।
बृहस्पतिर्मे तद्दधातु शन्नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः ।।

इस मन्त्र में भक्त वेद भगवान् से प्रार्थना करता है कि—

इस मन्त्र का अर्थ है कि हे मेरे बृहस्पति भगवान्, जो मेरी आंखों का छिद्र दोष है और जो मेरे हृदय तथा मन का गहरा गढ़ा है वह ज्ञान और अच्छाइयों से भर दो तथा हमारे लिए आप कल्याणकारी बनो। हम केवल आपसे प्रार्थना करते हैं क्योंकि आप ही सब के स्वामी हैं। दूसरे धर्म ग्रन्थ महाभारत में यह आदेश है कि—

वृत्तं यत्नेन संरक्षेद् वित्तमेति च याति च।
अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः ।।

इस श्लोक का अर्थ है कि हम अपने तथा दूसरे के चरित्र की रक्षा बड़े यत्न से करें। धन तो आता है और चला जाता है। धन से नष्ट हुआ व्यक्ति नष्ट नहीं होता परन्तु चरित्र से गिरा हुआ तो समझो मरा ही हुआ है। किन्तु आजकल कलियुग में उल्टी गंगा बहने लगी है। सतयुग में कहा जाता था कि—

धन का नाश हो जाए तो कुछ नहीं बिगड़ा।
स्वास्थ्य बिगड़ जाए तो थोड़ी हानि हुई।
चरित्र बिगड़ जाये तो सर्वनाश हो गया।।

लेकिन आजकल बात बिल्कुल उल्टी हो गई है। कर्म उल्टा हो गया है कि—

चरित्र बिगड़ गया तो कुछ नहीं बिगड़ा।
स्वास्थ्य बिगड़ा तो थोड़ी हानि हुई।
धन का नाश हो जाए तो सर्वनाश हो गया।।

ये है आजकल का चाल चलन, ऐसा पाप मन में रखकर, ऐसी चाल चलकर हम प्रभु-दर्शन की आस लगाए बैठे हैं। जीवन स्तर और चरित्र ऊंचा होने का अर्थ तो यह है कि हमारे जीवन में सादगी हो, नम्रता हो, सत्यता हो, सेवा-भाव हो, स्वाध्याय हो तथा हमारे व्यक्तित्व

में सद्व्यवहार की ज्योति चमके। किन्तु कलियुग में उल्टी हवा बहने लगी है कि हर स्थल पर छल कपट, अन्याय, दुराचार, दुर्व्यवहार होने लगा है। जिससे सब का सर्वनाश होने लगा है। इसलिए आज के युग में हमें वेद भगवान् के सन्देशों की परम आवश्यकता है, सारे संसार को चाहिए कि वेद भगवान् से यह आदेश ले कि

ओ३म् प्रत्नात् मानादध्या ये समस्वरन्
श्लोकयन्त्रासो रभस्य मन्तवः॥
अपानक्षासोबधिरा अहासत
ऋतस्य पन्थां न तरन्ति दुष्कृतः।

इस मन्त्र का अर्थ है कि हमारे परमदेव परमात्मा की ओर से जो विचित्र शक्तियां उठती रहती हैं, भक्ति भाव वाले भक्त लोग और प्रेरणा वाले प्रेरक लोग उन्हें पहचानते हैं। अन्धों और बहरों की वहां तक पहुंच नहीं। और दुष्कर्मी सत्यमार्ग को पार नहीं कर सकते। सत्य के पालक प्रभु का बल अद्भुत है उसे कौन ठग सकता है? प्रभु से कुछ छिपा नहीं, वह प्रभु तो शुद्ध बारीक शोधवाला है। चरित्रहीन आचरण शून्य लोगों से प्रभु का प्रेम नहीं होता इसलिए उनका विकास रुका रहता है।

५२. भगवान् राम, कृष्ण, शंकर

प्यारे श्रोतागणो! आज सर्वप्रथम मैं आप सबको विजयादशमी अर्थात् दशहरे की हार्दिक बधाई देती हूं। स्वीकार करें, आज महानवमी है, नवरात्रों का समापन भी है, आयुध पूजा भी है और श्री माधवाचार्य जयन्ती भी है। आज का दिन बहुत ही शुभ दिन है कि 6 त्यौहार एक साथ एक ही दिन में हमारे जीवन में आ गए हैं। आज का दिन ही वह शुभ दिन है जब भगवान् राम ने लंका पर विजय पाई थी। हमारे साहित्यिक धार्मिक ग्रन्थों में भगवान् राम के चरित्र गुणगान के लिए 2 ग्रन्थ सामने आते हैं। पहला ग्रन्थ है वाल्मीकि रामायण और दूसरा ग्रन्थ है महाकवि तुलसीदास रचित रामचरितमानस। कवि वाल्मीकि ने भगवान् राम को महात्मा, आर्य, रघुकुल भूषण, राघव, राजेन्द्र, मानवेन्द्र आदि अनेक सार्थक नामों से पुकारा है। तुलसीदास जी ने जबकि भगवान् राम को विष्णु भगवान् आदि ईश्वरीय नामों से सम्बोधित किया है। श्री भगवान् राम का यशो गुणगान हम प्रतिवर्ष विजयादशमी के शुभ अवसर पर हृदय से आनन्दित प्रफुल्लित होकर याद करते हैं।

भगवान् राम के गुणों के साथ-साथ आज के दिन भगवान् कृष्ण और शिव शंकर के रंगीन सपने भी साथ में जुड़े हुए हैं। क्योंकि भगवान् राम, भगवान् कृष्ण, भगवान् शिव शंकर यह तीनों नाम भारतीय आत्मा के धार्मिक इतिहास के लिए सब से ऊंचे, सब से सच्चे और सब से पवित्र और महान् हैं। ये तीनों नाम अलग-अलग होते हुए भी, तीनों की शक्तियां अलग-अलग होते हुए भी तीनों एक हैं। जिस प्रकार पत्थरों और धातुओं पर इतिहास के अक्षर खुदे हुए मिलते हैं वैसे ही हिन्दू मानव के हृदयों और दिमागों पर इन तीनों की सुन्दर धार्मिक कहानियां इतनी गहरी अंकित हैं जो संसार में किसी के मिटाए नहीं मिट सकती हैं। भगवान् राम, कृष्ण और शिव भारत के तीन महान् धार्मिक स्वप्न हैं। तीनों का रास्ता अलग-अलग है जैसे भगवान् राम की पूर्णता मर्यादा में स्थित है। भगवान् कृष्ण की पूर्णता पवित्र स्वतन्त्रता

और सम्पूर्ण व्यक्तित्व में है और भगवान् शिव की सम्पूर्णता असीमित व्यक्तित्व में है। लेकिन फिर भी हरेक पूर्ण है, किसी की एक दूसरे से अधिक या कम होने का सवाल ही नहीं उठता है। फिर पूर्णता में विभेद कैसे हो सकता है?

मनुष्य के हृदयों में यह प्रश्न उठ सकता है कि जब तीनों ही पूर्ण हैं तो हम किस को अपने जीवन का आधार मानें? और तीनों की पूर्णता को ग्रहण करना मानव के लिए बहुत ही कठिन कार्य है। एक साथ मनुष्य में मर्यादा, उन्मुक्तता और असीमित व्यक्तित्व यह तीनों गुण कैसे हो सकते हैं। भारत के बड़े-बड़े महान् ऋषियों तपस्वियों ने इन तीनों गुणों के एक साथ पाने के लिए बहुत तपस्या की किन्तु हर बार वह सीमित थी भगवान् राम और उनकी पत्नी जनकसुता देवी सीता। भगवान् राम का पूरा चरित्र सीता स्वयंवर से लेकर सीता माता के धरती में समा जाने के साथ-साथ घूमता है। जिसमें, सीता स्वयंवर, सीता अपहरण, लंका दहन के बाद फिर सीता माता की रावण की कैद से मुक्ति और सीता वनवास। जब सीता जी का अपहरण हुआ था तो भगवान् राम साधारण मनुष्य की तरह व्याकुल थे। वह रो-रोकर कंकड़ों से, पत्थरों से, पेड़ों से दीवानों की तरह पूछते थे कि क्या उन्होंने उनकी प्रियतमा पत्नी सीता को देखा है? राम को विरह व्याकुलता से रोता देखकर आकाश का चन्द्रमा उन पर हंसता था। वह चन्द्रमा का हंसना भगवान् विष्णु को हजारों वर्षों तक याद रहा होगा और जब द्वापर युग में भगवान् विष्णु कृष्ण के रूप में धरती पर आए तो उनकी असंख्य प्रेमिकाएं थीं।

एक बार आधी रात को कृष्ण जी ने वृन्दावन की सोलह हजार गोपियों के साथ रास-नृत्य किया। और सब से महत्त्वपूर्ण बात यह है कि हर गोपी के साथ कृष्ण अलग-अलग नाचे। किन्तु फिर भी वह स्वयम् अचल थे। सब को थिरकाने वाले स्वयम् स्थिर थे। आनन्द मग्न अटूट और अभेद्य थे और उस समय भगवान् कृष्ण में तृष्णा लेश मात्र भी नहीं थी। यह लीला दिखाते हुए भगवान् कृष्ण ने पूर्णमासी के दिन आकाश के चन्द्रमा को ताना मारा कि अब हंसो। तब त्रेता युग में तो राम को रोता देखकर उनकी हंसी उड़ा रहे थे, अब हंसो।

बेचारा चन्द्रमा गम्भीर होकर कहीं बादलों में जा छिपा। मेरा आज यह दोनों कहानियां सुनाने का मतलब यह है कि आज भी हम मर्यादा ढूंढ रहे हैं। जब तक इन्सान अपनी मर्यादा में रहता है तो उसकी वह सम्पूर्णता को नहीं पा सकता। महामुनि ऋषि लोग शिव को राम के पास और कृष्ण को शिव के पास लाने में समर्थ हो चुके हैं। जैसे उन्होंने यमुना के तट पर भगवान् कृष्ण को होली खेलते बताया है। ऋषि-मुनियों के यह स्वप्न अलग-अलग प्रकार के होते हुए भी एक दूसरे से घुल-मिल गए हैं। लेकिन अपना रूप भी अलग-अलग बनाए हुए हैं।

जैसे भगवान् राम और कृष्ण श्रीविष्णु के दो रूप हैं जिनका अवतार धरती पर अधर्म के बढ़ने से और धर्म के नाश होने से होता है। भगवान् राम धरती पर त्रेता युग में आए थे, जब कि उस युग में धर्म का रूप अधिक नष्ट नहीं हुआ था। और भगवान् राम आठ कलाओं से परिपूर्ण थे। इसलिए वह मर्यादित पुरुष कहलाते थे। किन्तु भगवान् कृष्ण ने द्वापर युग में अवतार लिया जब कि पूरी तरह संसार में धर्म की हानि हो रही थी। और भगवान् कृष्ण सोलह कलाओं से परिपूर्ण थे। इसीलिए वह सम्पूर्ण पुरुष थे। और जब श्री विष्णु ने कृष्ण के रूप में धरती पर अवतार लिया तो उस समय स्वर्ग में उनका सिंहासन बिल्कुल सूना था। लेकिन जब भगवान् राम ने धरती पर अवतार लिया। तब श्री विष्णु धरती पर थे और आधे अंश में स्वर्ग में। इसलिए भगवान् राम को आठ कलाओं का और भगवान् कृष्ण को 16 कलाओं का अवतार माना जाता है।

भगवान् राम की मर्यादा की कहानी तो श्रोतागणो आप सब को मालूम ही है कि उनकी दृष्टि केवल एक ही महिला नारी तक थी, उसे तोड़ना बहुत मुश्किल हो जाता है। राक्षसराज रावण तो भगवान् राम का बहुत बड़ा दुश्मन था। वह शक्तिशाली भी था चाहता तो वह सीधे अपने राक्षसी रूप में ही माता सीता का हरण कर सकता था। किन्तु लक्ष्मण ने जो मर्यादा की रेखा खींच दी थी उसे तोड़ने के लिए रावण को ढोंगी साधु-संन्यासी का रूप धारण करना पड़ा। अब यहां

श्रोताओ चार प्रकार की मर्यादा का प्रश्न रामायण में एक साथ खड़ा हो गया। पहली मर्यादा यह कि अपनी प्रियतमा पत्नी का मन रखने के लिए भगवान् राम सुवर्ण मृग की तरफ भागे, उस समय वह चाहते तो मना भी कर सकते थे किन्तु उस समय राम को इसका पूरा अहसास था कि महलों में रहने वाली सीता पत्नी धर्म की मर्यादा का पालन करने के लिए उनके साथ वनों में रह रही है। दूसरी मर्यादा जब राम की आवाज़ सुनकर सीता माता देवर लक्ष्मण से कहती हैं कि जाओ तुम्हारे भैया संकट में हैं। उस वक्त लक्ष्मण के भाभी और भैया दोनों की आज्ञा के लिए मर्यादा रेखा खींच दी। तीसरी मर्यादा थी कि रावण कपटी भिक्षुक के रूप में आया और सीता जी ने अतिथि धर्म की मर्यादा रखने के लिए उस समय जो भी फल-फूल उनकी कुटिया में थे वह भिक्षा के रूप में देने चाहे।

कपटी रावण ने भिक्षा लेने से इन्कार कर दिया कि मैं यह मर्यादा रेखा पार कर भिक्षा ग्रहण नहीं करता। यदि तुम अतिथि धर्म को मर्यादा पालन करना चाहती हो तो सीमा से बाहर आकर भिक्षा देओ। इस प्रकार राम जी के अवतार के चरित्र की पूर्ण कथा मर्यादा शब्द पर ही घूमती रहती है। इसलिए उन्हें मर्यादा पुरुष राम कहा जाता है। भगवान् विष्णु ने राम के चेतन रूप में मर्यादित पुरुष होना स्वयम् चुना था। भगवान् राम बाहरी और भीतरी दोनों ओर से नियन्त्रित पुरुष थे। मर्यादा के साथ-साथ वह नियमों के दायरे में भी पूरी तरह चलते थे। नियम के दायरे की अन्त में आपको एक कथा सुनाती हूं। रावण विद्वान् था उसके अन्तिम दिनों में राम ने लक्ष्मण को रावण से राजनीतिक उपदेश ग्रहण करने के लिए भेजा था। वहां भी मर्यादा थी कि श्रद्धापूर्वक पैरों की ओर खड़े होकर उपदेश ग्रहण किया।

अतः हे भगवान्, हम सभी मनुष्यों को भगवान् शिव का मस्तिष्क दो भगवान् कृष्ण का हृदय दो और भगवान् राम की मर्यादा कर्म तथा वचन दो ताकि हम सब मनुष्य पवित्र स्वतन्त्रता में इस संसार में जीवन की मर्यादा के साथ रह सकें।

५३. अकाल मृत्यु

प्यारे श्रोतागणो,

आज के प्रवचन में मैं सर्वप्रथम उन सभी व्यक्तियों को अपनी अन्तिम श्रद्धाञ्जलि भेट करती हूं और जो गत सप्ताह भारत के ***इन्दिरा गांधी इण्टरनेशनल एयरपोर्ट*** पर अकाल मृत्यु को प्राप्त हुए हैं। कैसा अजीब हादसा है, कितनी करुण भीषण दुर्घटना और कैसा रहस्यमय अन्त। अभी पिछले पांच महीनों में इस संसार में यह आठवीं या नौवीं विमान दुर्घटना है जिसका सही कारण सब जानने का प्रयत्न कर रहे हैं। किन्तु उत्तर प्राप्त करने में अभी तक सब असफल हो रहे हैं। बड़े से बड़े इंजिनीयर वैज्ञानिक निरन्तर प्रयत्न कर रहे हैं किन्तु इस अकाल मृत्यु के सामने संसार के समस्त विज्ञान फेल हो गए हैं। आज चार महीने बाद में न्यूयार्क से उड़ने वाला एक विमान टी डब्लू ए 800 आकाश में पूर्ण उड़ान भरने से पहले ही जल कर भस्म हो गया और धरती पर न गिरकर समुद्र में पानी में डूबकर टुकड़े टुकड़े हो गया। आज भी समुद्र से उस जहाज का प्रतिदिन कोई ना कोई टुकड़ा ढूंढ़कर निकाला जाता है और फिर से उसे हवाई जहाज का रूप देने का प्रयत्न किया जाता है।

कितनी अहमनी है यह लोग कितने डरे हुए हैं। विज्ञान को मानते हुए भी उस ज्ञान को नहीं जान पाए हैं। वह हज़ार कोशिश कर उन टुकड़ों को जोड़ भी लें तब भी उस ज्ञान रूपी आत्माओं को इस संसार में उन शरीरों में नहीं ला पाएंगे जो कि इस विमान के यात्री— कोई पिता था कोई पुत्र, कोई बेटी, कोई बेटा, कोई दादा, चाचा, नाना आदि सभी प्रकार की रिश्तेदारी उसी समय समाप्त हो गई थी जिस समय उन लोगों के शरीरों से आत्मा निकल गई थी। अब प्रश्न यह उठता है कि ऐसी भयानक घटना हुई ही क्यों। यदि धार्मिक, दार्शनिक, चिन्तन के अनुसार इस घटना को जांचें और परखें तो भी इस अकाल आपतित, मृत्यु से ग्रस्त लोगों की कर्म के अनुसार अन्तिम स्थिति यही थी कि

उन्हें इस जल को छूकर ही अन्तिम सांसें छोड़नी थीं। जब हम महाभारत का अध्ययन करते हैं तो कई लोगों से आप ने भी यही कहते सुना है कि बाल कृष्ण भगवान् के जितने भी सखा मित्र थे, वे सब पूर्व जन्म के ऋषि-मुनि थे, इसलिए इस जन्म में वह बाल कृष्ण भगवान् के आस-पास घूमते रहते थे। यदि महाभारत की इस घटना की तुलना हम टी डब्लू ए ८00 विमान दुर्घटना से करें तो कभी-कभी मुझे यह व्यक्तिगत एहसास होता है कि शायद इस विमान के इन सभी यात्रियों ने अपनी अनजानी भूलों में किसी बेकसूर, मासूम जलचर की हत्या की या उन्हें सताया होगा। यह तो सभी जानते हैं कि किस रूप की बात मैं कर रही हूं। तब ही अन्तिम समय प्रभु ने उनके सही कर्म का हिसाब-किताब इस रूप में कर दिया। यदि दूसरे रूप में इस घटना के बारे में सोचा जाए तो शायद इस विमान में बैठे सभी यात्री इतने साधु कल्याणकारी स्वभाव के थे कि इस कलियुग में उन्हें जल समाधि लेने का साहस नहीं रहा होगा तो इस तरह उन्होंने जल समाधि लेकर अपने शरीर का त्याग किया।

सत्य क्या है और असत्य क्या है इसका रहस्य तो आज तक कोई भी नहीं जान पाया। सब ज्ञानी अपनी-अपनी कल्पना से एक कहानी गढ़ लेते हैं और ज्ञान राह पर चलाने के लिए अज्ञानी लोगों के लिए सड़क तैयार कर देते हैं। कठोपनिषद् में नचिकेता से भी यमराज अन्त तक प्रार्थना करते रह गए कि तू वर के रूप में मुझ से दुनिया की हर चीज़ मांग ले मैं तुझे देने को तैयार हूं। किन्तु बालक नचिकेता दुनिया की पूरी दौलत को एक तरफ रख यमराज से यही वर देने की प्रार्थना करता है कि इस मृत्यु का क्या रहस्य है? आज भी जितनी बार हम कठ उपनिषद् का अध्ययन करते हैं उतनी बार हमारी बुद्धि के ज्ञान चक्षु खुलते ही चले जाते हैं किन्तु रहस्य अभी भी कई करोड़ों पर्दों के पीछे ही छुपा हुआ है। इस बार हम उस रहस्य को जानने के लिए पर्दा उठाने की कोशिश करते हैं किन्तु उस रहस्य के जानने से पहले ही हमारी जिन्दगी का अन्तिम पर्दा गिर जाता है और हम

मृत्यु की गोद में सो जाते हैं। प्यारे श्रोतागणों जब-जब भी रेडियो सारंगा पर मैंने इस मृत्यु के रहस्य पर प्रकाश डालने की कोशिश की थी तो कभी मैंने आपके सामने यह कविता की पंक्ति भी पढ़ी थी जो आज मैं फिर आपके सामने पढ़ रही हूं कि—

इस पथ से डोली आती है।
उस पथ से अर्थी जाती है॥

आने वाली शरमाती है और जाने वाली पछताती है। आप सोचेंगे कि अचानक आज मुझे यह कविता क्यों याद आ गई? उसका एक बहुत बड़ा कारण है कि यह कविता तो मैंने बहुत पहले लिखी थी किन्तु आज जब समाचार पत्र में मैंने देखा कि 11 नबम्वर को यह भारत के इन्दिरा गांधी इण्टरनेशनल एयरपोर्ट की विमान दुर्घटना की सही फिल्म मैंने बी० बी० सी० वर्ल्ड और सी० एन० एन० चैनल पर देखी कि एक विमान धरती पर उतरने को बेताब था और एक विमान आकाश में उड़ने को बेकरार। किन्तु दोनों ही विमान अपनी-अपनी मंजिलों से भटक गए ना धरती पर उतरने वाला धरती को छू सका और ना ही आकाश के संतरगी आसमान में उड़ने वाला आकाश में उड़ सका। दोनों ही विमान आकाश और धरती के बीच त्रिशंकु की तरह टकराकर, भस्म होकर ऐसा भयानक दर्दनाक मंजर हमें दिखा गए कि मुझे इस कविता की पंक्तियों में इस प्रकार सुधार करना पड़ेगा कि आने और जाने वाले सभी व्यक्ति जो थे उनको इतना समय इस प्यारी मां मृत्यु ने नहीं दिया कि वतन से बिछुड़ते लोग पछता सकें या फिर वतन की मिट्टी को छूने के लिए वह लोग शरमा सकें।

शोक सन्तप्त परिवारों की सहानुभूति के लिए श्रद्धाञ्जलि—

सहसहस्राह्णय वियतावस्य पक्षौ,
हरेर् हंसस्य पततः स्वर्गम्।
स देवान्त्सर्वानुरस्युपदद्य
संपश्यन् याति भुवनानि विश्वा॥

अथर्व १०।८।१८

अर्थ — स्वर्ग को जाते हुए हरणशील जीवात्मा हंस के पंख सहस्रों दिनों से खुले हुए हैं, फैले हुए हैं। वह सफेद हंस आकाश में विमान की तरह उड़ते हुए, सब देवों को अपने हृदयों में लिये हुए, सारे भुवनों और संसार को देखता हुआ उड़ा जा रहा है।

स्वर्ग लोक की चाह में हंसा भरे उड़ान।
जीव नाम के हंस की गति है वायु समान॥
बीत गये दिन सैकड़ों किन्तु न सिमटे पर।
कहां है स्वर्ग नहीं जानता उड़ता जाए मगर॥
जितनी ही इस हंस ने बाहर भरी उड़ान।
भीतर को उड़ता यदि जाता स्वर्ग महान्॥
लाखों योनि में उड़ा, घूमा कितने लोक।
उर में ले उड़ता रहा, लोक और परलोक॥
यदि हंस तू चाहता स्वर्ग लोक का द्वार।
अपने पंख समेट तू भीतर कर विस्तार॥

५४. प्रभु, धर्म एक उपासना व मत अनेक

प्यारे श्रोतागणो आज का दिन बहुत शुभ दिन है पावन तिथि है। आज कार्तिक पूर्णिमा है। आज सिक्खों के गुरु की गुरु नानक जयन्ती है। आज मुस्लिम धर्म वालों के लिए हजरत अली का जन्म-दिवस है। और हिन्दू धर्म वालों के लिए आज तुलसी-विवाह का अन्तिम दिन एवम् समाप्ति है। वैष्णव और जैन धर्म वालों के लिए आज रास-यात्रा एवम् रथ-यात्रा है और जिन हिन्दुओं ने उचित धर्म की विधि से कार्तिक स्नान आरम्भ किया था उनके लिए आज कार्तिक स्नान की समाप्ति का शुभ दिन भी है।

आदरणीय धर्म-प्रेमियो, एक साथ एक ही दिन में अलग-अलग धर्मों के अलग-अलग त्यौहार हैं और सब लोग अपने-अपने ढंग से यह सब मनाएंगे भी। किन्तु मेरे स्वयम् के मन में एक प्रश्न उठ रहा है जिसका उत्तर मेरी स्वयम् की समझ में नहीं आ रहा है। यदि किसी भी श्रोतागण के पास इसका उत्तर हो तो वह मुझे तार द्वार इसका उत्तर समझा सकता है। प्रश्न यह है कि दिन भी वही है रात भी वही है, तिथि भी वही है। आकाश में आज का निकलने वाला पूर्णिमा का चांद भी सब धर्मों के लिए एक जैसा चमकेगा, एक-सी रोशनी देगा। फिर हम धरती पर रहने वाले लोग सब के साथ प्रेम से क्यों नहीं रह सकते। सब के साथ भद्र तथा सद् व्यवहार क्यों नहीं कर सकते। आर्यसमाज कहता है कि सब के साथ मिलकर चलो, मिलकर बोलो, मिलकर एक साथ एक समान सोचो। सनातन धर्म कहता है कि संसार के सारे प्राणी एक समान हैं, सब को भगवान् समान रूप में सब कुछ देता है किन्तु मानव अपने-अपने कर्म के अनुसार भगवान् के प्रसादों को ग्रहण करता है। मुस्लिम धर्म कहता है कि अल्लाह की बनाई इस दुनिया में परवरदिगार की नज़रे करम इन्सानियत की करनी पर उसका नूर एक-सा बरसता है। जैन धर्म कहता है कि 'अहिंसा परमो धर्मः।' हिंसा करना सब से बड़ा पाप है और अहिंसा सब से बड़ा

धर्म। सिख धर्म के गुरु गुरु नानक जी ग्रन्थ साहब में लिखते हैं कि—

पवण गुरु पाणी पिता माता धरती महतु,
दिवसु राति दुई दाई दादुआ खेलै सगल जगनु।
चंगी आईआं बुराईआं, वाचै धरमु हदूरी,
करमी आपो आयणी के नेड़े के दूरी॥
जिनी नामु धिआईआ, गए मुसकति घाली।
नानक ते मुख उजले, केति छुटि नालि।

इन तीन श्लोकों का अर्थ इस प्रकार है कि पानी पिता के समान है, यह धरती माता के समान महान् है और वायु गुरु है जो हमारी प्राण रक्षा करता है। यह रात और दिन दाई माँ की वह गोद है जिनकी गोद में सारा संसार खेलता है। धर्मराज का रूप होकर परमात्मा स्वयम् ही हमारे अन्दर बैठकर हमारे अच्छे और बुरे कर्मों का हिसाब-किताब करता है। इसीलिए अपने-अपने कर्मों के अनुसार कोई तो परमात्मा के समीप हो जाते हैं और कोई दूर। जिन्होंने प्रभु का नाम स्मरण कर रखा है वह तो अपना जीवन सफल कर गए। इसलिए हे नानक उन उजले मुख वालों की संगति से और भी कई मुक्त हो गए।

सिर्फ इतना ही नहीं है यदि आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द जी की तुलना गुरु नानक जी से की जाए तो हमें पता चलेगा कि दोनों ही महान् पुरुषों का जीवन एक सा था, कर्म भी एक जैसे थे, दोनों की मंजिल भी एक थी कि धर्म द्वारा मोक्ष को प्राप्त करना। वे दोनों ही सब से बड़े समाज सुधारक थे। महर्षि दयानन्द की तरह गुरु नानक जी भी नारी की स्थिति को सुधारने में और उसे समाज में ऊँचा स्थान दिलाने के लिए संघर्ष करते रहे। गुरु नानक जी ने नारी की सामाजिक अन्याय की स्थिति को समझा और नारी को समाज में सब से ऊँचा स्थान देने पर बल दिया। गुरु नानक जी अपनी पुस्तक जपु जी साहब में लिखते हैं कि हम नारी से ही जन्म लेते हैं। इस संसार में हमारा अस्तित्व नारी के कारण ही है। हम नारी से विवाह कर उसे सहचरी बना कर रखते हैं, उसको हम मित्र बनाते हैं और उसके साथ

पूरा जीवन व्यतीत करते हैं। तब फिर हम नारी को बुरा क्यों कहते हैं? वह नारी जो संसार में सभी को जन्म देती है चाहे वह राजा हो या शहन्शाह, अमीर हो या ग़रीब। इस प्रकार यदि हम गुरु नानक जी के ग्रन्थ 'जपु जी' की तुलना वैदिक धर्म से करें तो हमें लगेगा कि सिर्फ दोनों के शब्द अलग-अलग हैं किन्तु दोनों का अर्थ एक-सा है। सब से पहले मैं यजुर्वेद गायत्री मन्त्र आपको सुनाती हूं—

ओ३म् भूर्भुवःस्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥

इसका अर्थ है— कि उस प्राण स्वरूप, दुःखविनाशक, सुख स्वरूप, श्रेष्ठ, तेजस्वी, पापनाशक, देव स्वरूप परमात्मा को हम अन्तरात्मा में धारण करें। वह प्रभु हमारी बुद्धियों को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करें।

अब श्रोतागणो, मैं आप सब को गुरु नानक जी की पुस्तक जपु जी साहिब का पहला श्लोक सुनाती हूं जो इस प्रकार है—

ओंकार सतिनामु कर्ता पुरखु निरभऊ निरवैर अकाल मूरति अजूनी, सैभं गुरु प्रसादि।

इस श्लोक का अर्थ इस प्रकार है कि वह प्रभु ईश्वर प्रकाश स्वरूप है। वह एक ही है। उसके समान और कोई नहीं है। जिसका नाम सत्य सृष्टिकर्ता है और वह भय से रहित है, वैर भावना से परे है। समय से रहित है। ऐसा उसका अदृश्य रूप है जो जन्म-मरण से परे है। स्वतः ही प्रकाशमान है, और केवल गुरु की कृपा से ही ऐसे प्रभु की प्राप्ति होती है। गुरुनानक जी फिर लिखते है कि— **आदि सचु जुगादि सचु है भी सचु हो सी भी सचु।** अर्थात् जिसको याद करें वह कैसा है? वह है आदि सत्य अर्थात् सृष्टि के आरम्भ से ही सत्य है। हर पल में सत्य वो ही है। भविष्य में भी वो ही सत्य रहेगा। ऐसे नाम के ईश्वर को सदैव याद रखना चाहिए क्योंकि भगवान् के नाम के बिना जीव की तृष्णा कभी शान्त नहीं होती चाहे वह सारे संसार की दौलत और ऐश्वर्य अपने पास इकट्ठा कर ले। जीवात्मा को वास्तविक तृष्णा-भूख परमात्मा के नाम भजन से ही मिटती है।

एक बार राजा शिवनाथ ने गुरु नानक जी की भक्ति को परखने के लिए उनके पास मनमोहक सुन्दरियां भेजीं ताकि उनका मन काम के वशीभूत होकर डगमगा जाए। इन अर्धनग्न सुन्दरियों ने अपने लुभावने श्रृंगार और नृत्य द्वारा गुरु नानक जी को रिझाने-लुभाने और गिराने की कोशिश की। गुरु जी ने कहा— गावहु पुत्री राजकुमारी! नामु मठाहु सचु योतु सवारी। जाओ पुत्रियो! प्रभु तुम्हें याद आए। प्रभु का स्मरण कर ईश्वर नाम का सच्चे श्रृंगार वाली बनो।

राज-रहस्य

हजरत अली उमर जब खलीफा थे तब उन्होंने सभी प्रान्तों के राज्यपालों को आज्ञा दे रखी थी कि जिस समय भी कोई भी जन कोई काम लेकर आए उसका निबटारा तुरन्त कर दिया जाए। एक दिन की बात है राज्यपाल के पास एक आदमी जुम्मे के दिन अर्थात् शुक्रवार की रात के बारह बजे कोई काम लेकर पहुंचा। किन्तु उस समय राज्यपाल ने उसे कहला दिया कि इतनी रात गए मैं नहीं मिल सकता, कल आना। उस आदमी ने सीधे जाकर हजरत अली उमर के पास उस राज्यपाल की शिकायत की। हजरत अली उमर ने उसी समय राज्यपाल को बुलवा भेजा और उसका उत्तर मांगा। राज्यपाल बहुत ही शर्मिंदा हुआ और सकुचाते हुए बड़ी नम्रता से हजरत अली जी से बोला कि अल्लाह गवाह है कि मैंने कभी किसी से काम को मना नहीं किया। मगर जुम्मे की रात को मैं मजबूर था हजूर। हजरत अली ने पूछा— क्या मज़बूरी थी? राज्यपाल ने झिझकते हुए कहा— ये सवाल मत पूछिये हजूर, मेरा राज खुल जाएगा। हजरत अली ने राज्यपाल को हुक्म दिया कि राज्य की जनता के कर्मचारी का कोई राज नहीं होना चाहिए इसलिए अपना राज बयान करो। राज्यपाल ने सिर झुकाकर निवेदन किया कि "हजूर, मैं काम में बहुत व्यस्त रहता हूं सिर्फ जुम्मे की रात मुझे थोड़ी फुरसत मिलती है और मेरे पास कपड़ों का सिर्फ एक ही जोड़ा है, उसे मैं पूरे हफ्ते पहने रखता हूं और फिर जुम्मे की रात उसे धोकर सुखाता हूं। बस, यह बात मैं लोगों से छुपाता हूं ताकि

कोई मेरी खिल्ली ना उड़ाए कि इस राज्य के इतने बड़े राज्यपाल के पास ठीक से कपड़े भी नहीं हैं। इसके अलावा बाकी दिन मुझे इबादत का समय पूरा नहीं मिलता। जुम्मे की रात को मैं जी भरकर इबादत को करता हूं। बस मेरे आका यही मेरी जिन्दगी का एक राज था और वह भी आज फाश हो गया। राजपाल का यह बयान सुनकर खलीफा हजरत उमर अली की आंखों में आंसू छलक आए और उन्होंने खुदा का शुक्र अदा किया कि उनके राज्य के कर्मचारी ना तो प्रजा से गाफिल हैं और ना ही खुदा से। उन्होंने उठकर राज्यपाल की सीने से लगा किया।

तेनज़िन ग्यात्सो (वर्तमान दलाई लामा) वह एक है।

गुरु नानक— हिन्दू

यदि दया तेरी मस्जिद है, विश्वास तेरा पूजा का आसन, ईमान है तेरा पुराण, विनम्रता है तेरा मन्दिर, सन्तोष है तेरा उपवास, तब तो तू सच्चा इन्सान है। चाहे वह हिन्दू है या मुसलमान है।

५५. स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान-दिवस

शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर बरस मेले।
वतन पर मिटने वालों का यही बाकी निशां होगा॥

आज का दिन बहुत ही शुभ दिन है शुभ दिन इसीलिए कि आज पूरे संसार में सारे आर्यसमाजों में स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान दिवस मनाया जा रहा है, किन्तु आज का दिन बहुत अशुभ दिन भी है। अशुभ वह इसलिए कि जो संस्था आर्यसमाज एवम् व्यक्ति इस दिवस को मनाने का प्रयास कर रहे हैं, उन्हें यह पता नहीं कि इस दिन का मूल्य क्या है। इस दिन की कुर्बानी का अर्थ क्या है? इस खून की होली का रंग क्या है? वह इसीलिए कि स्वामी श्रद्धानन्द आज के किसी परिवार के अपने बेटे, पिता, नाना या दादा नहीं थे। वह एक ऐसी पवित्र आत्मा थे जिन्होंने अपने तथा परिवार के सारे सुख-सम्पत्ति त्याग कर अपने खून का बलिदान देश धर्म और जाति के लिए किया था।

अभी दो महीने पूर्व ही हम आर्यसमाज के लोगों ने ऋषि निर्वाण-दिवस भी मनाया था और आज सभी आर्यसमाजी श्रद्धानन्द बलिदान-दिवस मना रहे हैं। किन्तु मुझे कहते हुए बहुत दुःख होता है, हृदय में अत्यन्त पीड़ा है। गलत शब्दों का, चीत्कारों का तूफान-सा उठता है। आरम्भ में एक सच्चे द्रोह का बवण्डर झूल-सा जाता है कि हमें इस दिन के मनाने का अर्थ ही नहीं मालूम है। इन्हीं दिनों पूरे संसार का जीसस क्राइस्ट की कुर्बानियों की कहानियां लोगों को सुनाई जाती हैं। इन्हीं दिनों ऋषि दयानन्द, शहीद पं० लेखराम तथा स्वामी श्रद्धानन्द की कुर्बानियों का किस्सा गाया व सुनाया जाता है। किन्तु इन सब नामों पर, जिन आर्यसमाजियों को नाज़ था गर्व था, आज इस दिन तक आते-आते यह नाज गर्व भूला ही नहीं किन्तु जलकर राख हो गया है।

आज मैं स्पष्ट विचारों से यह कहती हूं कि सनातन धर्म वाले

रामायण का पाठ करते हैं तो हम आर्यसमाजी उन्हें कहते हैं शिक्षा देते हैं कि रामायण के पाठ करने के साथ-साथ राम के जीवन, आदर्शों को अपने जीवन में लाओ और राम-राज्य स्थापित करो। किन्तु आज मैं स्वयम् आर्यसमाजी होकर आर्यसमाज से ही यह प्रश्न पूछती हूं कि हम में और सनातनियों में फर्क ही क्या है? हम भी तो प्रतिवर्ष ऋषि बोध-उत्सव, ऋषि निर्वाण-दिवस, श्रद्धानन्द बलिदान-दिवस आदि मनाकर केवल आर्यसमाजी ऋषि-गाथा पढ़ते हैं और पढ़ने के बाद अपने घरों में जाकर भूल जाते हैं कि यह दिन हम ने क्यों मनाया? क्या शिक्षा ग्रहण की, इस दिन का अर्थ क्या था? हमारे आर्यसमाजी नेताओं ने हिन्दू धर्म को बचाने के लिए अपने लहू को तेल की जगह प्रयोग कर जो बलिदान का दीपक जलाया था, आज हम उस दीपक में और कुछ तेल नहीं डाल सके। उसकी जगह हम ने उस कुर्बानी के दीयों में अधर्म की फूंक मार-कर उसकी लौ को बुझा दिया और उनके लहू के तेल से अपने निजी स्वार्थों को पूरा करने में लगे हुए हैं। आज आर्यसमाज पर जितने आंसू बहाये जाएं उतने ही कम हैं क्योंकि स्थिति ऐसी हो गई है कि—

दिल के फफोले जल उठे सीने की आग से।
इस घर को आग लग गई घर के चिराग से॥

प्यारे श्रोतागणो! जैसे ऋषि-निर्वाण-दिवस पर मैंने आप सब को स्वामी दयानन्द जी की कुछ जीवन घटनाएं सुनाई थीं। आज मैं आपको स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान दिवस पर उनके जीवन की कुछ घटनाएं सुनाऊंगी, जो आज संसार की स्थिति के लिए सुननी और जाननी अत्यन्त आवश्यक हैं। राजर्षि श्रद्धानन्द जी महर्षि दयानन्द जी की तरह हिन्दू जगत् के सब से बड़े महान् समाज-सुधारक थे, नारी जाति के सम्मान के प्रतीक थे, सर कटने से ना डरने वाले देशभक्त एवम् आर्यसमाज के पितामह थे। महर्षि दयानन्द जी की तरह स्वामी श्रद्धानन्द जी भी बचपन से भगवान् शिव के उपासक थे। धर्म पर बहुत विश्वास रखते थे। स्वामी श्रद्धानन्द जी के पिता भी स्पष्ट वक्ता, निर्भय ईश्वर-भक्त एवम् देशभक्त

थे। 1856–57 की क्रान्ति के समय इस क्रान्तिकारी वीर स्वामी श्रद्धानन्द जी का जन्म पंजाब में हुआ था। स्वामी श्रद्धानन्द जी का सब से प्रथम संस्कार पौराणिक रीति के अनुसार जन्मपत्री में उनका नाम बृहस्पति रखा गया था। किन्तु यह नाम व्यवहार में कभी नहीं आया। उस समय ऐसा प्रतीत होता था कि श्रद्धानन्द जी का जन्म केवल नेता बनने के लिए ही हुआ था। क्योंकि उनकी युवावस्था में भारतवर्ष का कोई भी आन्दोलन ना था जिसमें स्वामी जी ने बढ़कर काम ना किया हो। माता-पिता ने स्वामी जी का नाम बचपन से ही मुन्शीराम रखा था और बाद में संन्यास न लेने तक आप महात्मा मुन्शीराम के नाम से पुकारे जाते थे।

संन्यास लेने के बाद मुन्शीराम जी का नाम स्वामी श्रद्धानन्द के नाम से आर्य जगत् में पहचाना जाने लगा। ऐसा लगता था कि स्वामी बड़ी श्रद्धा और आनन्द से देश, धर्म तथा समाज की सेवा किया करते थे। इस कारण से भी उनके कर्म के अनुसार संन्यासी के रूप में उनका नाम स्वामी श्रद्धानन्द जी पड़ गया था। जैसा कि मैंने आपको अभी बताया कि श्रद्धानन्द जी अपने पिता को देखकर बचपन में अपने भाई के साथ एक टूटे-फूटे मन्दिर से एक शिवलिंग उठा लाये, जिस पर वर्षों से पानी की एक बूंद तक नहीं पड़ी थी। उसी शिवलिंग पर दोनों भाइयों ने जल चढ़ाने का अभ्यास शुरू किया। दोनों भाई पाठशाला से आकर अपने पिता की तुलसी कृत रामायण लेकर पढ़ने बैठ जाते। इस प्रकार श्रद्धानन्द जी के जीवन में धार्मिक भावों का वृक्ष तैयार होने लगा। वह दोनों भाई पूजा के समय बड़े प्रेम भाव से गाते थे कि जेते कंकर तेते शंकर। किन्तु, बाद में श्रद्धानन्द जी बनारस शिक्षा के लिए आए। वहां पर भी वह नित्य प्रतिदिन काशी के विश्वनाथ के मन्दिर जाते थे, और जब तक भगवान् शिव का दर्शन ना करते तब तक उन्हें चैन नहीं आता था। किन्तु एक दिन की बात है कि रोज की तरह विश्वनाथ के मन्दिर की तरफ भगवान् शिव जी के दर्शनों को चले। किन्तु ज्यों ही श्रद्धानन्द जी मन्दिर के निकट पहुंचे तो द्वारपाल ने उन्हें अन्दर जाने से रोका।

जब स्वामी ने द्वारपाल से इसका कारण पूछा तो उसने बताया

कि इस समय रीवां की महारानी पूजा कर रही हैं, जब तक वह पूजा ना कर लेंगी तब तक दूसरे लोगों को अन्दर ना जाने दिया जाएगा। मुन्शीराम जी यह वचन सुनकर स्तब्ध, अवाक्, निराश, आहत से खड़े रह गए। उस श्रद्धानन्द के युवा भक्तिभाव को बहुत ठेस पहुंची और वहीं खड़े होकर वह सोचने लगे कि कि विश्वनाथ भगवान् शिव के दरबार में यह अनुचित भेदभाव कैसा? मन्दिर में तो केवल भक्ति का आदर-सम्मान चाहिए, यह अमीर-गरीब का भेद-भाव क्यों? उनके हृदय में इस घटना से उथल-पुथल मच गई। अन्ध-भक्ति श्रद्धा के पर्वत में तूफान आ गया। और फिर श्रद्धानन्द जी भी स्वामी दयानन्द जी की तरह सच्चे मानव धर्म की खोज में दर-बदर भटकने लगे। किन्तु उन्हें चैन ना आया शान्ति ना मिली।

माता-पिता चिन्ता में पड़ गए कि उनका बेटा नास्तिकता की ओर बढ़ता जा रहा है। किन्तु उसी समय काशी बनारस में एक चर्चा चल रही थी— काशी में एक बहुत बड़ा जादूगर आया हुआ है, उस जादूगर के दोनों तरफ आग की मशालें जलती हैं। सब माताओं ने डर के मारे अपने बेटों का घर से बाहर निकलना बन्द कर दिया। किन्तु श्रद्धानन्द जी उस जादूगर के दर्शनों के लिए तड़पने लगे। किसी प्रकार घर से निकलकर उस जादूगर के पास पहुंचे और श्रद्धानन्द जी ने देखा कि उस नास्तिक जादूगर के मुख पर एक तेज दिव्य प्रकाश था और उस जादूगर के प्रवचनों का असर जनता के हृदय, दिमागों में जादू कर, ज्ञान का प्रकाश भर देता था।

प्यारे श्रोतागणो यह जादूगर और कोई नहीं किन्तु क्रान्तिकारी महर्षि दयानन्द जी ही थे। बाद में श्रद्धानन्द जी ने लिखा कि मैंने ऋषि दयानन्द जी को काशी में देखा, अन्धकार में भी उनका चेहरा दीपक के समान प्रकाशमान था। स्वार्थी पण्डितों ने यह झूठी खबर पूरे काशी में फैला दी थी कि काशी में एक नास्तिक जादूगर आया हुआ है लोग उससे बचकर रहें। बाद में श्रद्धानन्द जी की माता जी को यह ज्ञान हुआ

कि जिस जादूगर से वह डरा रही थीं उस जादूगर ने उनके बेटे को धार्मिक पतन से बचाया और बाद में उन्हें महात्मा मुन्शीराम एवम् मृत्यञ्जय श्रद्धानन्द बनाया। बाद में श्रद्धानन्द जी स्वामी श्रद्धानन्द कहलाये।

स्वामी श्रद्धानन्द जी जब से ऋषि दयानन्द जी के साथ हुए, तब से ही वह उनके चरण-चिह्नों पर चलने लगे। सब से पहले श्रद्धानन्द जी ने स्वयम् और अपनी धर्मपत्नी को हिन्दी लिखना पढ़ना सिखाया। वे पर्दा प्रथा को त्याग अपनी पत्नी और बच्चों सहित रोज प्रायः साथ बाहर घूमने जाते। खोजने पर पता चला कि हिन्दुओं और आर्यों की ओर से कोई स्कूल ना था जहाँ पर वह अपनी पुत्री को शिक्षा के लिए भेज सकते थे। मज़बूरन अपनी पुत्री को ईसाई स्कूल में भेजना पड़ा।

एक दिन श्रद्धानन्द जी की कन्या घर पर आकर गाने लगी कि—

एक बार ईसा ईसा बोल तेरा क्या लगेगा मोल।
ईसा मेरा राम रखैया, ईसा मेरा कृष्ण कन्हैया॥

यह गीत सुनकर श्रद्धानन्द जी के कान खड़े हो गए। ईसाई स्कूल की शिक्षा का यह परिणाम। बस फिर क्या था, उन्होंने शीघ्र ही कन्या पाठशाला खोलने का संकल्प कर लिया। उसी समय धन के लिए एक अपील निकाली। धर्म-प्रेमियों की ओर से रुपया आना आरम्भ हो गया। परिणाम यह हुआ कि 1890 में कन्या विद्यालय की स्थापना हो गई। अंग्रेजी में कहते हैं कि The hand that Racks the Cradle rules the world इसका अर्थ है कि संसार में स्त्री का ही साम्राज्य है महान् पुरुषों को पैदा करने वाली वीर माताएं ही हुआ करती हैं। इस रहस्य को श्रद्धानन्द जी ने भलीभांति समझा था। इसी रहस्य को सामने रखकर आदर्श राष्ट्रीय स्त्री-शिक्षण संस्था आर्य कन्या महाविद्यालय, जालन्धर की बुनियाद रखी। और बाद में आचार्य रामदेव जी के साथ मिलकर उन्होंने कई आर्य कन्या-गुरुकुलों की स्थापना की जो आज भी स्त्री को ऊंची वैदिक धर्म की शिक्षा के लिए प्रसिद्ध हैं।

मैंने भी इन्हीं गुरुकुलों में से अपने नाना आचार्य रामदेव जी द्वारा स्थापित एक कन्या गुरुकुल महाविद्यालय, देहरादून में शिक्षा पाकर

विद्यालंकार की उपाधि प्राप्त की है। स्वामी श्रद्धानन्द जी की एक और विशेष बात है कि वह सदैव से ही हिन्दू मुस्लिम एकता की प्रत्यक्ष मूर्ति थे। जिस समय भारत में क्रान्ति के कारण मुसलमानों के दिल दहल रहे थे, उस समय मुसलमानों को श्रद्धानन्द जी पर पूर्ण विश्वास था। मुसलमानों के विश्वप्रसिद्ध दिल्ली के जामा-मस्जिद के पवित्र-मंच से उन्होंने प्रवचन किया और मुसलमानों ने बड़ी श्रद्धा से उनके अमृत वचनों को सुना। जामा मस्जिद में हिन्दू मुसलमानों को बिना किसी भेद-भाव के इस हिन्दू श्रद्धानन्द संन्यासी ने वेद मन्त्र का उच्चारण कर हिन्दू-मुस्लिम एकता का सन्देश सुनाया। इसका सु-परिणाम यह रहा कि मुसलमान स्वामी पर इतने प्रसन्न थे कि सात-आठ मुसलमान सदैव स्वामी जी की जीवन रक्षा के लिए उनके घर पर पहरा देते थे। उन्हीं के चरण चिह्नों पर चलती हुई मैं आज रेडियो सारंगा के मंच पर अपने जीवन को बहुत ही सुरक्षित पाती हूं। ऐसा लगता है कि शायद अपने जीवन की इस घड़ी में मैं स्वामी श्रद्धानन्द जी की यह जीवन-घटना दोहरा रही हूं।

कांग्रेस में प्रवेश

मार्शल ला - रालैट एक्ट जबरदस्ती थोपा गया।

देहली आन्दोलन नेता के टाउन हॉल मैदान में गोरखों की संगीनों के सामने वीर संन्यासी श्रद्धानन्द निर्भयता पूर्वक भारी भीड़ के साथ जलूस के रूप में घण्टाघर के नीचे पहुंचे। गोरखों की गोली छूटते ही आप आगे बढ़े छाती तानकर-गरजकर बोले कि निर्दोष जनता पर गोली चलाने से पहले मेरी छाती में संगीन भौंक दो। इतना कहना था कि गोरखों का खौलता हुआ रक्त ठण्डा पड़ गया। इस अनुपम साहस एवम् वीरता का उदाहरण देकर आपने सारे भारत को वीरता और निर्भयता का सन्देश दिया।

५६. समय का महत्त्व

प्यारे श्रोतागणो! आज इस साल का अन्तिम सप्ताह है। इस वर्ष का अन्तिम सोमवार है और इस वर्ष का यह मेरा अन्तिम प्रवचन भी है। समय कितनी जल्दी बीत जाता है इस का हम सब को पता ही नहीं चलता। अतः आज प्रवचन के प्रारम्भ में मैं आप सब से यही कहती हूं कि यह समय बहुत मूल्यवान् है। इस समय का सद्-उपयोग कीजिए, इसे काटिये मत। यह समय का चक्र ऐसा है यदि हम इसका मूल्य नहीं पहचानेंगे तो यह हमें बेकार समझकर धूल में मिला देगा। यह समय का पहिया ऐसा चलता है कि पल में मानव को राजा और पल में मानव को रंक, गरीब और भिखारी बना देता है। इसलिए कबीरदास जी समय के बारे में कहते हैं कि—

जो काल करना सो आज करले, जो आज करना सो अब।
पल में प्रलय होएगी बहुरी करेगा कब॥

इस का मतलब है कि जो शुभ कार्य हर कल के लिए टाल देते हैं, वह कल उनके जीवन में पता नहीं आएगा भी या नहीं। इसीलिए हमें चाहिए कि जो भी शुभ कार्य हमें करना है वह शीघ्र ही समाप्त कर लें क्योंकि फिर ना जाने कि कब हमारा समय आ जाए और उस कार्य को हम पूरा कर पाएं या ना कर पाएं। यह हमारे जीवन का महल समय के घण्टों व मिनटों की ईंटों पर बनाया गया है। इस जीवन में खोई हुई दौलत फिर से कमाई जा सकती है, भूली हुई विद्या फिर से याद की जा सकती है। और हमारा खोया हुआ स्वास्थ्य डॉक्टर के इलाज़ से पुनः प्राप्त किया जा सकता है, किन्तु हमारा खोया हुआ समय किसी भी मूल्य पर हमारे जीवन में लौटकर नहीं आ सकता। उस खोए हुए समय के लिए हम केवल पश्चात्ताप या प्रायश्चित्त ही कर सकते हैं क्योंकि

अब पछताय होत क्या जब चिड़ियां चुग गईं खेत।

अब पछताने से भी क्या होगा क्योंकि अब समय की चिड़ियों ने आपका खेत ही चुगा लिया। इसलिए कबीरदास जी जीवन की इस बगिया में जितने भी मानव रहते हैं उनको समय की महिमा समझाने के लिए लिख गए हैं कि—

माली आवत देखकर कलियन करी पुकार।
फूले-फूले चुन लिए अब कल ही हमारी बार॥

इसलिए इस समय रूपी बगिया की रखवाली हम ठीक ढंग से करें। इसका सद् उपयोग करें, इस समय की दौलत को यदि हम व्यर्थ में ही लुटाते रहे तो एक क्षण ऐसा आएगा, कि हम स्वयम् ही लुट जाएंगे और हमें पता भी न चलेगा। इसी समय की महिमा के लिए संस्कृत साहित्य में कहा गया है कि— **चक्रवत् परिवर्तन्ते सुखानि च दुःखानि च।** इस समय का चक्र परिवर्तनशील है, हर क्षण सुख-दुःख को बदलता रहता है, कभी ऊपर कभी नीचे की ओर। इसी समय से हमारे जीवन में कभी उन्नति होती है, कभी पतन। इस समय का पहिया चलते हुए कभी धूल में मिलता है और कभी ऊपर उठकर चमकता है। किन्तु वे लोग भी कितने मूर्ख हैं जो अपने जीवन के समय की अपनी धूल झाड़ते नहीं और दूसरों के समय की उन्नति पर धूल फेंकते हैं। प्रभु प्रतिदिन सुबह हमें 24 घण्टे का समय मुफ्त में हमारी झोली में डाल देता है और बाकी काम मनुष्य पर छोड़ देता है कि इन 24 घण्टों का सद् उपयोग और सुप्रयोग हम कैसे करें? इन चौबीस घण्टों में कमाया हुआ धन अपने भविष्य के लिए बचाकर रख सकते हैं। इन चौबीस घण्टों में पढ़ी हुई विद्या को हम भविष्य में प्रयोग करने के लिए जमा कर सकते हैं। आज मानव ने धन का संचय करने के लिए बड़े से बड़े बैंक खोल रखे हैं जहाँ आपका धन आता और जाता रहता है। विद्या का संचय करने के लिए हम ने अच्छे से अच्छे Computers का निर्माण कर लिया है पर इस संसार में अभी तक कोई भी ऐसा बैंक हम नहीं बना पाए कि इन चौबीस घण्टों में से बचा हुआ एक घण्टा भी हम अपने जीवन के लिए बचा कर रख

सकें। एक बार समय बीत गया तो बीत गया वह कभी पुनः लौटकर नहीं आएगा, किसी भी रूप में नहीं। समय को तो हम केवल खर्च ही कर सकते हैं चाहे हम उसे अच्छाई के लिए खर्च करें या बुराई के लिए, यह तो हमारे अपने कर्म हैं। जब मैं भी कभी किसी से बात करती हूं और पूछती हूं कि जीवन कैसा चल रहा है तो मुझे उत्तर मिलता है कि बस समय काट रहा हूं। समय जैसी मूल्यवान् और अनमोल वस्तु को काटना तो बहुत ही गलत विचार है। यदि कोई आज आलस्य से समय बरबाद करके समय को काटता है तो ऐसा समय भी आ सकता है कि जब समय ही आपको काटकर रख दे। याद रखिये, इस जीवन में जिसने समय का मूल्य नहीं पहचाना जिसने समय की महिमा को नहीं जाना तो उसने कुछ भी नहीं जाना। आज तक मानव इस संसार में कोई भी ऐसी समय बताने वाली घड़ी नहीं बना सका, जो आपके बीते हुए घण्टों को दुबारा बजा सके। क्योंकि—

जिसने पहचानी ना कोई कद्र अपने वक्त की।
कामयाबी उसको हासिल हो ना सकती कभी॥

इसलिए श्रोतागणो! आज इस जाते हुए साल के अन्तिम सोमवार के अन्तिम प्रवचन में मैं आप सब से प्रार्थना करती हूं कि हम ने जितने कर्म इस पूरे साल में किये हैं हम उनको दुबारा देखें, जांचें। जो कर्म हम ने अच्छे किये हैं उन को हम संजोकर रखें, किन्तु हमारे जीवनों में जो भी पुराने विष भरे जहर भरे पौधे हैं उन्हें हम जड़ से उखाड़ कर फेंक दें। इस जीवन में इन्सानी रिश्तों की पुरानी द्वेष भरी, ईर्ष्या भरी, बुरी नज़रवाली, अपवित्र भावना, गन्दी राजनीति, कुमति वाली आत्मा की मैल को सुमति से, सुबुद्धि से, एकता से भक्ति से मल-मल कर धोएं। इस सफेद बर्फ भरे मौसम में हम प्रभु की दी हुई इस सफेद बर्फ की खाद में, प्यार का, सद् भावना का, एकता का, पवित्रता का, धार्मिकता का, भक्ति भावना का, एक नये इन्सानी पवित्र रिश्तों का, इन्द्रधनुष के नये ताज़ा रंगों का, प्रभु के पूजन का बीज बोएं। क्योंकि जब इस साल की अन्तिम बर्फ पिछले और नये

साल धूप का साया हमारे जीवन में आए तो इस प्यारी, मीठी नये वर्ष की धूप से एक प्यार की नई खुशबू उड़े। एक नये रिश्तों की मजबूत गांठ ताजा गुलाब के फूलों की तरह महके। नये वर्ष में प्रभु भक्ति की लहरें चमेली के पुष्पों की तरह प्रभु-प्रेम रस की मस्ती की भक्ति में महकें। नये वर्ष की पिघलती बर्फ से शान्ति का सफेद सुनहरा धुआं उठे, जिसमें केवल प्यार ही प्यार हो, पवित्रता ही पवित्रता हो, मित्रता ही मित्रता हो। एक दूसरे के सुख में सुखी दुःख में दुःखी होने की भावना हो। इस बीतते हुए साल में हम चुभने वाले कैक्टस से पौधों को उखाड़कर अपने-अपने जीवनों में केसर का बीज बोएं। ताकि हम सब के जीवनों की बगिया में खुशियां ही खुशियां महकें। बहारों का फूल लहराता रहे, इन्द्रधनुष के रंग चमकते रहें। और आज के प्रवचन के अंत में मेरी तरफ से आप सब सुनने वालों को नव-वर्ष की हार्दिक बधाई हों। रेडियो सारंगा को भी नव-वर्ष की सफलता का आशीर्वाद हो। और आज हम सब प्रतिज्ञा करें, शपथ लें लेकिन नये साल में जब भी हमारा हाथ उठे तो आशीर्वाद देने के लिए उठे। दुःखियों के आंसू पोंछने के लिए उठे, जब भी हम बोलें तो हमारी वाणी शुभ कल्याण के लिए हो, दूसरों को सुख देने वाली हो। जब भी हम सुनें तो अच्छी बातें ही सुनें। जब भी हम कुछ देखें तो अच्छा ही देखें और अच्छी नजर से देखें। प्रभु से प्रार्थना है कि आप सब के जीवनों के दिन शुभ ही शुभ हों।

काव्य-सुमन

यम और काव्य

एक दिन शोक में डूबी थी
मन में विचार कुछ ऐसा आया
लिख डालूं इक सुन्दर कविता

लेकिन
कविता से पहले मुझे ज्योतिषी के पास जाना है,
पूछना अपनी उम्र का ताना-बाना है।
जैसे ही ज्योतिषी के पास गई,
कविता की घड़ी टल गई।
ज्योतिषी ने कहा कहो क्या पूछना है?
मैंने कहा यह तो बताइये
मेरी मृत्यु में है कितनी देर,
मुझे करना है कविता का हेर फेर।

क्योंकि
यदि ऊपर यमराज ने कुछ पूछा
मुझे उत्तर ना कोई और सूझा
झट से अपनी कविता सुना दूंगी,
प्रशंसा कुछ उनसे भी पालूंगी।

ज्योतिषी बोले-
विचार तो तुम्हारा कच्चा है,
किन्तु समय तुम्हारा अब अच्छा है

कविता लिखते ही तुम्हारी मृत्यु हो जाएगी
कुंडली में है मरने के बाद ही रिक्त स्थान पाओगी।
जनाब फिर मैंने लिखी कविता और श्लोक,
जिसने पहुंचा दिया मुझे यमलोक।
यमराज ने मुझे घूरकर देखा,
कुछ सोचा और कुछ और समझा।
यमराज गरज कर बोले,
धरती पर क्या फिल्म चल रही है शोले?
यह सुनते ही मैं घबराई,
थोड़ा शरमाई इतरायी,
और बोली
महाराज शोले तो मेरे दिल में भड़के थे,
शोले भड़कते ही हुआ था मेरा मृत्यु संस्कार,
इसीलिए आई थी आपके पास,
आपसे कुछ प्रश्न पूछने हैं
यमलोक के प्रशासन में रिक्त स्थान कितने हैं
यमराज ने भरी एक ठंडी आह,
और तुरन्त शान्त होकर कहा—
कहने का मतलब क्या है तुम्हारा
धरती पर तो दिखा दिया अपनी जाति का नज़ारा
और अब इस लोक पर भी तुम्हारी नज़र है?
यमराज ने फिर सोचा और बात घुमाई कि
चाहो तो अप्सराओं के स्थान हैं कुछ खाली,
अब दिल बहलाने की बारी आई है तुम्हारी।
मैंने कहा-
इस काम से मुझे है बेरुखाई
यहां पर मेरी इगो है मेनका से भी हाई।

यमराज थोड़ा गरजे फिर बोले-
मेरा स्थान ही रिक्त है
क्योंकि धरती की कुर्सी पर
अब मेरी ही नज़र है।
किन्तु मेरी इस कुर्सी के लिए भी सिफारिशें हैं।
क्योंकि पृथ्वीलोक जाने पर मेरी भी कुछ ख़्वाहिशें हैं
इसलिए इस लोक में तुम्हारा कार्य बिन सिफारिश करूंगा,
क्योंकि धरती की कुर्सी मैं बिन-सिफारिश ही लूंगा।
और तुम भी अब सुन लो खोल कर कान,
जब तक तुम में हैं प्राण में प्राण
चाहे पृथ्वीलोक में हो या यमलोक में
कविता करना हर शोक में
क्योंकि शोक में लिखी कविता की
अपनी ही थाती है जो अन्त में महाकाव्य कहलाती है।

अर्चना विद्यालंकार

अनीतिशास्त्र

अचानक एक दिन,
छल और प्रपंच की कुर्सी डगमगाई,
दोनों में होने लगी कहा सुनाई,
इसी कहा सुनाई में एक सफ़ेदपोश आया,
उसने उन दोनों को बड़े प्यार से समझाया,
तुम दोनों तो मेरे बायें हाथ की मैल हो
तुम जैसी सैकड़ों अपने दिलो-दिमाग में बैठाऊँगा,
और फिर-
चाणक्य के नीतिशास्त्र के बाद।
एक अनीतिशास्त्र लिख जाऊँगा॥

रचना

मेरी एक रचना, जो रचना ना बन सकी,
बन गई मेरे हृदय की हूक।
वही हूक जब स्त्री-हठ पर उतर आई
और जा टकराई चट्टानों के महल से,
उस टकराहट की भरभराहट से,
चट्टानों का महल पिघला,
पिघल कर उफनता सागर बना,
उस उफनते नीले सागर में,
मैने स्वयम् को डुबोया,
और अपनी रचना को
सफेद पृष्ठों पर पाया॥

हत्या वसन्त की

वसन्त आया, उल्लास छाया,
मन्द पवन पर उन्माद की छाया,
उन्मादी वसन्त जब जवानी पर आया,
जवानी की जवानी पर वो नशा छाया,
एक तरफ वसन्तोत्सव
दूसरी ओर विनाश छाया।
उत्सव तो उनका जो थे अमीर,
विनाश था उनका जो थे गरीब
और इस तरह एक गरीब जवानी
वसन्त आने से पहले ही लुट गई,
क्योंकि
कली फल बनने से पहले ही टूट गई,
इस तरह वसन्तोत्सव के साथ ही
एक और भ्रूण-हत्या हो गई।

अर्चना विद्यालंकार

झलक

1. लोग कहते हैं मेरी पायल बोली है छम-छम
लेकिन मैं कहती हूं ये झांझर झनकी है झना-झन।
इस छम-छम और झन-झन में छुपी है सच्ची कहानी,
एक अबला भी बन सकती है झांसी की रानी।

2. उसने भवें उठाईं तो तीर चल पड़े,
नज़रें उठाईं तो सागर छलक पड़े,
वो मुस्कुराई तो दो गढ़े पड़ गए,
उन गढ़ों में दो मुसाफिर गिर पड़े।

3. मैंने जन्मदिन पर केक काटा,
केक पर बना अपना दिल काटा,
लेकिन काटने वाले ने मुझे यों काटा,
मुझे काटो तो खून ही नहीं॥

4. आसमान पर काले-घनघोर बादल छाये थे,
मेरी आंखों में भी आसुंओं के उमड़ते साये थे,
बादल और आंसुओं की तड़प थी एक जैसी,
दोनों को एक दूसरे का इन्तज़ार था कि—
कब वो बरसे तो मैं बरसूं।

अर्चना विद्यालंकार

मुग्धा नायिका

रूप तुम्हारा है कुछ ऐसा,
जैसे कमल झील में तैरता,
नयनों में मिलन अभिलाषा,
अधरों पर पवित्र पिपासा,
प्रिय की करती हुई प्रतीक्षा,
लगती हो तुम मुग्धा नायिका॥

चिरनिद्रा

मेरे जीवन की छोटी सी कहानी,
बचपन में ही आई कठोर जवानी,
जवानी में आ गया बुढ़ापा,
बुढ़ापे ने दोहराया बचपना,
बचपन को पुकारा असमय काल ने
मैंने बचपने के भोलेपन में कहा **मां**
मां शब्द सुनते ही मृत्यु ने अपना धर्म निभाया।
मुझे अपनी गोद में "चिर-निद्रा" में सुलाया॥

अर्चना विद्यालंकार

चार चोर

मैं मन-मन्दिर में दीप जला,
कब से बैठी हूं ओ प्रभु।
तुम कहां चले गए छोड़ अकेला,
मुझ को अन्धकार में यों प्रभु।
अन्धकार था ऐसा गहरा,
चारों ओर माया का पहरा,
मोह ने मुझे ऐसा रिझाया,
आ गई मुझ को काम की निद्रा,
चारों तरफ चार चोर प्रभु,
तुम कहां चले-गये ओ प्रभु॥
काम-निद्रा में सोते ही,
क्रोध ने मुझ पर छिड़का घी,
लोभ ने मुझ पर डाली मिट्टी,
मोह ने उसमें दी अग्नि,
इन असद् लक्षणों की अग्नि में,
मैं भस्म हो खो गई प्रभु,
चारों तरफ चार चोर प्रभु
तुम कहां चले गए ओ प्रभु॥

अर्चना विद्यालंकार

विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द